Nagari Pracharini Granthamala Series No. 21.

उसमान कवि कृत

चित्रावली ।

जगन्मोहन वर्म्मा सम्पादित

और

काशी नागरीप्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित ।

मूल्य २)

सिर्फ टाइटिल भारतजीवन प्रेस, बनारस में छपा ।

NAGARI PRACHARINI GRANTHAMALA SERIES No. 21.

उसमान कवि कृत

चित्रावली ।

जगन्मोहन वर्म्मा सम्पादित

और

काशी नागरीप्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित ।

1912.

भूमिका

—:o:—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

काव्य साहित्य का एक प्रधान अंग है। हिन्दी भाषा का साहित्य महाकवि चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो* से प्रारंभ होता है। इसके पूर्व इसमें ग्रन्थ थे या नहीं इसके विषय में हम कोई निश्चित सम्मति नहीं दे सकते। रासो से पुराने भाषा के किसी ग्रन्थ का आजतक हमको पता नहीं चला है, आगे चलेगा या नहीं हम यह भी कहने में असमर्थ हैं। रासो के भिन्न भिन्न, ओर संस्कृत के छन्दों से विलक्षण, छन्दों को देखते इतना कहने का साहस होता है कि संभव है इससे पहिले भी भाषा के ग्रन्थ रहे हों। पर जब तक कोई ओर ग्रन्थ इससे पुराना न मिल जाय हम इसे भाषा का आदि ग्रन्थ ओर इसके रचयिता चन्दबरदाई को हिन्दी भाषा का आदिकवि कहने के लिये बाध्य हैं।

चन्दबरदाई के रासो में दोहे ओर चैापाई भी हैं। चैापाई को उसमें 'विअक्खरी' कहा है,। उनके उदाहरण ये हैं—

चरित लक्ख साहाब चर, गए पास सुरतान।
सजी सेन सामंतपति, आयो योजन थान॥

---

* सुनते हैं कि खुमानरासो ९ वीं शताब्दी का बना हुआ है, पर हमने इसे देखा नहीं है, अतः इसके विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। सभा इसकी प्रतिलिपि कराने के लिये उद्योग कर रही है यदि मिला तो यह छाप कर सर्वसाधारण के सामने उपस्थित किया जायगा ओर तब इसकी भाषा आदि के विषय में कोई निश्चित सम्मति दी जा सकेगी।

भूमिका

—:०:—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

काव्य साहित्य का एक प्रधान अंग है। हिन्दी भाषा का साहित्य महाकवि चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो* से प्रारंभ होता है। इसके पूर्व इसमें ग्रन्थ थे या नहीं इसके विषय में हम कोई निश्चित सम्मति नहीं दे सकते। रासो से पुराने भाषा के किसी ग्रन्थ का आजतक हमको पता नहीं चला है, आगे चलेगा या नहीं हम यह भी कहने में असमर्थ हैं। रासो के भिन्न भिन्न, और संस्कृत के छन्दों से विलक्षण, छन्दों को देखते इतना कहने का साहस होता है कि संभव है इससे पहिले भी भाषा के ग्रन्थ रहे हों। पर जब तक कोई और ग्रन्थ इससे पुराना न मिल जाय हम इसे भाषा का आदि ग्रन्थ और इसके रचयिता चन्दबरदाई को हिन्दी भाषा का आदिकवि कहने के लिये वाध्य हैं।

चन्दबरदाई के रासो में दोहे और चैापाई भी हैं। चैापाई को उसमें 'विअक्खरी' कहा है,। उनके उदाहरण ये हैं—

चरित लक्ख साहाब चर, गए पास सुरतान।
सजी सेन सामंतपति, आयो योजन थान॥

---

* सुनते हैं कि खुमानरासो ९ वीं शताब्दी का बना हुआ है, पर हमने इसे देखा नहीं है, अतः इसके विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। सभा इसकी प्रतिलिपि कराने के लिये उद्योग कर रही है यदि मिला तो यह छाप कर सर्वसाधारण के सामने उपस्थित किया जायगा और तब इसकी भाषा आदि के विषय में कोई निश्चित सम्मति दी जा सकेगी।

सुनि चरित्त साहाब तास चर, बोलि मीर उमराव महाभर।
दिय निरघात घाव नीसानं, चल्यो सेन सज्जै सब्बानं॥
बाजित्र वीर अनेक सुबज्जं, धर पडिहाय सु गोमह गज्जे।
उग्ग्यो सूर चढ्यो सुरतानं, बज्जि निहाब नाल गिरि वानं॥

इससे अनुमान होता है कि दोहा चौपाई की सृष्टि महा कवि चन्द के समय में या उससे पहिले हो चुकी थी। दोहा ग्रौर चौपाई को रासो के अन्य ग्रन्थों में भी यथास्थान इतस्ततः लिखने की प्रथा देखी आती है, पर पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व का एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं मिलता जो विशुद्ध दोहे ग्रौर चौपाई में हो। इससे अनुमान होता है दोहा ग्रौर चौपाई का छन्द पश्चिमीय कवियों ग्रौर पच्छिमी हिन्दी के लिये उपयुक्त न था।

दोहा ग्रौर चौपाई के ग्रन्थ प्रायः मुसल्मान कवियों के रचे हुए हैं ग्रौर प्रायः पूर्वी हिन्दी वा अवधी भाषा में हैं। पूर्वी भाषा में कविता करने की प्रथा भी मुसल्मानों ही की चलाई हुई है। सब से पहिले मीर खुसरो ने तेरहवीं शताब्दी में कुछ दोहे ग्रौर पहेलियां पूर्वी भाषा में रचीं। उनके दोहों के उदाहरण ये हैं।

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डाले केस।
चल खुसरो घर आपने, सांझ भई चहुँ देस॥
मोर परोसिन कूटै धान, ग्रोखरि क सबद परा मोरे कान।
ऊ...मोहि ऐसन छरी, मोरे हाथन छाला परी॥
दही परोसन गैहों भोर, अँगुरिन गडी दही कै कोर।
ए सखी मैं ऐसी भरी, दिन दस रही पीर से परी॥

शोक है कि खुसरो के ग्रन्थ सिवाय चुटकुले दोहे आदि ग्रौर ख़ालिकबारी के नहीं मिलते, नहीं तो खुसरो पूर्वी भाषा के महाकवि कहे जाने योग्य थे।

दोहा ग्रौर चौपाई के छन्द पूर्वी वा अवधी भाषा के लिये इतने उपयुक्त प्रतीत हुए कि पीछे कवियों ने इन्हीं छन्दों को

कविता में प्रधानता दी। कथा के ग्रंथों के लिये दोहे और चौपाई इतने उपयुक्त हुए कि प्रायः कथाग्रन्थ पूर्वी भाषा और दोहे चौपाइयों में ही लिखे गए। इस प्रकार के गन्थों को लिखने में मुसल्मान कवि अग्रसर हुए और उन्होंने कितने ही ग्रन्थ लिखे। सब से पुराना ग्रन्थ जो इस कोटि का मिला है और छप कर पाठकों तक पहुँच चुका है वह पद्मावति है। इसे मलिक मुहम्मद जायसी ने सन् ९४७ हिजरी में अर्थात् १५४० इस्वी में लिखा है। इसी आधार पर कितने लोग जायसी को इस प्रकार के ग्रन्थों का आदिकवि मानते हैं। पर जायसी ने पद्मावति में एक जगह अपने पूर्व के रचे हुए कितने ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है। आप लिखते हैं—

विक्रम धँसा पेम के बारा, सपनावति लग गयो पतारा।
सिरीभोज खँडरावति लागी, गगनपूर होइ गा वैरागी॥
राज-कुँअर कंचनपुर गैऊ, मिरगावति लगि जोगी भैऊ।
साधा कुँअर मनोहर जोगू, मधुमालिति कहँ कीन्ह वियोगू॥

इससे अनुमान होता है कि जायसी के पहिले भी कवि लोग सपनावति, खँडरावति, मिरगावति, मुधुमालति आदि ग्रन्थ लिख चुके थे। इनमें मिरगावति का पता तो सभा को सन् १९०० में लग चुका है। इसका विवरण भी सभा की खोज की रिपोट पृष्ठ १७, १८ में लिखा है। उसके देखने से मालूम होता है कि मिरगावति को कुतुबन ने सन् ९०९ हिजरी में अर्थात् सन् १५०२ इस्वी में लिखा था। शेष अन्य ग्रन्थों का पता आज तक सभा को नहीं लगा।

मधुमालति की एक अपूर्ण प्रति मुझे इस वर्ष काशी के गुदड़ी बाजार में मिली। यह ग्रन्थ १७ पन्ने से १३३ पन्ने तक है। पुस्तक उर्दू लिपि में अत्यंत शुद्ध और सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है। भाषा मधुर और पाँच पाँच चौपाई के बाद एक एक दोहे हैं। आदि और अंत के पृष्ठ न होने से ग्रन्थकर्ता के ठीक नाम (सिवाय मंझन के जो उसका

उपनाम है) और उसके निर्माण काल आदि का पता नहीं चलता। ग्रंथ के आदि के ३९ पन्नों तक बायें पृष्ठ पर के किनारे पर दो दो पंक्ति में फारसी भाषा में कुछ याददाश्त लिखे हैं जिसके अंत में ११ रबिउस्सानी सन् १०६९ हिजरी की मिती है। याददाश्त में उसी समय की घटना का वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि यह प्रति उस समय के पहिले की लिखी हुई है। भाषा का उदाहरण हम कुछ नीचे दिये देते हैं—

मधुमालति जो सोवत जागी, बिरह अगिन नख सिख तन लागी।
ऊभ सांस हिय गह गह आवै, लज्जा तजि चख रुधिर बहावै॥
नैनन भरनधार जनु छूटी, सयन पूर जनु बीरबहूटी।
अबही दसन इफारत खोला, दामिनि चमकि चमकि जनु बोला॥
मुकुलित केस रैनि अँधियारी, सहज भाउ भादों झनकारी।
रुदन करति मधुमालति, बिरह बिथा तन साल।
लोगहि अचज सदा बरखा एक, अबहु दुइ बरखा-काल॥

जिस प्रकार मधुमालति में पांच पांच चौपाई के बाद एक एक दोहे हैं इसी प्रकार कुतुबन की मिरगावति में भी पाँच पाँच चौपाई के बाद एक एक दोहे हैं। इससे अनुमान होता है कि जायसी के पूर्व ग्रन्थों में पांच पांच चौपाई के बाद एक एक दोहे लिखने की प्रथा थी। सात सात चौपाई के बाद एक एक दोहे लिखने की प्रथा जायसी ने चलाई जिसका उनके पीछे के कवियों ने अनुसरण किया। केवल तुलसीदासजी ने अपनी रामायण में आठ आठ चौपाई के बाद दोहे या छन्द आदि लिखने का क्रम रक्खा है। इसका कारण यह मालूम होता है कि मुसलमान कवियों ने अज्ञानवश चौपाई को दो दो चरण का मानकर, अर्थात् आधी चौपाई को ही पूरी चौपाई मान, पांच पांच वा सात सात चौपाई के बाद, वास्तव में साढे तीन और ढाई चौपाई के बाद, एक एक दोहा लिखा था। तुलसीदासजी संस्कृत के विद्वान् थे, उन्होंने

देखा कि यह प्रथा ठीक नहीं है इस लिये उन्होंने अपनी रामायण में आठ आठ चौपाई, अर्थात् वास्तव में चार चार चौपाई के बाद दोहा वा छन्द आदि लिखा। अतः मधुमालति, कुतबन की मिरगावति के नियम पर उसमें पांच पांच चौपाई बाद एक एक दोहा होने, पद्मावति में उसका नाम आने, और भाषा के विचार से, पद्मावति से पुरानी है। इसकी भाषा में शुद्ध संस्कृत शब्द की कमी और ठेठ हिन्दी के शब्दों की अधिकता से तथा उपनाम से भी यह अनुमान होता है कि यह किसी मुसल्मान कवि की बनाई हुई है।

मिरगावति और मधुमालति के मिलने से यह आशा होती है कि कभी सपनावति और खंडरावति भी मिल जायँगी। अतः मलिक मुहम्मद जायसी को हिन्दी-भाषा वा अवधी भाषा की कविता और दोहे चौपाई में आख्यायिका वा कथा ग्रन्थों का आदिकवि कहने वालों का मत ठीक नहीं मालूम पड़ता। पर इस में कुछ सन्देह नहीं कि इस प्रकार के कथाग्रन्थों के लिखने की प्रथा मुसल्मान कवियों की ही चलाई हुई है और कथा ग्रन्थ रामायणादि दो एक को छोड़ प्राय सब के सब मुसल्मान कवियों ही के लिखे हुए है।

अवधी-भाषा में कविता तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने प्रारंभ की और तब से मुसल्मान कवि अठारहवीं शताब्दी तक इस भाषा में कविता करते रहे। उर्दू वा फारसी मिली हुई भाषा का उस समय नाम वो निशान न था। उस समय कविता दो भाषाओं में होती थी एक अवधी भाषा में दूसरे व्रज भाषा में। व्रजभाषा की कविता काल के विचार से अवधी भाषा की कविता से पीछे प्रारंभ हुई और जैसे दोहा और चौपाई के लिये अवधी भाषा उपयोगी हुई उसी प्रकार कवित्त आदि के लिये व्रजभाषा उपयुक्त प्रतीत हुई। इस भाषा में सूर और विहारी आदि की कविता अच्छी है।

यद्यपि व्रज भाषा के कवियों ने दोहा और चौपाइयों के रचने की चेष्टा की और उनमें अच्छे अच्छे भाव भरे पर व्रजभाषा के दोहे और चौपाइयों

में वह लालित्य और माधुर्य्य न आसका जो अवधी दोहों और चौपाइयों में था। इसी लिये भाषा के रस के ज्ञाता गोसाँई तुलसीदास ने अपने रामायण, सतसई बरवे आदि को अवधी में और विनयपत्रिका, कवितावली आदि को ब्रजभाषा में लिख कर यह प्रमाणित कर दिया कि किस भाषा के लिये कौन कौन भाषा और छन्द उपयुक्त हैं।

हम यहाँ कुछ थोड़ी से दोनों भाषाओं के दोहे और चौपाइयों को स्थालीपुलाक न्याय से नीचे उद्धृत करते हैं जिससे इस विचार का स्पष्ट पता चल जायगा कि ब्रजभाषा के कवियों को दोहे और चौपाइयों के रचने में कहाँ तक सफलता हुई।

राजा सों अर्जुन सिर नाई, कह्यौ सुनौ विनती महराई।
बहु दिन भे हरि सुधि नहिँ पाई, आज्ञा होइ तो देखौं जाई॥
यह कहि पारथ हरिपुर गये, सुन्यो सकल यादव क्षय भये।
अर्जुन सुनत नयन जलधार, पर्यो धरणि पर खाइ पछार॥
तब दारुक संदेस सुनायो, कह्यो जो हरिजू गीता गायो।
सो सुरूप मम हिर्दय आन, रहिये सदा करत मम ध्यान॥
तब अर्जुन मन धीरज धारि, चल्यो संग लै जे नर नारि।
तहँ भिल्लन सों भई लराई, लूटे बिन सब स्याम सहाई॥
अर्जुन बहुत दुखित तब भये, इहँ अपसगुन होत दिन नए।
रोवै वृषभ तुरंग अरु नाग, स्याल दिवस निशि बोले काग॥
कंपै भुव वर्षा नहि होई, भए सोच चित यह नृप जोई।
इहि अंतर अर्जुन फिरि आयो, राजा के चरणन सिर नायो॥
राजा ताको कंठ लगाई, कह्यौ कुशल है यादव-राई।
बल वसुदेव कुशल सब लोइ, अर्जुन यह सुनि दीने रोइ॥
राजा कहे कहा भयो तोहिं, तू क्यों कहि न सुनावै मोहिं।
काहू असत्कार तोहिं कियो, कै कहि दान न द्विज को दियो॥
कै शरणागत को नहि राख्यो, कै तुमसों काहू कटु भाख्यो।

कै हरिजू भयो अन्तर्ध्यान, मोसों कहि तू प्रगट बखान॥
तब अर्जुन नैनन जल डारि, राजा सों किय वचन उचारि।
सूरज प्रभु वैकुंठ सिधारे, तेहि बिनु को मम काज सँवारे॥

ये चौपाइयां सूरदासजी के प्रसिद्ध ग्रन्थ सूरसागर की हैं। इनकी भाषा और कविता के विषय में मुझे विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। पर यदि आप इन चौपाइयों को जायसी आदि मुसलमान कवियों की कविता और तुलसीदास जी के रामायण की चौपाइयों से मिलाइये तो आपको मालूम होगा कि सूर जैसे महाकवि को व्रजभाषा में चौपाई रचने और उसमें पदलालित्य लाने में कहाँ तक सफलता हुई है। फिर जब सूर ऐसे महाकवि को व्रजभाषा की चौपाई रचने में अकृतकार्य्यता हुई तो अन्य कवियों की तो कथा ही क्या है।

व्रजभाषा में दोहा रचने में बिहारी सिद्धहस्त थे और उनके दोहों में बड़े गूढ भाव पाये जाते हैं जिसके विषय में 'सतसय्या के दोहरे अरु नावक के तीर' की जनश्रुति प्रख्यात है। पर पदलालित्य में उनके दोहे भी पूर्वी भाषा के दोहों को कभी नहीं पहुँच सकते। हम यहाँ उदाहरण के लिये दो एक दोहे बिहारी के उदाहरण रूप पूर्वी भाषा के दोहों के साथ साथ उद्धृत करते हैं और इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ते हैं।

सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सथुरे बार॥
छुटे छुटावै जगत तें सटकारे सुकुमार।
मन बाँधे बेनी बँधे नील छबीले बार॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतो उदोत।
बंक बँकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत॥

(बिहारी)

सिरजी तब बिधि स्यामता, जब जग सिरजै लीन्ह ।
ते कच सिरजे सार लै, सेष बांटि कै दीन्ह ॥

(मान)

छिटकी चिहुर सुहागिन जगत भयो अँधकाल ।
जनु बिरही जन जिय बध कारन मन्मथ रोपा जाल ।
चिहुर बास मधुमालति जब से बही बतास ।
तेहि दिन सो निसि बासर संतत भँवति उदास ॥
तर मयंक ऊपर निसि पाती बनी आह कस रीति ।
जानहु ससि औ निसि स्यों, भई सुरति बिपरीति ॥

(मंझन)

नेकु हँसौंही बान तजि लख्यो परत मुख नीठि ।
चौका चमकनि चौंधमें, परति चौंध सी दीठि ॥

(विहारी)

एक दिन बिहँसी रहसि कै जोति गई जग छाइ ।
अबहुँ सौंरत वह चमक चौंधि चौंधि जग जाइ ॥

(मान)

नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह ।
काटे लौं कसकति हिये गड़ी कटीली भौंह ॥

(विहारी)

जीति तिलोक निवासी भौहैं रहा न जगत जुझार ।
देखत जाहि हिये सर निभरी तेहि को जीते पार ॥

(मंझन)

अहिपुर नरपुर जीति कै सुरपुर जीनेउ जाइ ।
अब दहुँ कछु न जानिये का कहँ धरे चढ़ाइ ॥

(मान)

उर्दू भाषा वा फ़ारसी मिली हुई भाषा में कविता की नींव सन् १७५९ ईस्वी में शाहआलम बादशाह ने डाली और इसी ने अपना उपनाम आफ़ताब रख कर चार दीवान लिखे। यद्यपि कोई कोई

'वली' को जो सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं, उर्दू कविता का आदि आचार्य मानते हैं पर यह उनका भ्रम है। वली की कविता में फ़ारसी शब्द हैं ते। जरूर पर उसमें फ़ारसी और अरबी शब्दों की उतनी भर-मार और हिन्दी का बहिष्कार नहीं है कि वह हिन्दी से पृथक भाषा की कही जा सके। उदाहरण के लिये वली के इस पद को देखिये।

सजन टुक मुख सेती खोलो नकाब आहिस्ता आहिस्ता।
कि ज्यों गुल से निकलता है गुलाब आहिस्ता आहिस्ता॥

इस पद भर में सिवाय 'नकाब' और 'गुल' के तीसरा कोई शब्द ऐसा नहीं जिसके समझने में किसी अनपढ़ हिन्दुस्तानी को कुछ कठिनता हो, जिसमें 'गुल' को तो बहुतेरे लोग समझते होंगे। अस्तु

इन मुसलमान कवियों ने अपनी कविता विशुद्ध हिन्दी भाषा में की है जिसे साधारण अनपढ़ हिन्दुस्तानी भी समझ सकता है। सीधे सादे रोजमर्रा की बोल चाल में कविता करना और उसमें भाव लाना साधारण काम नहीं है। पर पद्मावति, मिरगावति, मधुमालति, माधवा-नल-कामकंदला, इन्द्रावति आदि ग्रन्थों में से किसी को हाथ में ले लीजिये तो आप को मालूम होगा कि इन मुसलमान कवियों ने कैसी योग्यता से अपनी कविता को निबाहा है।

इन्हीं मुसलमान कवियों के ग्रन्थों में एक चित्रावली भी है जिस के सम्पादन का भार सभा ने मुझे सौंपा था। यह ग्रन्थ उसमान कवि का रचा हुआ है जिसने अपना उपनाम 'मान' लिखा है। उसमान गाजीपुर का रहनेवाला था। उसके पाँच भाई थे और उसके बाप का नाम शेख हुसेन था। वह जहाँगीर के समय में था और उसने यह ग्रन्थ सन् १०२२ हिजरी अर्थात् सन् १६१३ ईस्वी में रचा। ग्रन्थ का पता सभा को सन् १९०४ में मिला। सभा की ओर से उस समय बाबू श्यामसुंदर जी खोज का काम करते थे। उन्हीं को पहिले पहिल इसकी प्रति महाराज साहेब बनारस के पुस्तकालय में मिली।

प्रति कैथी लिपि में सम्बत् १८०२ की लिखी हुई है जिसके अंत में निम्न लिखित वाक्य है—

इति श्री चित्रावली कथा संपुरन, जो देखा सो लिखा पंडित जन सो विनती हमारी, भुला आछर लीजियो संभारी। पोथी हजारी अजबसिंह जी ने लिखाया साकिन चिनारगढ़ दूध बहेलिए दसख़त फ़कीर चंद के हाथ का वोतन कड़ेमानिकपुर कोम श्रीवास्तव कायथ दूसरे ॥ १ ॥

संवत् १८०२ मिती सावन सुदी १५ रोज सोमवार को पोथी तैयार हुआ पोथी चित्रावली लिखा या हजारी अजबसिंह जी ने ख़ोम खास बहेलिया—वोतन चिनारगढ़ पातसा महंमदसाह सन् २८ अज़ीमाबाद मों पोथी लिखाया अज़ीमाबाद के सूबा नवाब जैनदी अहमदखांजी के अमल मो लिखा गया दसखत फ़कीरचंद कायथ के हाथ का वोतन कड़ेमानिकपुर के बासिंदे ॥१॥ पोथी मो पैसे लगे रुपया एक सो एक १०१) सिक्का मासोवर अेा लिखाई अेा काग़ज़ रोसनाई अेा जिल्दसाज ॥ १ ॥

इस ग्रन्थ की कथा का सारांश भी उस समय सभा की आज्ञा से उक्त बाबू साहेब ने लिखा था जो सन १९०४ की पुस्तकों की खोज की रिपोट के पृष्ठ ३०–३२ में छपा है। आप लिखते हैं—

“इस में नैपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूपनगर के राजा चित्रसेन की कन्या चित्रावली के असीम प्रेम की कहानी है जो इस प्रकार है–राजा धरनीधर पँवार कुल का क्षत्री था। इसके सन्तान न था, इस ग्लानि से उसने राज छोड कर तप करने का मन किया। फिर मंत्रियों के उपदेश से घरही शिवाराधन कर क्षेत्र (सत्र) चलाना आरंभ किया। तब शिव पार्वती ने परीक्षार्थ आकर इससे इसका सिर मांगा। जब यह दृढ होकर सिर देने को प्रस्तुत हुआ तब उन्होंने प्रसन्न हो वर दिया कि तुझे एक अपूर्व पुत्र होगा जो कुछ दिन जोग साधेगा

ग्रौर किसी स्त्री से प्रेम भी करेगा। इस आशीर्वाद से पुत्र हुआ। ज्योतिषियों ने कुण्डली बनाई ग्रौर सुजान उसका नाम रक्खा। यह अति प्रतापी ग्रौर बुद्धि विद्या निधान हुआ। एक दिन जब यह शिकार खेलने गया तो वहाँ मार्ग भूल गया ग्रौर एक पर्वत की मढ़ी में जा सोया। यह स्थान किसी देव का था। उसने इसे देख कृपा कर इसकी रक्षा करनी स्वीकार की। इसी अवसर में उसका एक मित्र आया ग्रौर उसने रूपनगर में चित्रावली की वर्षगांठ का उत्सव कह उससे भी देखने के लिये कहा। उसने उससे उस कुमार की रक्षा करने की प्रतिज्ञा कही। तब वह बोला कि इसे भी उठा ले चलें फिर आवेंगे तब ले आवेंगे। यह सलाह कर ये उसे ले उड़े ग्रौर ग्रौर चित्रावली की चित्रसारी में जाकर सुला दिया ग्रौर आप दोनों उत्सव देखने चले गए। जब रात में कुमार की आँख खुली तो वह आश्चर्य्ययुक्त हो चित्रसारी देखने लगा। वहाँ उस कुमारी का भी एक चित्र था, उसे देख वह आसक्त हो गया ग्रौर फिर रंगादि रक्खा पाकर अपना भी एक चित्र बना उसी के पास रख सो गया। सवेरे देव उसे उठा कर वहीं ले आए। जब वह जागा तो उसने स्वप्न का भ्रम किया परन्तु अपने वस्त्रों में रंग लगा पा कर सच मान उसके प्रेम में विह्वल हो चिन्तायुक्त बैठ रहा। सेवक लोग ढूँढते ढूँढते वहाँ आ पहुँचे ग्रौर उसे राज में ले गए परंतु वह प्रेम में बेसुध रहा। अंत में इसके एक सहपाठी सुबुद्धि नाम ब्राह्मण ने युक्ति से इसका हाल पूछा ग्रौर ये दोनों परामर्श कर फिर उसी मढी पर जा कर रहे। वहाँ उन्होंने अन्नसत्र जारी कर दिया। उधर इसका चित्र देख कुमारी भी आसक्त हो गई ग्रौर उसने अपने नपुंसक भृत्यों को जोगी के वेष में उसे ढूँढने को भेजा। उन में से एक यहाँ भी आन पहुँचा। इस बीच में एक कुटीचर ने कुमारी की मां हीरा से चुगली करी जिससे उसने उस चित्र को धो डाला। इसी अपराध पर उसका सिर मुँडा कर

कुमारी ने उसे निकाल दिया था। अब यह जोगी जब कुँअर से मिला और परस्पर बातों से दोनों को पता लगा तो कुमार उसके साथ रूपनगर पहुँचा और योगी के वेष में हो चित्रावली को और इसको शिव मंदिर में परस्पर दर्शनलाभ हुआ। फिर इसी अवसर में उसी कुटीचर ने उसे अपना शत्रु मान कर अन्धा कर दिया और बहका कर एक पर्वत की गुफा में डाल दिया। वहा एक अजगर उसे लील गया परंतु विरहाग्नि की ज्वाला से घबरा कर उसने उसे उगल दिया। यह घटना एक बनमानुस देखता था उसने उसे एक अंजन दिया जिससे वह फिर देखने लगा। फिर बन में घूमते हुए एक हाथी ने उसे पकड़ा और उस हाथी को एक सिंह (मूल में 'पक्षिराज') ले उड़ा। हाथी ने अपने प्राणसंकट से घबरा कर इसे छोड़ दिया। वह एक समुद्र के तट पर जा गिरा। फिर वह घूमता हुआ सागरगढ़ नगर मे जा पहुँचा। वहाँ के राजा सागर की बेटी कौलावती की फुलवारी में विश्राम कर रहा था कि उस अवसर पर सखियों के साथ वह आई और इस पर मोहित हो गई। अंत जोगी जेवाने के बहाने से इसे भी बुलवा के भोजन की वस्तु में अपना हार छिपा इसके पात्र में डाल चोरी में फँसा इसे क़ैद कर लिया। फिर एक राजा (सोहिल) कौलावती का रूप सुन इसे जीत कर लेजाने का चढ़ आया पर सुजान ने उसे हटा दिया (मारा) और कौलावती से यावत् चित्रावली मिलन की प्रतिज्ञा करा विवाह किया। इधर चित्रावली ने फिर उसी जोगी को भेजा जा पूर्व गया था। कुँवर कौलावती को ले गिरनार यात्रा को गया था वहाँ योगी ने उसे पाया और उसका समाचार ले चित्रावली के पास गया। चित्रावली का पत्र ले वह सागरगढ़ आया और योगी बन धुईं लगाई। कुँवर योगी की सिद्धि को सुन उसके पास आया और उसने उसे पत्र दिया। फिर उसे रूपनगर ले गया और सीमा पर बैठा कुमारी से कहने गया।

इसी अवसर में राजा को एक कथक ने जो सागरगढ़ का निवासी था कुछ लाभ की आशा से सोहिलराजा के युद्ध का गान सुनाया जिसे सुन राजा को कन्या के विवाह की चिन्ता हुई। राजा ने चार चितेरे राजकुमारों के चित्र लाने को भेजे। रानी चित्रावली के पास गई। उसे उदास देख हाल पूछा पर उसने बहाना किया परन्तु किसी चेरी ने द्वेष से रानी से दूत भेजने का समाचार कह दिया। उसी समय राजकुमार को बैठा वह दूत ख़बर देने को आ रहा था। रानी ने उसे मार्ग ही में पकड़वा कर कैद करा दिया। इस विलम्ब होने के कारण चित्रावली का नाम ले कुमार पागल की नाईं दौड़ने लगा। राजा तक हाल पहुँचा। राजा ने अपयश के भय से गुप्त भाव से उसे मारने को हाथी छोड़वा दिया। कुँवर ने उसे भी पराक्रम कर मार डाला। तब राजा इसे मारने को चढ़ा। उसी अवसर पर एक चितेरा सागरगढ़ से कुँवर का चित्र लेकर आ पहुँचा और सोहिल के मारने का समाचार कह कर चित्र दिखाया, तो वह इसी कुमार का ठहरा। इस पर राजा कुमार को ले गया और उससे चित्रावली को ब्याह दिया। कुछ दिन पीछे कौलावती ने विरह से संतप्त हो हंस मिश्र को दूत बना कर भेजा। उन्होंने भेंट कर पंक भ्रमर पर आक्षेप कर कुमार को चेताया। कुमार ने अपने पिता तथा कौलावती का स्मरण कर विदा माँगी और वहाँ से विदा हो सागरगढ़ आ कौलावती की भी विदा करा लिया। समुद्र पार होने में तूफान आया, किसी प्रकार वे सब प्राण बचा जगन्नाथ पुरी में पहुँचे। वहां पुरोहित (केशोपांडे) से भेंट हुई। वहाँ से अपने देश में आये। पिता माता से मिले। पिता ने आनंदबधाई की। माता अन्धी हो गई थी पुत्र के आगमन से हर्षित हो पुनः उसके नेत्र खुल गये। राजा ने पुत्र को गद्दी पर बैठा आप भजन करना आरंभ कर दिया। कुमार अपनी रानियों सहित आनंदराज्य भोग करना लगा।"

इसकी भाषा की सुन्दरता और कथा की मनोहरता को देख सभा ने इस पुस्तक की प्रतिलिपि कराई। इस ग्रन्थ की आधी नक़ल बाबू अमीरसिंह जी ने की थी पर शेष रमाकान्त ओझा ने की। प्रतिलिपि ९ जनवरी सन् १९०९ को समाप्त हुई। नकल के अन्त में निम्न-लिखित वाक्य, काशी की प्रति की समाप्ति के अन्तिम वाक्य, "पोथी में रुपैय्या लगे रुपय्या एक सौ एक १०१) लिखा मोसौअर औ लिखाई औ कागद गेसनई औ जिल्द साज।" के नीचे लिखा है—

"उसी पुस्तक की नकल श्री महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी की आज्ञा से रमाकान्त ओझा ने ता० ९ जनौरी सन् १९०९ ई० को लिख कर तैयार किया।" "द० रमाकान्त ओझा-मौजे ओझौली"।

इस प्रतिलिपि वा नक़ल को महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने किसी उर्दू पुस्तक से मिलाया था अथवा किसी अपने शिष्य द्वारा मोकाबिला कराया था। ग्रन्थ में उर्दू का पाठ ऊपर लिखा था। पर इस ग्रन्थ में पाठान्तर या शोधने के कोई अक्षर द्विवेदी जी के हाथ के नहीं थे, जिससे अनुमान होता है कि उन्होंने इसे उर्दू प्रति से अपने किसी शिष्य आदि द्वारा मिलान करा कर उर्दू पाठ ऊपर लिखाया था, और उनका इसे स्वयं शोधने का विचार था। मिलान करनेवाला उर्दू को ठीक नहीं पढ़ सकता था इसलिये पाठ में कहीं कहीं कठिन भूल रह गई थी। जिसका उदाहरण यह है—पृष्ठ–१

'दूसर जगत नामु जिन पावा, जैसे सहरी' उदधि कहवा'

इसमें 'लहरी' की जगह 'सहरी' पाठ रह गया है। हिन्दी प्रति के नक़ल करने वाले ने 'लहरी' को 'सहरी' लिखा था और उर्दू प्रति से मुकाबिला करने वाले ने भी इसे शुद्ध माना था। इसी पर विश्वास कर मैंने 'सहरी' पर '३–शफरी। एक प्रकार की मछली' नोट लिखा। इस अशुद्धि का पता मुझे एक उर्दू प्रति के मिल जाने से लगा। यह प्रति मुझे ६४ पृष्ठ तक छप जाने पर अलईपुर के रमजान मियाँ उपनाम पोथी

मियाँ से मिली। इस में देखा तो लहरी पाठ था। अनुमान होता है कि हिन्दी प्रति से नक़ल करने वाले ने कैथी 'ल' को 'स' समझ कर 'लहरी' को 'सहरी' लिख दिया था और उर्दू प्रति से मुकाबिला करने वाले ने उर्दू लिपि में लहरी और सहरी की समानता से उसे सहरी समझा। वास्तव में यह भ्रम उनको उर्दू लिपि की दुरूहता के कारण हुआ। इस लिपि में एक शब्द का दूसरा शब्द पढ़ा जाना कोई असाधारण बात नहीं है। कचहरियों में इसके उदाहरण नित्य प्रति देखने में आते है।

अभी थोड़े दिन की बात है सन् १९१० के अन्त में ६ महीने के लिये मैं इलाहाबाद की कायस्थ पाठशाला में हेड क्लर्क था। पाठशाला का कुल दफ़्तर उर्दू में है। वहां केवल हाज़िरी का रजिष्टर अंग्रेज़ी में है और कालिज और स्कूल की चिट्ठी पत्री जो अन्य स्कूलों और अफ़सरों से होती है, अंग्रेज़ी में होती है। उन दिनों मनेजर के शिरिस्ते से एक रजिष्टरी चिट्ठी लायलपुर को जो पंजाब में है भेजी गई। पता लिखा था उर्दू में। चिट्ठी लायलपुर की जगह मिर्ज़ापुर चली गई और वहां पर किसी आदमी को जिस का भी वही नाम था दे भी दी गई और रसीद चौथे दिन कायस्थ पाठशाला की शरिस्ते में पहुँच गई। लोगों को चौथे दिन रजिष्टरी की रसीद पा अत्यन्त अचंभा और कुतूहल हुआ पर जब रसीद देखी गई तो उसपर लायलपुर मुहर की जगह मिर्ज़ापुर की मुहर थी। तब लोगों को उर्दू लिपि की दुरुहता का स्पष्ट प्रमाण मिला। ख़ैरियत इतनी ही थी कि उस लिफ़ाफ़े में नोट आदि नहीं थे।

ग्रन्थकर्ता निज़ामुद्दीन चिश्ती की शिष्यपरम्परा में था और सूफ़ी था। मुसल्मानों में सूफ़ी मत हिन्दुओं के वेदांत मत का एक रूपान्तर है इसीलिये कट्टर मुसल्मान सूफियों के द्वेषी होते हैं और कितने सूफियों को मुसल्मान बादशाहों ने मरवा डाला है। कवि ने इस ग्रन्थ में ठौर ठौर पर वेदान्त और अद्वैतवाद की झलक दिखलाने में कमी नहीं की है। कथा ऐतिहासिक घटना से नहीं ली गई जान पड़ती

बल्कि कल्पनाप्रसून है। नैपाल के राजसिंहासन पर एक भी पँवार राजा नहीं हुआ है। कथा विचारने से आध्यात्मिक प्रतीत होती है और इसीलिये ग्रन्थ में सुजान को शिव का अवतार लिखा है। महादेव खंड में जब शिव पार्वती धरनीधर की परीक्षा करने गये और उससे उसका सिर माँगा तो राजा सिर देने पर उद्यत हो गया। इस पर महादेवजी प्रसन्न हो उसे वर देने लगे वहाँ कवि ने उनके मुँह से यह कहलाया है—

देखु देतहौं आपन अंसा, अब तोरे ह्वैहैं निजु वंसा।

यही नहीं कौलावती और चित्रावली अविद्या और विद्या की ही प्रतिरूप मालूम पड़ती हैं। सुजान शब्द का अर्थ बुद्धिमान् है इसीलिये उसने कौलावती का विवाह होने पर भी उससे तब तक समागम नहीं किया जब तक चित्रावली वा विद्या उसे प्राप्त नहीँ हुई। इसी लिये उपनिषदों में कहा गया है—

अंधन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव तमो य उ विद्याꣳ रताः॥
विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

कवि ने ग्रन्थ में धरनीधर के प्रतिज्ञा पालन वा दान, सुजान के अटल प्रेम, परेवा की स्वामिभक्ति और कौलावती के आत्मोत्सर्ग, का अच्छा चित्र खींचा है। इसके अतिरिक्त चित्रावली की वाटिका का वर्णन, उसका नख सिख, उसका विरह, षट्ऋतु और बारहमासा आदि देखने योग्य है। कुँवर ढूँढ़न खंड में कवि ने कितने ही देशों और प्रदेशों का वर्णन किया है। यद्यपि इनमें कई एक की दिशा और स्थिति का ज्ञान भ्रमपूर्ण है तो भी जिस समय यह ग्रन्थ लिखा गया उस समय एक साधारण नगर के रहनेवाले के लिये भूगोल का इतना ज्ञान होना कुछ कम नहीं है। सब से अचम्भे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अँग्रेज़ों का नाम भी लिखा है और उनके देश और उनके आचार व्यवहार का वर्णन उसने दो चौपाइयों में किया है। चौपाइयाँ ये हैं—

बलंदीप देखा अंग्रेजा, तहाँ जाइ नहिँ कठिन करेजा।
ऊँच नीच धन संपति हेरा, मद बराह भोजन जेहि केरा ॥

उस समय अंगरेज़ों को आये इस देश में बहुत थोड़े दिन हुए थे। ईस्ट इंडिया कंपनी सन् १६०० में लंडन में बनी थी और १६१२ में सूरत में कंपनी ने अपना गुदाम बनाया था। उसके एक वर्ष बाद १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है। उस समय में कवि का एक साधारण गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रह कर अंग्रज़ों के विषय में इतनी जानकारी रखना कोई साधारण बात नहीं है। हम मान सकते हैं कि वह मक्का हज्ज करने गया होगा पर तो भी उसका इतनी जानकारी रखना और ग्रन्थ में लिख जाना उसकी बहुज्ञता का स्पष्ट प्रमाण है।

सब से उत्तम अंश चित्रावली में चित्रावली की माता का वह उपदेश है जो उसने उसे बिदा होते समय दिया था। यह उपदेश स्त्रियों के बड़े काम का है और बालिकाओं के लिये अत्यंत उपयोगी है।

इस ग्रन्थ में सबसे अधिक विलक्षण बात यह देखी जाती है कि कवि अपनी कविता में लोकोक्तियों का संग्रह यथास्थान करता गया है। हम उसके दो चार उदाहरण यहाँ दिये देते हैं।

मान करहु जो करि सकहु, कथनी अकथ अपार।
कथे न कर कछु आवइ, करनी करतब सार ॥
कौन भरोसा देह का, छाड़हु जतन उपाइ।
कागद की जस पूतरी, पानि परे घुलि जाइ ॥
तब लहु सहिये बिरह दुख, जब लगि आव सो बार।
दुःख गये तब सुक्ख है, जानै सब संसार ॥
कहाँ सो गोड़िया तुच्छ तन, कहाँ किसन अस राउ।
वैरी जो बस कै मिलै, लेइ सो आपन दाउ ॥
सब कहँ अमिरित पाँच है, बंगाली कहँ सात।
केला काँजी पान रस, साग माँछरी भात ॥

क्षत्रिय सुनि जो ना करै, तिय अरु गाइ गोहारि।
पुहुमी कुल गारी चढ़ै, सरग होइ मुख कारि॥

खरग सँभारै सूरमा, वैरी मुख समुहात।
तौ लहु पौरुख ना तजै, जौलहुँ आव न रात॥

गहि जो भिखारी मारइ, दुइ घट यहि जग होइ।
एक हत्या काँधे चढ़ै, पुनि भल कहै न कोइ॥

जैसे पनही पाउँ की, तैसे तीय सुभाउ।
पुरुष पंथ चलु आपने, पनहीं तजै न पाउ॥

विनसत कौल न बार भइ, गयो अर्थ जग भान।
मारेसि ईंट देखाइ गुड़, सोई भा उपखान॥

मैं तोहि डारेहुँ लै तहाँ, जहाँ न डोलै पाँखि।
जो जस करै सो पाव तस, कुँअर देखु लै आँखि॥

मैं न कवि हूँ और न मुझे कवित्त और छन्दों का कुछ ज्ञान ही है। मैंने हिन्दीभाषा के साहित्यग्रन्थों को भी अच्छी तरह नहीं देखा है। मेरी आयु का विशेष भाग भारत के प्राचीन वैदिक ग्रन्थों और शुष्क दर्शनों के अवलोकन और पर्य्यालोचन में बीता है। मुझे संस्कृत भाषा के काव्य आदि के देखने का भी कभी उतना अवकाश नहीं मिला है और न मैं उन विषयों को जानता ही हूँ। ऐसी अवस्था में मुझ से ऐसे ग्रंथ के संपादन की क्या आशा की जा सकती है?। मुझ से यह काम लेना सूखे अमचुर को बलात् मुरब्बा बनाना है। फिर भी सभा की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर इस ग्रन्थ को जहाँ तक हो सका है मैंने शोधा है और कठिन देहाती वा ग्रामीण शब्दों का अर्थ भी टिप्पणी में दे दिया है। संपादन के काम से अनभिज्ञ होते हुए भी मैंने यथाशक्य इसको संपादन करने में अपनी ओर से कसर नहीं की है। प्रूफ़ देखने और तदनुसार शुद्ध करने में असावधानी होने तथा ६४ पृष्ठ तक उर्दू

की प्रति न मिलने के पूर्व छप जाने से अशुद्धियाँ रह गई हैं जिनके लिये शुद्धिपत्र लगा दिया है।

ग्रन्थ का विभाग ठीक नहीं था मैंने इसे विषय के अनुसार खंडों में विभक्त कर दिया और पाठकों के सुभीते के लिये उसकी सूची भी लगा दी है। 'काम शास्त्र खंड' 'हंस खंड' का अनुखंड है, स्वतन्त्र खंड नहीं, भ्रम से इस पर (४१) का अंक लिख गया है। पाठकों को इसे सुधार लेना चाहिये। ४१वां खंड 'चित्रावली गवन खंड' है।

इस ग्रन्थ के संपादन और संशोधन में मुझे रमजान उपनाम पोथी मियां की उर्दू प्रति से बड़ी सहायता मिली जिसके लिये मैं उन का कृतज्ञ हूँ। यदि मुझे यह प्रति न मिलती तो मैं इस ग्रन्थ को ऐसा संपादन न कर सकता और कितने ही अंश संदिग्ध रह जाते।

फिर भी संभव है कि दृष्टिदोष वा भ्रम से कुछ और अशुद्धियाँ रह गई हों। आशा है कि पाठक उनको सुधार लेंगे क्योंकि मनुष्य सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं हो सकता।

जगन्मोहन वर्म्मा।

स्थान, काशी नागरीप्रचारणी सभा

२४ दिसम्बर सन् १९१२

खंड-सूची

पृष्ठ

शुद्धिपत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१८	जैसे सहरी' उदधि कहावा	जैसे लहरी उदधि कहावा।
	२१	३ (शफरी) एक प्रकार की मछली	० ०
३	३	कोऊ बिसरन नाहीँ	कोउ बिसरत नाहीँ
७	४	खोदु हिय इन्दू	खोइ हिय दुंदू
	६	कही न जग पति याइ कोउ,	कहं न जग पतियाइ कोउ,
८	४	अस भा अदल मते हरि बानी	अस भा अदल मथे हरिबानी,
	७	सहस खाट कंचन के साजे,	सहस घाँट कंचन के साजे,
	२२	चौंधे दृष्टि सौंहे जेहि हेरे	चौंधि दिष्टि सौंहे जेहि हेरे,
९	१०	बादिहि लोगि	बादिहि लोग,
	१२	मानसा होइ	मनसा होई
१०	९	तेहि देई जगाई	तेहि देइ जगाई
११	९	सुमर समै पुनि सूर	समर समै पुनि सूर
	२२	तजहि न एकौ तिनहु कहाला	तजहिँ न एकौ तीनिहुँ काला।
१३	९	कीय व्योहारा	किय व्यवहारा
	२१	प्रेम अँकुर जहँ सिर काढ़ा,	प्रेम अँकुर जहाँ सिर काढ़ा,
	२३	प्रेम कुमुर जहँ बदन उघारा, बिरह आई तहँ मंजन सारा।	प्रेम मुकुर जहँ बदन उघारा, बिरह आइ तहँ मंजन सारा।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	२	हौं तीनहु के भेद कहु ...	हौं तीनिहुँ के भेद कहि
	७	मन होई गियाना ...	मन होइ गियाना।
	१७	जहँ लहु सुभि ...	जहँ लहु सूभि
१६	१६	दीया बाजु मग ...	दिया बाजु माग
२१	१	राहु केतु दोऊ ...	राहु केतु दोउ
२४	१	जहँ लाउ राउत रान ..	जहँ लहु राउत रान
	१८	मारहु खांड पचरि ...	मारहु खांड प्रचारि
	२३	बिष भाग ...	... विष भरा
३७	२३	कुँअर जहाँ आवा। ...	कुँअर जहँ आवा,
४२	३	रहहु जाई ...	... रहहु जाइ
	१५	चित्र विचित्र सिँगरा ...	चित्र विचित्र सिँगारा,
४४	२०	जब कोरान ...	... जब किरान
४८	१३	भौंर कँवाल तेहि संग ...	भौंर कँवल तेहि संग
५१	४	दीसन आना ...	... दीस न आना
५५	२२	कायहि लगा ...	... कायहि लागा
५९	७	अस लगेउ तुम्र भाग ...	अस लागेउ तुम्र भाग
६०	२१	पानि मोती ...	... पानि मोति
६१	११	चकइ चकवा ...	... चकई चकवा
६२	७	बहु कर नास ...	... बहु कटनास
	२१	ठौर ठौर सौ अधिक बसाहीँ ...	... ठौर ठौर सो अधिक बसाहीँ
	२६, २७	बहु कर बास रहहि ...	बहु कटनास रहहिँ
६६	२४	बेलिन खूँदी ...	... बेलि न खूँदी
६७	६	आपन-चित्र अपु पै लीखा.	आपन चित्र आपु पै लीखा,
	१८	अग्या होई ...	... अज्ञा होइ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	१०	सिंभू सरीर ...	... संभु सरीर
७३	२०	रहस न जाहीँ	... रहसन जाहीँ
७४	११	सोइ चीन्ह रखा तहाँ जो देखा ...	... सोई चीन्ह रेखा जो देखा
७५	१२	दुई जनु डँका	... दुइ जनु डंका
८३	१९	कहा सो तरागन महँ भावा	कहाँ सो तारागन महँ भावा
८९	१५	हीरदै लिखा ...	... हिरदय लिखा
९१	२२	गुरु बचन ...	... गुरू बचन
९२	१०	परट हँसै ...	... परगट हँसै
९५	७	सेल उर मारी	... सेल उर मारा
९६	३	श्रीपंचम मानहीँ	... श्री पंचमि मानहिँ
९७	१३	चित्र देखा ...	... चित्र देखि
	१५	जीउ अधर बईठा	... जिउ अधर बईठा
	२१	जैस उगवत सूर के	... जैसै उगवत सूर के
९८	२०	धरमसाला महँ	... धरमसाल महँ
१०१	१४	गुरुसोँ कही ...	... गुरूसोँ कही
१०३	१०	भोग आचार ...	... भोग अचार
१०८	१३	खाइ रह ठग मूरि सी	... खाइ रहा ठग मूरि सी
१३०	५	राज-परीसा खावा	... राज परोसा खावा
	७	बार महँ आहा	... बार महँ अहा
१३२	२२	दहु अँकोरा	... देहु अँकोरा
१३३	१	सरग लागा ...	... सरग लगा
१३४	१२	बिधि देकै सुदिष्टि दे मोंही,	बिधिना अस सुदिष्टि दे मोहीँ,
	१३	दूजा जाइ न हिय महँ लँखा, जहँ देखोँ तहँ एकै दीखा।	दूजा जाइ नहि यमहँ लेखा, जहँ देखोँ तहँ एकै देखा।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध		शुद्ध
१३७	१	पहरु आगै	...	... पहरू जागै
	७	सीद्ध होइ सब काज	...	सिद्ध होइ सब काज
१३८	८	एक बामन अरु माट पुनि,		इक बाभन अरु भाँट पुनि,
	२०	सन चढ़ि मागे नहिँ कोई.		पैसन चढ़ि मागै नहिँ कोई
१४१	२५	देखत रूप पदुमिनि नागिनि	...	... देखत रूप पदुमिनी नागिन
		धामिनि जेउ उठि उठी लागिनि	...	... धामिनि जोउ उठि-उठी लागिन
१६५	३	हिय हु लास बिहँसे अधार	...	... हिय हुलास बिहँसे अधर
	४	होइ न घेरे कोई		... होइ न घेरै कोइ
	६	बैठि पहि ठाऊँ		... बैठि यहि ठाईं
	१६	भँवइ बास लागि बारी बारी	...	... भँवइ बास लगि बारी बारी
१६६	७	तिय तन तुछक किमि कै कहई	...	... तिय तन तुच्छक किमि कै सहई
१६९	५	मिरिग क छाता		... मिरिग क छाला
१७०	२०	जागिहि काकी चिंत	...	जोगिहि काकी चिंत
१७१	२३	रह घट सँसा		... रह घट स्वासा
१७२	६	नीँद न अवत रैनि दिन,		नीँद न आवति रैनि दिन,
१७५	६	बिहरै सुनत बजर छाती,		बिहरै सुनत बजर की छाती
	८	जाइ निआरावा		... जाइ नियरावा
१७६	१०	हुपुमी सरग		... पुहुमी सरग
१७७	१२	निहचै नग जानि डारो कोई	...	... निहचै नग जनि डारो कोई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२२	देखत दुहूँ आनन्द भा,	देखत दुहूँ अनंद भा,
१७८	१६	एकते निकसि ऐक महँ परा ...	... इक तैं निकसि एक महँ परा
१७९	२५	गा छिपाइ चटेक जनु कीन्हा ...	... गा छिपाइ चेटक जनु कीन्हा
१८१	८	धुआँ तस उठा	... धुअँ तस उठा
१८३	४	सागर जोहर साजै चाहा,	सागर जोहर साजै चहा
	१९	जाही दीन जनमी	... जाही दिन जनमी
१८४	१	सुपूरुष बाचासार	... सुपुरुष बाचासार
	६	आगिल परै नहि हीना,	आगिल परै न हीना
	८	पूँछि नीअर होइ	•... पूँछि नियर होइ
१८५	१	दुर जानि एह पुहुमी केरे,	दूर जानि यहि पुहुमी केरे
१८६	२	अहित जो आही	... अहित जो अही
१८८	९	गहि जो भीखारी मारई,	गहि जो भिखारी मारइ
	१९	ततैँ बरजे सकल जन,	तातैँ बरजे सकल जन
१८८	२२	तासों जी उन लवहीँ, अंत जो साथी नाहीँ।	तासों जीउ नलावहिँ, अन्त जो साथी नाहिँ।
१९०	२४	रुहिर सुखिगा गात	... रुहिर सूखिगा गात
१९१	११	जुझि साज जो कुँअ-रहि सूझा, ...	... जूझिसाज जो कुअँरहिँ सूझा,
	१३	जुझि सों काजा	... जूझिसों काजा
१९४	१०	चढ़ि अटारि देखाहँ रनिवाँसा ...	... चढ़ि अँटारि देखहिँ रनिवाँसा,
१९६	१३	रूपकथार सोन करढका,	रूपकथार सोन कर टका,
२००	९	फेनि पातरिं मुहँ न समाई,	फेनि पातरी मुहँ न समाई,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	१६	पुहुप ऊतारा	... पुहुप उतारा
२०३	१७	बारी बारी दोऊ भनेउ	बारी बारी दोउ भनेउ
२०५	२३	उँच धुराहर	... ऊँच धुराहर
२०६	१६	पिरम बैरि ...	... परम बैरि
२१०	७	(४१) काम शास्त्र खण्ड	
२१२	११	काँध नवाए निसिदिन रँहई,	काँध नवाएँ निसि दिन रहई,
२१८	२२	निअरही रतन न चीन्हे नैना ...	... नियरहिँ रतन चीन्है नैना
२२७	२२	कौँलावति जहाँ दीन्ह ब्याही ...	... कौँलावति जहँ दीन्ह बियाही
२३१	१५	पुनि मन कहिसी	... पुनि मन कहिसि

नोट—इसके अतिरिक्त कहीँ कहीँ अनुस्वार (ं) का चन्द्रविन्दु (ँ) और चन्द्रविन्दु का अनुस्वार छप गया है जिन्हें पाठको को यथास्थान शुद्ध कर लेना चाहिये।

चित्रावली

—:○:—

(१) स्तुति खंड ।

मंगला-चरण और ईश्वर-स्तुति ।

आदि बखानौं सोई चितेरा , यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा ।
कीन्हेसि चित्र पुरुष औ नारी , को जल पर अस सकै सँवारी ॥
कीन्हेसि जोति सूर ससि तारा , को अस जोति सकै जग पारा ।
कीन्हेसि बचन वेद जेहि सीखा , को अस चित्र पवन पर लीखा ॥
अस विचित्र लिखि जानै सोई , वहि बिनु मेट सकै नहि कोई ।
कीन्हेसि रंग स्याम औ सेता , राता पीत और जग जेता ॥
कीन्हेसि रूप बरन जहँ ताईं , आपु अबरन अरूप गुसाईं ।

अगिनि पवन रज पानि के, भाँति भाँति ब्योहार ।
आपु रहा सब माँहि मिलि, को निगरावे[1] पार ॥ १ ॥

सो करता सब माँह समाना , परगट गुपुत जाइ नहि जाना ।
गुपुत कहउँ तो गुपुत न होई , परगट कहउँ न परगट सोई ॥
दूर कहउँ तो दूर न लेखा , नियरे कहउँ तो जाइ न देखा ।
सब वहि भीतर वह सब माहीं , सबै आपु दूसर[2] कोउ नाहीं ॥
जो सब आपु रहा जग पूरी , तासों कहा नेर औ दूरी ।
दूसर जगत नामु जिन पावा , जैसे सहरी[3] उदधि कहावा ॥
ज्ञान नैन जो देखै कोई , बारिध बिना आन नहि होई ।

१—बिलगावे, अलग करे । २—एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । मि० सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । ३—शफरी । एक प्रकार की मछली ।

जहवाँ सिन्धु अपार अति, बिन तट बिनु परिमान।
सकल सृष्टि तेहिमाँ गुपुत, बालू कनक समान ॥ २ ॥

करता जिन जग रूप सँवारा, तेहिक रूप को बरनइ पारा ?।
आपु अमूरति मुरति उपाई[1], मृगनि माँतो[2] तहाँ समाई ॥
मन के चरन पंगु जेहि ठाईं, बपुरी जीभ चलइ कहँ ताईं।
मन की डीठ नैन जहँ मूँदे, सो मगु जीभ चरन क्यों खूँदे[3] ॥
परगट गुपुत बिधाता सोई, दूसर और जगत नहिँ कोई।
है सब ठाउँ नाहिँ कोउ ठाईं, मुनिगन लखहिँ कि अलखगु साईं ॥
सृष्टि अनेक लखे नहि पाई, सिरजनहार लखा केहि जाई ॥

अलख अमूरत सोइ बिधि, लखै न मूरति कोय।
सो सब कीन्ह जो चाहा, कीन्ह चहै सो होय ॥ ३ ॥

कीन्हेसि जो अति गिरवर[4] गरुवा, चहइ तो करै तृणहु तै हरुवा[5]।
औ पुनि तिनहि बज्र करि धरई, मुनिवर लागहिँ तो नहि टरई ॥
कीन्हेसि बारिध अगम अपारा, चहइ तो करै जैस लघु तारा[6]।
औ तारहि को समुँद बनावै, मेरु बबूला जैस तरावै ॥
कीन्हेसि अगिन बीच अति ज्वाला, चहै तो करै हिमंचल पाला।
औ पानी महँ अगिन सँचारै, पाहन मेलि जैस तृन जारै ॥
भंजइ गढ़इ बिधाता सोई, दूसर और जगत नहिँ कोई।

सोई करता रमि रहा, रोम रोम सब माहिँ।
तिन सब कीन्ह सिरिष्ट[7] यह, गाहक[8] कीन्हो नाहिँ ॥ ४ ॥

सो करता जेहि काहु न कीन्हा, सब कहँ जिवन जन्म जेइ दीन्हा।
दीन्हेसि काया जेहि जग पोषा, दीन्हेसि माया जेहि न सँतोषा ॥

१—उपजाया, उत्पन्न किया। मि० पहिले ओषध भूरि बनाई। ता पीछे सब रोग उपाई। २—मत्त, भ्रम में पड़ी हुई। ३—सं० कन्दन। कूदें, फादें। ४—पर्वत, पहाड़। ५—हलका। ६—ताल। ७—सृष्टि। ८—सं० अवगाहक—जानने वाला, ज्ञाता।

दीन्हेसि अन्न जिये जेहि खाई, दीन्हेसि ज्ञान रहइ लौ[१] लाई।
दीन्हेसि हिया गुनै जो गुनना[२], दीन्हेसि सरवन[३] सुनै जो सुनना[४] ॥
जहवाँ लागि जीव जग माहीँ, भुगुति[५] देत कोऊ बिसरत नाहीँ।
पहिले भुगुत दई जो चाहा, पीछे जीव आनि घट माँहा ॥
पहिले ओषध मूरि[६] बनाए, ता पीछे सब रोग उपाए।

मान[७] रहै जग जानि के, आस होइ भय त्यागि।
बिछुरन रोग दिहेसि सबन्ह, काहु दरसन लागि ॥ ५ ॥

ए गुसाइँ तैं अस विधि अहई, अस्तुति तोर तोहिँ पहँ कहई।
अस्तुति बारिधि अगम अपारा, कोउ न जगत महँ पैरन हारा ॥
साधुन बुद्धि तीर लगि जाई, काँपइ जाँघ देखि गहिराई[८]।
जब तै बिधि यह सृष्टि उपाई, औ जब ताईँ रहहि बनाई ॥
जहँ लहि सुर-नर-मुनि-गन अहहीँ, जहँ लग लोक रसातल अहहीँ।
जहँ लग बनसपती[९] तरु पाता, रोम रोम सब जीव क दाता ॥
रसना होइ होइ अस्तुति सारहिँ, सीपक[१०] एक कहै नहि पारहिँ।

जेहि तै बड़पन नहि गुनै, तऊ बड़ापन तोहिँ।
जेहि तै लघु नहि और कछु, सो लघु छाजै मोहिँ ॥ ६ ॥

मोरे मुख कछु कही न जाई, देखहु रसना करी हँसाई।
रंचक[११] जीभ रही मुख परी, विधि अस्तुति कारन इकसरी ॥
अस्तुतिमान[१२] पाय अस कूदी, बुद्धि आइ पहिले मुख मूँदी।
एहि मुख और कंज तग कहा, देवतन्ह जिनहि लाइ हँसि कहा ॥

१—लव, लव लाना ध्यान लगाना, विचारना। २—गुणन गुनने का विषय = ज्ञान, विचार, निश्चय। ३—श्रवण, कान। ४—सुनने का विषय, शब्द। ५—भुक्ति = भोजन, अन्न। ६—मूल, जड़ी। ७—प्रमाण। ८—कहीं कहीं कहराई पाठ है कहराई = (فا० कहर = भयानक) का भाववाचक है – भयानकपन। ९—वनस्पति, वृक्ष लता गुल्मादि उद्भिज। १०—फा० इपाक-सींक, तिनुका। ११—एक रंच मात्र – छोटी सी। १२—स्तूयमान।

रूप अबरन[1] को बरनै पारा, रहै मौन होइ इहै बिचारा।
इहवाँ बोलि सकइ नहिँ कोई, बिनती करउ होइ सो होई॥
बिनती सो जो होइ मयारा[2], बेगि करै वह सागर पारा।

गन-गँधरब - मुनि - देव -नर, महि पाताल अकास।
वहिक आस सब जग करै, वह न काहु के आस॥ ७॥

कहिन कि जिन आपहि पहिचाना, तिन कछु मरम तोर है जाना।
जो सब भो रम रम[3] जग माहीं, मोहिँ न मोह देखावसि काहीं॥
जो मोहिँ सों बिन मोह छिपाई, केहि कारण किन्ह मोह उपाई।
दियो नैन पै दियो न जोती, बाज पानि केहि कारन मोती॥
इन की जोति जोत जेहि होई, तेहिक भरोस करै सब कोई।
कबहूँ सूर करै उजियारा, कबहुँ दीप कबहूँ मसियारा[4]॥
बिधिना दियो सो लोचन माहीँ, अच्छे पहिचान्यो नहिँ तोहीँ।

कहेँ कहो न सकों मैं, निकट रहहुँ नित तोहिँ।
केहि अभाग केहि अधरम, नहिँ दरसावसि मोहिँ॥ ८॥

कब लगि नट ज्यों आपु छिपावसि, इह जग पुतरी काठ नचावसि।
जग भूला यहि काठ के नांचा, जानि न जाय झूँठ अरु सांचा॥
सांचा छिपा झूँठ के पाछे, झूँठहि सांच करहि का काछे।
सांचा बहुरि तोर कल दोरा, पट उघारि नट जगत निहोरा॥
मुख दरसाव परम उजियारा, जाहिँ बिलाइ तिमिर औ तारा।
एक जोत परगट सब ठाऊँ, रहइ न कतहूँ दूसर नाऊँ॥
तू सब जानइ बड़ औ छोटा, कौन खरा कंचन को खोटा।
पट उघारु संसार जिय, संसय रहा समाय।
जब लगि सूझ न लोचनहिँ, अंधा नहि पतियाय[5]॥ ९॥

१—अवर्णनीय। २—प्रेम करनेवाला। ३—रम के। ४—मशाल।
५—अंधा जब पतियाय जब आँखों देखइ।

महम्मद की प्रशंसा

पुरुष एक जिन्ह जग अवतारा, सबन्ह सरीर सार संसारा।
आपन अंस कीन्ह दुइ ठाऊँ, एक क धरा मुहम्मद नाऊँ॥
पहिले उठा प्रेम विधि हिये, उपजी जोति प्रेम की दिये।
वही जोति पुनि किरिन पसारी, किरिन किरिन सब सृष्टि सँवारी॥
जोतिक नाउँ मुहम्मद राखा, सुनत सरोष कहा अमलाखा[1]।
वह सूरज यह किरन सँवाई[2], वह दधि[3] यह सब लहर उपाई॥
जो न करत वह ओकर चाऊ, होत न जग महँ एक उपाऊ[4]।
लहर बिना दधि सोह नहि, किरन बिना दुति सूर।
साजा कारन एक जग, जासों प्रेम अँकूर॥ १०॥

गुपुत उपाया परगट आना, किया जगत वह एक पराना।
जो परान संसारक माहीँ, कस न भई तेहि सँग परछाहीँ[5]॥
संग्या करज चाँद मनियारा, भा विखंड[6] जानै संसारा।
जो कपटी भोजन विष विसा, बोलि उठा कर माँह गिरासा[7]॥
एते पर जो चीन्हेसि नाहीँ, जन्म अँबिरथा[8] गा जग माहीँ।
जो भर जनम करे विधि जापा, बिनु वोहि नाम होहि सब लापा[9]॥
एक बार जो मन बिच कहई, नाम महम्मद विधि निधि लहई।
करनी खोटी मोर सब, का कहि विनवौं तोहिँ।
अपनी उम्मति[10] जानि कै, लै निरबाहब मोहिँ॥ ११॥

१—अमलाक—फरिश्ते। २—सँवारा। ३—उदधि=समुद्र

४—सृष्टि। मुसलमानो की हदीस में लिखा है कि 'यदि मुहम्मद न होते तो ईश्वर आकाश और पृथ्वी न रचता' मिलाओ।

اگر تو نبودی محمد زماں – تو بیدا نہ کردم زمیں آسماں – لولاک لما خلقت افلاک

५—मुहम्मद साहेब के परछाहीं नहीं थी। ६—दो खंड, महम्मद साहेब ने चाँद के दो टुकड़े किये थे। ७—एक बार मुहम्मद साहेब को विष दिया गया था तब हाथ में ग्रास बोल उठा था। ८—मृथा = व्यर्थ। ९—प्रलाप। १०—अनुयायी।

महम्मद के चार मित्रों की प्रशंसा

चार मीत तेहि संग सयाने, सूर समान चहूँ खँड जाने।
चारों करहिं एक की चिंता. एक मतें वे चारों मिंता॥
पहिले अबूबकर सतबादी, सत्त जान जो भो अनबादी।
दूजे उमर न्याउ प्रतिपारा, जे बिध कारन सुतहि सँघारा॥
तीजे उसमाँ पंडित ज्ञानी, जे करि ज्ञान लखा विधि बानी।
चैाथे अली सिंह रन सूरा, दान खड्ग जे तिहुँ जग पूरा॥
परम बचन जो महमद पावा, उन चारिहुँ कहँ आनि सुनावा।

इन के पंथ जो कोइ चढ़इ, जनम न भूलै पार।
निर्मल चारिउ दीप महँ, सात दीप उजियार॥ १२॥

राजा की प्रशंसा।

नूरुद्दीन महीपति भारी, जाकर आन मही महँ सारी।
चारिउ खूँट नवाई खांड़े, गजपति रहा न कोउ बिनु डाँडे॥
सात दीप पठवई सेवकाई. फिरी जलंधर पार दोहाई।
आवहि अरबी ग्रोर इराकी, रस मिसिरी कस्तुरी खनाँ की॥
आवहि चली चीन की चीनी, सहसन माँह एक इक बीनी।
आवहि चली पदुमिनी जेते, सहसन माँह एक इक ते ते॥
राति दिवस ग्रो साँझ सकारा, भरा पेसकस देखिय बारा।
जहँ लगि पुहुमि फिरइ सब कोई, काहुक लेइ काहु कहँ देई॥
सात खंड बिनवइ सेवकाई, फिरी चलइ हर ग्रोर दुहाई।

सूरज बाज इन्द्रगज, सस मृग छाडइ इन्दु।
भैांह चढ़ावे जेहि घरी, जहांगीर बलवन्दु॥ १३॥

वैरी रहइ न कोउ पग रोपी, जेहि पर चढ़े तुरंगम कोपी।
चढ़इ तुरंग होइ अनुरागी, कै अहेर कै हेकर[1] लागी॥

१—हेकड़ी – लड़ाई।

जो बर कइ बैरी पग चाँपे, सबन डरैँ पताल कुल काँपै।
जहाँ तहाँ परगट सब देसा, बाजि चरन चीन्हैँ अहि सेसा॥
हेठ जाइ बलि बासुकि चाँपा, ऊपर डरि सुरपति पुनि काँपा।
सब जग जीति खोटु हिय इन्दू, करइ रैन दिन केलि अनन्दू॥
सदा रहइ बिधिना जगमाहीँ, जाग माँ थे यह बिधि परछाहीँ।

कहीँ न जग पति याद कोउ, सुनि अचरज संसार।
होहिँ छहों रितु एकठाँ, जहाँगीर दरबार॥ १४॥

अब सुनु बरनि सुनाओं तोहीँ, जेसे कोऊ न दुलखइ[१] मोहीँ।
तपइ साह जस रबि उजियारा, ग्रीषम होइ रहा संसारा॥
बहुरि उदय जस भानु करेई, पल महँ उदय अस्त सब लेई।
भानु सौंह बरु चख ठहराई, संमुख साह निहारि न जाई॥
पुनि सोंहे गजपती सोहाई, साह बार पावस रितु आई।
मेघ बरन रिसि भरे अचेता, अंकुस बीजु दन्त बक सेता॥
गरज शबद बरषा मद बाढ़ा, माँथे चीन धनुष पुनि काढ़ा।

घंटा घूँघुर मेघ पिक, चहुँ दिसि होइ भनकार।
संभोगिनि कहँ अति रहस, बिरहिन हिये बिकार॥ १५॥

पुनि नव सान सजी बरनारी, लिए सरद रितु आनि जोहारी।
ससि आनन मुक्ताहल तारे, खंजन नैन सेन औ कारे।
बेसर मुकुता सोहिल[२] तारा, सुभग चरन पंकज रतनारा॥
जो गढ़पती बांध बर आने, गढ़ भाने औ तोरे माने।
हिमि ऋतु तिन्ह के उर भरि रहा, हिये करेज कँपावन महा॥
साजि सिसिर रितु तिन्ह की नारी, हिये जाड़ तन चीर सँवारी।
चितवहिँ सौंह साह की ओरी, दुहुँ हँसि मिलहि कि लावहिँ डोरी[३]॥

१—झूठा बनावे। २—सुहैल (سہیل) = एक अत्यन्त प्रकाशमान तारा।
३—डालीं।

बरन बरन उमराव तन, चोवा चन्दन चारु।
फूले मनहुँ बसन्त रितु, मँहकि रहा दरबारु॥ १६॥

पुनि कलि अदल उमर सम कीन्हा, धन सो पुरुष जो यह जस लीन्हा।
अस भा अदल मतै हरि बानी, छाना नवा पुराना पानी॥
पुहुमी परै न पावै कांटा, हस्ती चांपि सकै नहिँ चांटा।
गाय सिंह गवनहिँ एक गली, बल भा अबल, अबल भा बली॥
सहस खाट कंचन के साजे, पाट डोर तेहि बार बिराजे।
दुखिया छुअत होय झनकारा, उठै कांपि सकटक खन्धारा॥
पातसाह सुनि निकट बुलावै, दरसन पाय दाद[1] पुनि पावै।

जहांगीर के अदल पर, पूरि रहा जग चैन।
सरवन[2] सुना नैासेरवां, साह सो देखा नैन॥ १७॥

पुनि नवरोज सराहैां काहा, धन सो पुरुष जे पाया लाहा[3]।
दलबादल[4] जहँ अम्बर छावा, ससि सूरज तेहि मांह बनावा॥
पहिले बारह रासि बनाए, तो सब नखत तहां लिखि लाए॥
ससि बुध सूक बृहस्पति साजा, आपन आपन ऊँच बिराजा।
भैाम सनीचर दिनकर संगा, तिन्ह कर तेज कीन्ह रवि भंगा॥
नो अंबर लखि रहस-निधाना, मनहि लजानो सरग पुराना।
देखि अपूरब भांत सँवारी, निसि दिन फिरै लागि बलिहारी[5]॥

कहा कहैां सो गा विकल, इन्द्र होइ पति जाहि।
कहिस कि वह जो इन्द्र है, इहै इन्द्र सर आहि॥ १८॥

ऊपर सब सँयोग सुभ साजा, तेहि पर हाटक पार बिराजा।
लागे हीरा रतन अलेखैं, चैांधे दृष्टि सोंहे जेहि देखैं॥
मोति अनेक लाग जस ओला, एक इक देस एक कर मोला।

१—न्याय। २- श्रवण=कान। ३—लाभ। ४—शाह मियाना। चंदनी।
५—मुसलमानों का विश्वास है कि तारागण नहीं घूमते बल्कि आकाश वा स्वर्ग ही घूमता है।

तेहि पर बैठ छत्रपति राजा, एक छत्र चहुँ खंड बिराजा ॥
छत्रिन्ह आइ छत्र सो पूजा, और छत्र जग रहा न दूजा।
कलपबिरिछ भा यह जग माहीं, कोस सहस दस पसरी छाँही ॥
जग निचिंत सोवै जेहि छाहीँ, चिउँटी काटि जगावै नाहीँ।
विधिना सौं जाँचै जगत, पुहमी धरे लिलाट।
जौलहु धरती सरग दोउ, रहै छात औ पाट ॥ १९ ॥

तहाँ बैठि पुहुमी पति भारी, देइ दान कर बार उघारी।
एकहि बेर एक कहँ देई, दूसरि बेरि न कोऊ लेई ॥
पिरथी बली होत जो आजू, माँगत देखि दान कर साजू।
बादि मरजिआ समुँद धसाई, बादिहि लोगि रतनगिरि जाई ॥
बादि सुमेरु लागि जग धावै, कस न बार जहँगीर के आवै।
देइ रतन जत मनसा होइ, सोन रूप कह बरज न कोई ॥
महूँ सुना कि अनेक भिखारी, कीन्हे साह नेवाजि[1] हजारी।
आयौं सोई बार सुनि, लिए गरीबी साज।
कहा जो माँगु गरीब है, साह गरीब नेवाज ॥ २० ॥

शाह निज़ाम की प्रशंसा।

शाह निज़ाम पीर सिधदाता, दिष्ट तेज जिमि रवि परभाता।
नारनौलि भीतर अस्थाना, उदे अस्त लइ सब कोइ जाना ॥
जा कहँ एक किरन सम जोवा, जनम पाइ ते तिमि जिअ खोवा।
जौ खिन नैन मया कै खोला, पाहन मानिक होइ अमोला ॥
जा कहँ मया दिष्टि भरि हेरा, ते दुनहु जुग सौं मुह फेरा।
जासौं ज्ञान वचन अनुसारा[2], ता कहँ वचन सिद्धि देनिहारा ॥
भौसागर महँ है कढ़हारा[3], दुखी सुखी सब पार उतारा।

१—नेवाज कर = कृपा कर। दान देकर। २—चलाया, कहा।
३—निकालने वाला। मरजिया।

गहि भुज कीन्हे पार जे, बिनु साहस बिनु दाम।
कश्ती[1] सकल जहान के, चस्ती साह निज़ाम ॥ २१ ॥

बाबा हाजी की प्रशंसा।

बाबा हाजी पीर अपारा, सिद्ध देत जेहि लाग न बारा।
जे मुख देखा ते सुख पावा, परसि पाय तन पाप गँवावा॥
हिन्दू तुरक सबै कोइ जाना, निसि दिन जाँचहिँ[2] इंछा दाना।
हींछा देत न लावहि धोखा, जेहि जस तोष[3] पवै तस पोषा[4]॥
जौ कोउ जिय निहचै करि आवै, श्रवन लागि तेहि ज्ञान चेतावै।
प्रेम दीप तेहि देई जगाई, वहि उजियार चला सो जाई॥
जासों बचन सिद्ध वे कहा, ते सब तजि विधि मारग गहा।

मोहिं मया कै एक दिन, श्रवन लाग गहि माथ।
गुरमुख बचन सुनाय कै, कलि महँ कीन्ह सनाथ ॥ २२ ॥

यह मन मथा मथा जग सारा, जो इन्ह मथहि सो नर बरियारा।
जौ लहु गुरू न मनहि सिखावै, बातनि कछु हाथ नहिँ आवै॥
मही माँहि नौ निद्धि छपाना, बिनु गुरु काहु हाथ न आना।
करम बात अब कहौं सुनु तोहीं, जस कछु गुरू सिखावा मोहीं॥
ज्ञान डोरि करु हिया मथानी, साँस लेत डोरी लपटानी।
उलटी दृष्टि रहै टुक लाई, सजग रहै जेहि तंतु[5] न जाई॥
तौ लहु मथै बैठि दे जीऊ[6], निसरै छाछ मही तें घीऊ।

निजु सो मथनी एक दिन, मथत मथत गा फूटि।
तत्वमसी[7] पुनि तत्व सों, जाय नरक सब छूटि ॥ २३ ॥

१—नौका। २—मांगते हैं। याचना करते हैं। ३—इच्छा। आकांक्षा। ४—मनोरथ। ५—मन्त्र = उद्योग। ६—जी लगा कर। ध्यान देके। ७—तत्वमसि = वह तू है, यह वेदान्त का महा-वाक्य है।

गाजीपुर-वर्णन ।

गाजीपुर उत्तम अस्थाना, देवस्थान आदि जग जाना ।
गंगा मिलि जमुना तहँ आई, बीच मिली गोमती सुहाई ॥
तिरधारा उत्तम तट चीन्हा, द्वापर तहँ देवतन तप कीन्हा ।
पुनि कलिजुग महँ वसगित[1] भई, जानहु अमरपुरी बसि गई ॥
ऊपर कोट हेठ सुरसरी, देखत पाप बिथा जहँ हरी ।
बसहि लोग बुध बहु-बिज्ञानी, सैयद सेख बसैं गुरु ज्ञानी ॥
ज्ञान छाड़ि मुख आन न भाषा, सुने सँतोष देखि अभिलाषा ।
ज्ञान ध्यान कहँ देवता, सुमर समै पुनि सूर ।
तप मह मौन सभा चतुर, अरि मुख सिंह सदूर[2] ॥ २४ ॥
पुनि तहँ लोग बसैं सुखवासी, घर घर देखि इँद्रासन भासी ।
मोगल पठान वसहिं पँडवाहे, रन अमेट जिन्ह साह सराहे ॥
पुनि रजपूत बसहिं रन रूरे, और गुनी जन सब गुन पूरे ।
भाट कलावत[3] वसैं सुजाना, जिन्ह पिंगल संगीत बखाना ॥
गुन चरचा बिनु आन न काजा, जो देखो अपने घर राजा ।
जहँ तहँ नाच कूद पुनि होई, ठुमुकत बाट चलैं सब कोई ॥
जिन साजे जेहि ठाँव अवासा, सोइ पुहुमी नाहीं कबिलासा[4] ।
ताजी तुरकी चढ़ि चलहिं, जानहु उमरा मीर ।
सब सुखबास नगर महँ, परसन बासी तीर ॥ २५ ॥
हिन्दू तुरक सराहौं कहा, चारिहु बरन नगर भरि रहा ।
ब्राह्मन सब पण्डित औ ज्ञानी, चारौं वेद बात जिन्ह जानी ॥
होम जाप अस्नान विकाला[5], तजहि न एकौ तिनहुँ कहाला ।
खत्री बैस सत्रै पुनि धनी, नैन न फेरहि देखे अनी ॥
सुद्रन्ह घर घर बनिज पसारा, निस दिन करहिं धरम व्यवहारा ।

१—आबादी । २—शार्दूल । ३—नटों की एक जाति ।
४—कैलास = स्वर्ग । ५—द्विकाल = दोनों काल—प्रातः सायं ।

विविधि बखान ज्ञान कर करहीं, तरुनि बैठि सब रस उच्चरहीं ॥
केलि कोलाहल चहुँ दिसि होई, दुख की बात न जानै कोई।
घर घर नगर बधावरा, गलियन सुगँध बसाइ।
एक दिस बाजत आवै, एक दिस बाजत जाइ ॥ २६ ॥

अपने पाँच भाइयों का वर्णन।

कवि उसमान बसै तेहि गाऊँ, सेख हुसेन तनै जग नाऊँ।
पाँचो भाइ पाँचो बुधि हीये, एक इक भांति सो पाँचौ लीये ॥
सेख अज़ीज़ पढ़े लिखि जाना, सागर सील ऊँच कर दाना[१]।
मानुल्लह विधि मारग गहा, जोग साधि जो मौन होइ रहा ॥
सेख फ़ैज़ुल्लह पीर[२] अपारा, गनै न काहु गहे हथियारा।
सेख हसन गाएन भल आहा, गुन विद्या कहँ गुनी सराहा ॥
शील उदधि पुनि सब सुजाना, जो कोउ मिला सोई पै जाना ॥
सुने नाउ उनसाह चित, मिले होइ जिय साँति।
पाँच भाइ जनु पाँच मिर्ज़ॅ[३], अपनी अपनी भाँति ॥ २७ ॥

आदि हुता विधि माथे लिखा, अच्छर चारि पढ़ें हम सिखा।
देखत जगत चला सब जाई, एक बचन पै अमर रहाई।
बचन समान सुधा जग नाहीं, जेहि पाए कवि अमर रहाहीं ॥
मो जो यह अमिरित सों पागे, सोऊ अमर जग भए सभागे।
मोहू चाउ उठा पुनि हीए, होउं अमर यह अमिरित पीए ॥
आपु पिये अब तिनहुँ पिआवे, जिन्हकी कथा सुरस रस गावे।
मकु कोउ सूर पुरुष संसारा, सँवरि बचन दै मोहिँ निस्तारा ॥
पढ़ि गुनि देखा मान कवि, बैठि खोइ संसार।
और जगत सब थोथरा, एक बचन पै सार ॥ २८ ॥

रूप, प्रेम और विरह का वर्णन।

यह कलि दुर्मावलि[४] गुन भली, अनबन[५] भांति बचन फल फली।

१—फर बुद्धिमान। २—गुरु। ३—मिर्ज़ा = पण्डित। ४—द्रुमावलि = बाग।
५—अनेक = विविधि

कोऊ तीत कोऊ भा मीठा, कोऊ कसाउ कोऊ जनु सीठा ॥
ग्यान रसन[१] सों सब रस चाखा, अंत पाइ मन भा अभिलाषा।
जेहि रस पेम सुफर भल डीठा, गादर कांच सुपक औ मीठा ॥
आन मिटास जो नाम कहाई, चाखत पूज कि प्रेम मिठाई।
आदि प्रेम विधिनें उपराजा, प्रमहि लागि जगत सब साजा ॥
आपन रूप देखि सुख पावा, अपने हीए प्रेम उपजावा।

प्रेम किरन ससि रूप जेउँ, पानि प्रेम जिमि हेम।
एहि विधि जहँ तहँ जानियहु, जहाँ रूप तहँ प्रेम ॥ २९ ॥

जहाँ रूप जग बनिज पसारा, आइ प्रेम तहँ कीय व्योहारा।
जो विधि रूप मया करि दीन्ही, प्रेम चकोर नैन तिन्ह कीन्ही ॥
दीपक जोति प्रेम उजियारा, प्रेम पतंग आनि तहँ जारा।
रूप बास भा केतकि केवा[२], प्रेम भौंर भो जिव-परछेवा[३] ॥
मृगावली मुख रूप बसेरा, राजकुंवर भयो प्रेम अहेरा।
सिंघल पदुमावति भो रूपा, प्रेम कियो है चितउर भूपा ॥
मधुमालति होइ रूप देखावा, प्रेम मनोहर होइ तहँ आवा।

रूप मुकुर जहँ विधि सर्‌यो[४], निरमल एहि संसार।
प्रेम सूर परतर कियो, विरह अगिनि उदगार ॥ ३० ॥

रूप प्रेम मिलि जो सुख पावा, दूनहुँ मिलि बिरहा उपजावा।
जहाँ प्रेम तहँ बिरहा जानहु, बिरह बात जनि लघु करि मानहु ॥
जेहि तन प्रेम आगि सुलगाई, बिरह पौन होइ दे सुलगाई।
प्रेम अँकुर जहँ सिर काढ़ा, बिरह नीर सों दिन दिन बाढ़ा ॥
प्रेम दीप जहँ जोति देखाई, बिरह देइ छिन छिन उसकाई।
प्रेम कुमुद जहँ बदन उघारा, बिरह आई तहँ मंजन सारा ॥
एहि विधि प्रेम बिरह एक संगा, एकमने[५] भौ मानहुँ रंगा।

१—रसना = जीभ। २—कली। ३—जीव देने वाला।
४—रचा-सँवारा। ५—सम्मिलित।

रूप प्रेम बिरहा जगत, मूल सृष्टि के थम्भ।
हौं तीनहु के भेद कहु, कथा करौं आरम्भ॥ ३१॥

प्रस्तावना।

कथा एक मैं हिएं उपाई, कहत मीठ औ सुनत सोहाई।
कहौं बनाय जैस मोहि सूझा, जेहि जस सूझ सो तैसे बूझा॥
बालक सुनत कान रस पावा, तरुनन्ह के तन काम बढ़ावा।
बिरिध सुनै मन होई गियाना, यह संसार धंधा[१] कै जाना॥
जोगी सुनै जोग पँथ पावा, भोगी कहँ सुख भोग बढ़ावा।
इच्छा तरु एक आह सोहावा, जेहि जस इच्छा तैस फल पावा॥
मंजुल मुकुर बिमल[२] कर लेखा, जो देखै सो आपुहि देखा।
मान गीत संसार की, कहै सुनै सब कोइ।
लागै मीठी सोइ पै, जोई सोहाती होइ॥ ३२॥

सन सहस्र[१०००] बाइस[२२] जब अहे, तब हम बचन चारि एक कहे।
कहत करेज लोहू भा पानी, सोई जान पीर जिन्ह जानी॥
एक एक बचन मोति जनु पोवा, कोऊ हँसा कोऊ सुनि रोवा।
बहुतन्ह सुनि कै दुख मन लावा, के कवि कहि जग दोष नसावा॥
मोरी बुद्धि जहाँ लहु अही, जहँ लह सूझि कथा मैं कही।
हर हर बचन कहौं अति रूखा, दूषन कहँ सेराय न दूखा[२]॥
जाकी बुद्धि होइ अधिकाई, आन कथा एक कहै बनाई।
कवितन्ह आगे दीन होइ, बिनति करौं गहि पाय।
अच्छर टूट सँवारेहु, दोषन लिपहु छपाय॥ ३३॥
यह कलि स्याम रैन जनु आई, सोई पुरुष जे जागि बिहाई[३]।
जागतहूँ पुनि आह बिचारा, बहुत भाँति जागै संसारा॥
जागै राउ राजसुख करई, सेवक जागि सेवा चित धरई।
जागै चोर जो परधन चहा, बिरही जागि बिरहानल दहा॥

१—व्यवहार। खेल। २—दोष। ३—बिहान किया।

जागै ज्वारी खेलत जूआ, काहु एक काहू मन दूआ।
जागहिँ सिद्ध ध्यान धरि हीए, जागहिँ दुखी दुःख मन दीए॥
जागहिँ पँडित पढ़त हरिबानी, जागहिँ बालक कहैँ कहानी।
मैँ अजान जग बाल सम, आन न कछू सोहाय।
कहैं कहानी प्रेम की, जेहि निसि जाय विहाय॥३४॥

(२) कथा खंड।

आदि नगर नेपाल अनूपा, तहाँ राउ धरनीधर भूपा।
धन सो देश धन नगर सोहावा, धन राजा जिन आनि बसावा॥
अति बलवंड न जाई बखाना, भानु समान चहूँ-खँड-जाना।
मटुकबंद सब सेवा करहीँ, सेवा माँझ रैनि दिन हरहीँ[१]॥
कटक असूझ[२] अनेक अपारा, आव न लेखे सहस हजारा।
देस बहुत कछु अहै न थोरा, गनत न आव हस्ति औ घोरा॥
आइ समुँद महँ खडग पखारा, अरि न रहा जो इतर सँभारा।
अनघन[३] हेम जो लच्छमी, सैन अनेक अपार।
एक दीप संतति बिना, राजभवन अँधियार॥३ ॥
सुत चिंता राजा चित माहीं, राज काज मन भावै नाहीँ।
दिन एक सबै बुलायो नेगी, अज्ञा राज आय चल बेगी॥
सभा जोरि कै मंत बईठा, कहेस न मोहिँ कछु अस्थिर डीठा।
यह जग जस पानी कर धावा[४], जो कछु गा सो बहुरि न आवा।
काल्हहिँ यह तन होइहै छारा, कोऊ नाउँ नहिँ लेवनहारा॥
बीती रैनि भोर बिगसाना, कागारोर आइ नियराना।
को गहि लकुटी पंथ देखाइहि, को पिंडा दै पाछु पुराइहि॥
राज पाट धन देस सुख, सुत बिनु कैाने काज।
अब सब लेहु राज तुम, लेतु अहौं शिवसाज[५]॥३६॥

१—बिताते हैं। २—जिसका ओर छोर देख न पड़े। ३—अनर्घ। ४—बहाव। ५—योग।

मंत्रिन कहा सुनहु मति राजा, राज पाट तुमही कहँ छाजा।
कौन सुनै अस को मति देई, हस्ति क भार क गदहा लेई॥
जौ तुम्ह काल्हि लेब सिवराजू, आजुहि हम छाड़ब यह राजू।
राज करहु प्रतिपालहु परजा, सेवत साइँ कौन तुम बरजा॥
तन सों भोग जोग मन सेती, बात इहै औ बातैं जेती।
जौ यह दरब चहौ तुम्ह छाडा, कौन सुफल जौ छाड़ि अगाड़ा॥
दिन सब करहु राज सुख भोगू, रैनि गुपुत साधहु तुम्ह जोगू।

जेहि निमित्त धन दीजिये, औ कीन्ही सब हानि।
सो इच्छा विधि आपु निजु, बेगि पुरावे आनि॥ ३७॥

पूत निमित्त धरम अब कीजै, धरमसाल कै भोजन दीजै।
दिये[1] बिना कछु काहु न पावा, दिया आनि सब इच्छ पुरावा॥
दिया धरे तम करै न जोरा, दिया हुतै घर मुसै न चोरा।
एहि जग माँह सार यह दीआ, जे न दिया ते अमिरथा जीआ॥
दिया हुतै निसि आगे सूझा, दिया हुतै पर आपन बूझा।
दिया हुतै घर पावै सोभा, आइ पतंग दीप पर लोभा॥
दीया बाजु मग जाइ न जोवा, दिया होइ तो पावै खोवा॥

यह कलि स्याम विभावरी, विकट पंथग्रह[2] साथ।
निजु भूले बनगाह सो, जिन न दिया कछु हाथ॥ ३८॥

सुनि कै राजा हिये सँभारा, लाग देइ तब खोलि भँडारा।
जो इँछा कै मन कोइ आवा, दीन्ह बोलाइ बार नहिँ लावा॥
औ जिन अहे देश के दुखी, दीन्ह दान सब कीन्हेँ सुखी।
भूखा भोजन कापड नाँगा, निसि वासर पावै बिनु माँगा॥
धरमसाल पुनि बार सवाँरा, जहाँ न कोऊ बरजन हारा।
पंथी आइ तहा सुख पावहिँ, भोजन मिलि निसि सोइ गँवावहिँ॥
जती सन्यासी जो कोउ आवे, सुनत नाउँ राजा उठि धावै।

१—उर्दू की प्रति मे यह नहीं है। २—बटमार।

अपने[1] नगर बुलाइ के, आन पखारै पाय।
कर जोरे बिनती करै, आग्या सीस चढ़ाय॥ ३९॥
एहि विधि बरष एक जो बीता, रहा न कोऊ जग महँ रीता।
कीरति दान चहूँ खँड गई, पार समुंद के चरचा भई॥
दान निसान चहूँ खँड बाजा, करन कुबेरु बेनु बलि लाजा।
पुनि कैलास गई यह चाहा, चली बात जहँ संकर आहा॥
गिरजै कहा सुनहु हो देवा, के नर कीन्ह ऐस जग सेवा।
धरनीधर नृप यहि संसारा, सुत निमित्त सब दीन्ह भँडारा॥
जौ अस करै दान कर साजू, चहै तो लेइ इंद्र कर राजू।
चलहु जाय तेहि देखिये, कइस सत्त कस धर्म।
सत्त होइ सुत दीजिये, नहिँ तो खोइए मर्म॥ ४०॥

---

(३) महादेव खंड।

करि दोऊ तपसी कर भेसू, चले भवानी और महेसू।
धरमसाल धरनी धर केरा, संध्या आइ कीन्ह तहँ फेरा॥
सुना राउ आये दुइ तपा[2], धाय आय बहु अस्तुति जपा।
लै जल पहिले पांव पखारा, दोउ कर जोरि बिनति ओधारा॥
जो इंछा सो अज्ञा होई, पुरवनहार विधाता सोई।
पूरब पुन्य आजु फल पावा, जेहि तुम्हार विधि दरस देखावा॥
यह सब ताकर जो जग राजा, हौं सेवक सेवा कहँ छाजा।
अन्न धन्न में सकल निधि, विधि मोहि दीन्ह अनेग।
जो इंछा सो मांगिये, आनि पुरावौं बेग॥ ४१॥
तपन्ह कहा तैं धर्म सँगीता[3], सत हरिचन्द दान बलि जीता।
तोहि सरि पुहुमि न राजा दूजा, हम नित करहिँ सम्भु की पूजा॥

१—अपने कर लोटा लिये आप पखार पाय—पाठा०। २—तपस्वी।
३—स्वीकार किया।

महादेव हम परसन आहा, पुरवन वेगि इंछ जो चाहा।
सेवा सुकृत देव रिसाना, पूजा पाती कबहुँ न माना॥
बहुत बिलाप कीन्ह तेहि आगे, सपने आइ कहा रिस त्यागे।
महि मंडल धरनीधर राजा, धर्म रूप बिधि नें उपराजा॥
ताकर माथ चढ़ावहु आनी, तब परसन भौ ईस भवानी।

आन हिच्छ[1] नहिं दूसरी, देहु कलपि करि सीस।
हम परसन परसाद तुव, होहुँ भवानी ईस॥ ४२॥

राजा सुनत अचक भै रहा, सोच गहा कछु उतर न कहा।
पुनि मन महँ अस कीन्ह गेयानूँ, जोगी जन माँगै जिउ दानूँ॥
संतति आस जाय जिउ दीयें, धर्म नसाइ लोभ पुनि कीयें।
सुत को जान पाइ किन पाई, जानि बूझि कै सत्य नसाई॥
सत्य समान पूत जग नाहीं, सत सों रहै नाउँ जग माहीं।
कोखि—पूत[2] एक देस बखाना, सत्य पूत चारौं खंड जाना॥
निहचय सत्य अमर की मूरी, प्रगट देखिये हरिचंद पूरी।

आजु पुरावौं इंच्छ कहँ, जग जानैं यह भेउ।
आजु देउँ सिर कलपि के, जो जाँचा जग देउ॥ ४३॥

तब नृप गाँव घालि करगही[3], आगे आइ बात तब कही।
इहवाँ कलपि देउँ जो माथा, रकत सुखाइ न मानैं नाथा॥
चलहु गोसाइँ गाँव गहि डोरी, देवस्थान हिंछ जहँ पूरी।
तहहिँ कलपि सिर रकत बहावौं, हीछा सहित देव अन्हवावौं॥
मकु परसन होइ इंछ भवानी, इंछ तुम्हारि पुरावहुँ आनी।
चलहु बेगि नहिँ बिलँबहु देवा, होउँ सनाथ आजु पद सेवा॥
तब हँसि गिरिजा हरि मुख हेरा, कहेसि सुमेरु सत्त एहि केरा।

एहिक सत्त जस ध्रुव अचल, तुम पति सारंगपानि।
परसन होवहु इंछ एहि, बेगि पुरावहु आनि॥ ४४॥

१—इच्छा। २—औरस पुत्र। ३—प्रगह, पगहा।

तत्खन[१] परसन भए महेसू , परगट कीन्ह सबै निजु भेसू ।
सुरसरि सीस कलानिधि माथे , फनपति ग्रीव बसह कर नाथे ॥
चहुँ दिस जुत्थ जटा छहरानी , आठहुँ अंग भसम लपटानी ।
रुंड माल गल डमरू हाथा , औ पुनि सिखर-सुता[२] धनि साथा ॥
कुस्टी अंग कंठ बिष बाँधे , लोचन तीनि दुरदतुच[३] काँधे ।
लोचन मध्य अगिनि अंगारा , जेहि ते मदन भसम सम जारा ॥
आक पात पुनि मुखहिं चबाहीं , बाउर जानि धतूरा खाहीं ।

सिद्ध पुरुष पहिचानि कै , परो पाँउ सो राइ ।
दयावन्त होइ सीस गहि , संकर लीन्ह उठाइ ॥ ४५ ॥

हर हँसि कहा सुनहु अब राजा , भयो तोर दोउ जग कर काजा ।
पुहुमी राज पाट सुख गाता , सरग मुकुति तोहि दीन्ह बिधाता ॥
सत्त तोर जस अचल पहारा , सत्त भयो तोहि सुत देनिहारा ।
जो बिधि एह सब सृष्टि सँवारी , सुखी दुखी जग ईस भिखारी ॥
तेहि के देत न एको खाँगा[४] , मैं तोहि लागि पूत अब माँगा ।
देखु देत हौं आपन अंसा , अब तोरे ह्वैहैं निजु बंसा ॥
जोगी अंस जो जग औतरई , दिन दस साज जोगि कर करई ।

पुनि सुत संतति लच्छमी , राज पाट सुख भोग ।
अब जिय रहस अनंद करु , जनि मानसि कछु सोग[५] ॥ ४६ ॥

दै असीस तत्खन जस जानो , भए अलोप महेस भवानो ।
राजा रहा अचक तहँ खरा , जैसे पहरु कान्ह जहँ हरा ॥
कहेसि कि निहचै यहि जग माहीं , मोहि अस आन अभागा नाहीं ।
बिधिना नग[६] अमोल हुत दीन्हा , दुष्ट हिये मैं रतन न चीन्हा ॥
अब जो रतन हाथ कर खोवा , काजों संभु माल पर दोवा[७] ? ।

१—तत्क्षण = उसी समय । २—पार्वती । ३—द्विरद चर्म = हाथी का चर्म ।
४—कमी है । ५—शोक, दुःख । ६—रत्न । ७—शिव शिव कह माला दुहना व्यर्थ है ।

सेवा संभु हिये धौं लागी, दीपक ग्यान उठा तब जागी ॥
संकर यह चेटक देखरावा, गुरू होइ हिय ग्यान जतावा।

जैसें भए सनाथ हम, हते जो दो चख आहि।
रहि मूरख यह आइ जग, ऐसे जानि निबाहि ॥ ४७ ॥

हिरदै (क) भवन धरी दुइ जारा, दीपक ग्यान कीन्ह उजियारा।
पुनि जो माया पौन झकोरा, बुझा दीप मिट गयो अँजोरा ॥
राज पाट घर बार सँभारा, करे लाग जस सपन बिचारा।
जैसे नर मिरतक के देखें, यह संसार न आने लेखें।
हीये सुनत ध्यान धरि रहिये, मुख तज ग्यान आन नहि कहिये ॥
जबहीं भोजन पेट समाना, कहाँ क ध्यान कहाँ कर ग्याना।
मानुस सिर ओंधीखोपरी, रहे न निकसि तहाँ जो परी ॥

पेम हुतासन दीप कर, धरी सुखन्ह दै बारि।
जो जग अंधे होइ एहि, जोत सकै नहिं टारि ॥ ४८ ॥

(४) जन्म खंड।

सिव असीस विधि भयो मयारा, धरनीधर घर सुत औतारा।
निहकलंक ससि परगट भएऊ, सगरं कुल अँजोर भै गएऊ ॥
निसि अँधियार सूर जनु भेंटा, निमिष माँहि सब दुख धर मेटा।
आधी राति भयो औतारा, तहनिन्ह रचा मंगलाचारा ॥
पँडितन्ह बैठि नषत करि साखी, उदै विचार लगन गनि राखी।
चंन पच्छ पुनवसु गुरु वारा, मिथुना लगन संभु औतारा ॥
राजा हिएं रहस अस जागा, टूटे बंद फाटिगा झागा[1]।

(क) यहां से ४९ दोहा तक हिन्दी प्रति मे नहीं है।

१—जामा।

सुत सुनि राजा मन भयो, रोम रोम संतोष।
रानी रहसी[1] देखि मुख, भई सँपूरन कोष ॥ ४९ ॥

भोर होत आए जोतषी, पाटा गरह कुंडली लिषी।
मिथुना लगन अंसु ओनीसा, उदै पुनर्बसु अति सुभ दीसा॥
तिसरे सुर्ज चंद्रमा नए, दुसरे बुद्ध सुक्र सँग लए॥
सनमुख सूर सनी पुनि देखा, चौथ चरन सतभिषा सरेखा।
राहु जनम दसएँ पुनि सनी, जिउ[2] एगारहेँ जासौं धनी॥
भौम एगरहे पुनि सुख देखा, गढ़पति हनै बिकट गढ़ लेखा।
राहु केतु दोऊ अपने ऊँचा, सीस छत्र गए सर्ग पहूँचा॥

मनि माथे हरदै नषत, गनि गुनि कीन्ह बखान।
होड़ा चक्र बिचारि कै, राखो नाउ सुजान॥ ५० ॥

कुम्भ रासि धन नाउ सुहावा, जनम पत्र लिखि बाँचि सुनावा।
आयू सौ बरषन्ह अधिकाई, बिरध होइ तहवाँ लहुँ पाई॥
पुहमी होइ छत्रपति राजा, पार दान कर बाजन बाजा।
सुंदर त्रिया लागि दुख सहई, जोग पंथ पुनि दिन दस गहई॥
प्रेम करावै जंगम भेसा, बिरह फिरावै देस बिदेसा॥
पर भुइँ जाइ खर्ग पुनि करई, छत्री जीति छत्र सिर धरई।
औ जेहि लागि सहै दुख जेता, तेन्ह मिलि पुनि मानै सुख तेता॥

तेहि पाछे पुनि जनम भइ, सुत संपति सुख देखि।
राज पाट पुहमी अचल, अस कछु लगन बिसेखि॥ ५१ ॥

छठीँ राति बाजन गह गहे, बाजे औ सब गाजत रहे।
पुरषन्ह इंद्रसभा जनु सारा, तरुनिन्ह गाइ कीन्ह भिनुसारा॥
भोर भए होइ लागि बधाई, छत्तिस पौनि दीन्ह पहिराई।
नृप कर कुस पानी जब लीन्हा, दछिना सकल बिप्र कहँ दीन्हा॥
गाय सोन मुँदरी नग जरी, पाटंबर जरकसी पाँवरी॥

१—आनंदित हुई। २—बृहस्पति।

भाटन दै तुरंग पहिराये, भाटिनी पहिरे नीति सुहाये।
और भिखारी जेते आए, इच्छा पूरि सबै पहिराए॥
सोन रूप नग गाइ भुइँ, पाटंबर गज घोर।
राजा खोलि भँडार सब, देत न लावै भोर॥ ५२॥

बरहेँ दिन सब कुटुँब जेँवावा, घर घरहीँ ते नेवति पठावा।
अमिरित पाँच रसोईं साजी, सुनतेहि नाउँ भूख तिन भागी॥
देत देस जेहि बेर न होई, का बरनी तेहि राज रसोई।
जेहि जस भाएव राँधा कोरा, नेगिन्ह देत न लाएव भोरा॥
अपने छोर माइ सुत पोपा, अपने हिये लाइ संतोषा।
निसि दिन हिये लाए सुख लहही, चारि नैन मुख लागे रहही॥
प्रथमहिँ जैस पियाइअ छीरा, वैस भाव पुनि देइ सरीरा।
और न दूध पियाइऐ, पड़े छाव[1] सो तंतु[2]।
तेहि कारन बुधिवंत नर, प्यावहिँ छोर सुतंतु॥ ५३॥

रहहिँ हितू सब कोरा लीएँ, माथे स्याम चौखँडा[3] दीएँ।
दूध छाडि बेगहि भा ठाढ़ा, छिन दिन लाग करह[4] जिमि बाढ़ा॥
देखि सबे कोइ पूछै धाई, लागै तोतरि बात सोहाई।
पाँच बरिस को भयो कुमारा, बुद्धि बचन सब मुख उच्चारा॥
तब विद्याधर पँडित हँकारा, आवा जस सुर गुरु मनियारा[5]।
मानिक रतन थार एक भरा, राजा गुर के आगे धरा॥
गहि भुज कुअँर पाय तर मेला, कहेसि कि तुम गुरु एह तुव चेला।
जहँ लहुँ विद्या तुम्ह पढ़ी, औ जिय भा संतोष।
आपन सुत सम जानि कै, देत न लाएहु धोष[6]॥ ५४॥
पंडित रहसी आसिष दीन्हा, अग्या राज परछि सिर लीन्हा।
अस चित लाइ गुरू समुझावा, थोरे दिवस गुन हिरदै छावा॥

१—शावक = बालक। २—स्वभाव। ३—अग्वा। ४—कलभ = हाथी का बच्चा। ५—प्रकाशमान, विद्वान। ६—क्षोभ। भ्रम। संकोच।

अमरकोश व्याकरन बखाना, जोग बैद्यकन्हि कै सब जाना ॥
पिंगल लघु दीरघ दिढनासी, कंठहि माँझ छंद चौरासी।
पढी सँगीत ताल देखरावा, एक सुर मँह दस राग सुनावा ॥
जोतिष मँह कोइ बाद न आँटा, एक पल सहस बार कै बाँटा।
अंस भुगोल बखानि सुनावा, पल महँ मनु पुहमी फिरि आवा ॥
पढ़ि गुनि चौदह बरष लगु, दस औ चारि निधान।
निपुन हुवा दस भाव महँ, सब पढ़ि बैठु सुजान ॥ ५६ ॥

सर्ग करन पुनि भा बरिआरा, थोरहि दिन महँ मल्ल पछारा।
व्याम[1] करन पुहमी जो हली, पीठि न लाइ सकै कोउ बली ॥
फरी दांड गुन अस ओहि आवा, खेलन पाव पुहमि नहि लावा।
धनुष बान गह दुसर न कोई, सबदबेधि कहिए है सोई ॥
तमकि तुरै[2] जब होइ असवारा, अस्तु अस्तु सब कोई पुकारा।
कैसउ कट्टर तुरै करेरा, कांचा सूत बांधि मुह फेरा ॥
अस अहेर कह मन चित बांधा, निसि दिन रहहि पारधी[3] राधा[4]।
पहिलें पारधि जाई बन, घात करैं चहुँ फेर।
सपरि कुँअर तब कटक ले खेलै जाइ अहेर ॥ ५७ ॥

दिन एक पारधि आय सबेरा, कहेसि कुँअर है घात अहेरा।
सुनतहि कुँअर भयउ असवारा, चला कटक पुनि संग खभारा[5] ॥
औ जेते गयंद पुनि आये, माते निमते सबै चलाये।
गाडिन्ह गाडिन्ह चीते चले, बहुत सेयाहगोस तहँ रले ॥
किये डोर सब सोनहा[6] ताजी, भल भल गुरजी और सिराजी।
तिन्ह सों हरिन जाइ कहँ पावै, पानहुँ चाहि जो आगे धावै ॥
औ सब संग पारधी लीन्हे, जो बघमार सो आगे कीन्हे।

१—व्यायाम = कसरत। २—तुरग = घोड़ा। ३—शिकार का पता लगाने वाला। ४—आराधा = बुलाया हुआ = हाजिर। ५—अधिक। ६—श्वान = कुत्ता।

कुअर कटक सब जुरि चले, जहँ लैाउ राउत रान।
सुनि सुनि पुहुमीपति डरे, कायर राउ रिसान ॥ ५८ ॥

देखि कटक सब सावज डरे, कुसल जानि तेहि घेरे परे।
झंखे झाख रोझ पछताने, विधि हम एहि बन काहे आने ॥
देखि देखि चीतन्ह की धारा, मानहिँ हरिन आपनी हारा ॥
धाइ धाइ जस खेती चरी, अब तैसही भूलि चैाकरी ॥
गैँड़ा सबै भए सत—छाड़े, नहिं निकास तेहि चहले[1] गाड़े।
जूथन्ह खड़े जहाँ तहँ हरना, झारहिँ सीस जानि निजु मरना ॥
बीहनि बैठे खरहा लोवा, चहुँ दिसि जंबुक फिरि फिरि रोवा।

परा सोग सावज घरहिँ, काग गीध कर नाच।
कानन परलो[2] आजु है, सावज नाउँ न बाच ॥ ५९ ॥

कुअँर कहा यह कानन सोई, जेहि कर मरम न जानइ कोई।
हम अस बहुत खेलारी भए, इहवहिँ आइ खेलि सब गए ॥
जो कर जियत सिंह मुख मेला, आइ अहेर सो एहि बन खेला।
खेले जान होउ सो आगे, नाहिँ तो आवहु पाछे लागे ॥
अगुवा कहै करहु पै सोई, खेलि गए पछताव न होई ॥
अस कै घेरहु जान न पावै, मारहु सोई घात जेहि आवै।
बैठहु मूल बान जो मारा। ओर तरे जा करहु पुकारा।

आवहि सावज घात जब, मारहु खाँड पचरि[3]।
चवरि[4] जो आगे ह्वै चलै, छाड़हु सोनहा झारि ॥ ६० ॥

सावज घेरि लिए चहुँ ओरी, चीता सोनहा दीन्हे छोरी।
चीतन्ह रोझ मृगा बहु मारे, सोनहा बहुत बराह पछारे ॥
चारिहुँ ओर बान तब छूटे, गैँडन्ह पीठ फोंक[5] लहु फूटे।
कहूँ महिष लोटहिँ विष भरा, कहूँ रोझ डारहिँ खुरथरा[6] ॥

१—कीच, पंक। २—प्रलय, नाश। ३—प्रचारि कै = ताल के।
४—शिकारगाह। आखेट-स्थल। ५—स्रोत। ६—खुरहर—खुर का चिह्न।

चीतन्ह गोन अनेकन्ह मारे, ससा लोम[1] बहु गनत न पारे।
बहुत खड्ग परतीत के साथा, मारें महिष होइ दुइ आधा॥
कीन्ह अहेर कुँअर मन माना, पहर एक भा गीध मसाना।

पुनि ते राखे बिलग कै, भूजि कटक जत खाइ।
और पठाइन्ह नग्र कहँ, हस्तिन्ह पानि भराइ॥ ६१॥

पहर (क) बिसार आन कहँ हेरा, लागे खेलै पंछि अहेरा।
अस कै जेहिँ दिस जाल पसारा, पंछी नाउँ न निसरै पारा॥
परी परेवा चाटक मोरा, बांच न तीतर साँवर गोरा।
धरेँ बटेर बड़े औ छोटे, भान बिचार दूबरे मोटे॥
खाखर लावा घेरे परे, जाल माहँ परगट सब धरे।
और बगेरे कदरु जावा, व्याध न छोड़ेउ एक न छावा॥
आये सरग जब चरिचरि चारा, यह दिन कठिन न काहुँ बिचारा।

तब जो चरे निचिंत होइ, परी सोइ अब काथ।
समुझि हिये रोए सबे, छाडि चले गुन गाँथ॥ ६२॥

आधे दिवस दुपहरी बेरा, भा अति तेज तेज रबि केरा।
बैठे जाइ तपत के छाहीँ, छाने खोल पवन सब खाहीँ॥
सेवकन्ह माँस भूँजि के कहा, आपन मीठ मोछ कर गहा।
हँसि हँसि करहिँ अहेर बखाना, नैनों हिये न होवे ज्ञाना॥
आपन सुभ न सकी उपरजा[2], कैसे जारि आन कर बजा[3]।
कटब जाय सभानक माहीं, मारें को न बिसारा काहीँ।
जा कहँ बधहिँ देहिँ तेहि ज्ञाना, आन क जीव आप अस जाना॥

काटहिँ आइ रूख सब, देहिँ अगिन सुलगाइ।
पाय पराई खोपरी, जानहिँ भुस मँ जाइ॥ ६३॥

१—लोमड़ा। (क) यहा से ६५ दोहे तक हिन्दी की प्रति मे नही है।

२—उत्पन्न करना, सपादन करना। ३—ठीक।

बैठा कुँअर सिंह अस गूँजा, लाग जहाँ तहँ होइ मँसभूजा।
भूजहिँ मांस जीभ रस लाहू, आपन मांस न सूझै काहू॥
भूजत चुवै सरागन पानी, रोवै मांस हिये अस जानी।
हम खर खास निचंत जो सोई, एहिमैं गात सराग परोई[1]॥
फिरि फिरि जारहि छाड़हिँ नाहीँ, होइहि कहा मांस जो खाहीँ।
जस हम इन कहँ दारुन जाना, इनहू पर दारुन है आना॥
देखि देखि मारा रन माखे, खुली निगाह भई के आँखे।

मांस खाइ जल अँचवनहि, औ छिनवहिँ पुनि औार।
कहेन्हि आज दिन लेख महँ, कालि न रहे ठौार॥ ६४॥

रूखन छाँह जो पाई सीता, पहर एक पुनि तहँवहि बीता।
कहूँ जागि कहुँ सोइ गँवावा, चौथहि पहरैं भीतर[2] आवा॥
राज निसानहि डंका लागा, सोवत लोग सबै सुनि जागा।
कुँअर तुरंग भयो असवारा, कटक चहूँ दिसि परी पुकारा।
जागत अहा संग उठ लागा, सोवत पाछू परा अभागा॥
हल बल जाहिं न तुरंग[4] बिलाने, का होई अब के पछताने।
कोऊ मिले बीच मिल जाई, बहुत बीच पुनि परे भुलाई॥

पथी भोजन पेट भर, छाँह सुहाई पाय।
होइ निचिन्त जो सोए, सो पाछे पछताय॥ ६५॥

आधे पंथ पहुँचे आई, उठी बाउ आँधी पछुआई।
स्याम घटा आँधी अधिकाई, भयो अँधेर सरग छिति छाई॥
ऊबट बाट जाइ नहिँ बूझा, निअरहिँ दूसर जाइ न सूझा।
परी धूरि लोचन मुख माहीँ, दुहुँ कर बदन छिपाए जाहीँ॥
तब सब मन गुन भए अबाके, सनमुख तुरँ नग्र कहँ हांके।

१—मि० बकरी पाती खात है ताकी काटी खाल।
जो नर बकरी खात है तिनकी कवन हवाल॥ (कबीर)
२—मध्य, बीच। ३—शीतलता। ४—शीघ्रगामी।

विधि परसाद कुँअर एक सरा, बाँव पंथ तजि दाहिन परा।
अगुआ भयो करम की डाठी, जस कोइ गहे अंध की लाठी॥
ले पहुँचायो कोस दस, जहँ गिरि विखम उजारि।
घरी चार निसि बीत पुनि, भयो नषत उजियार॥ ६६॥
गयौ अँधेर दृष्टि भइ आना, कुँअर देवपर्वत पहिचाना।
कहेसि कि यह पर्वत जहँ देऊ, नगर लोग सब मानहिँ सेऊ॥
नगर दूरि औ नियरे गाऊँ, शाका तुरँ कहाँ अब जाऊँ।
पर्वत हेठ अहा देवहरा, रहौँ तहाँ निसि जौ एकसरा॥
कुँअर मढ़ी महँ बैठ्यो जाई, बांधा तुरँ डार-तरु लाई।
संग न कोई दुखी चितगहा, आई नीँद सोई तहँ रहा॥
भूख न मानै लावन सेनी, नीँद न मानै सारि[1] सपेती[2]।
नीँद न आवै नैन जेहि, सेज कुसुम भरि निंत।
बेल[3] परे सुपुहुमि महँ, सोवै परा निचिंत॥ ६७॥

---

(५) देवखंड।

देवहि मन महँ परा विचारा, रहौँ आजु एहि के रखवारा।
मोरि सरन सोएउ एहि ठाऊँ, जौ खति[4] होइ तौ कुलहि लजाऊँ॥
इहा गयंद सिंह बन माहीँ, मानुषभखा बहुत पसु आहीँ।
भीतर कुँअर नीँद चित लागा, बाहर देव बार गहि जागा॥
एहि अंतर जो पहर एक बीता, आया देव देव कर मीता।
भयो हुलास देखि जिय भारी, दुनहुँ मीन भई अँकवारी॥
कहेसि कि बहुत दिवस पर आए, आजु कहा तुम चरन दिखाए।
कहेसि कहत बिछुरन कथा, सूल उठत सब गात।
और सुनहु चित कान दै, एक अपूरब बात॥ ६८॥

१—श्याम - रात। २—सफेदी—दिन। ३—अवसर। ४ - खति हानि।

रूप नगर है दच्छिन देसा, चित्र सेनि तहँ राउ नरेसा।
निसरयो जाइ रैनि ओहि ओरी, सिंघल कहँ हुत मनसा मोरी॥
कौतुक इक देखेउँ तेहि गाऊँ, कहा कहौं चित आहि न ठाऊँ।
राजा गेह चित्रावलि बारी, सहस कला विधि ससि औतारी॥
दुसर कोऊ न पाव तेहि जोरा, एक दीप चहुँ खंड अँजोरा।
मात पिता जन पुर-जन कोई, सब जनु कया एक जिउ सोई॥
बरष गए जो जनम दिन आवा, गाँठि देहिं और करहिं बधावा।

आजु सो बीते बरष दस, बरष एकादस पाउ।
तातें पूरित राज घर, मंगलचार बधाउ॥ ६९॥

घर घर नगर बधावा होई, नेवति लै आवैं सब कोई।
तरुनी आइ हियँ हुलसाहीं, जनु बसन्त कोकिल कुहकाहीं॥
राजअवास बटोरि विछावा, औ सब आँगन जत बिछावा।
हाट कपाट जगाइन्ह जगा, मांझ आनि वेदी पर धरा॥
रचि भूषन चित्रावलि बारी, तापर आनि सखिन बैसारी।
सकल सखी आरति लै आईं, ससि समीप जनु मिलीं तराईं॥
सभा जोरि बैठी चहुँ फेरी, पारस[1] होइ लीन्ह ससि घेरी।

वर कामिनि संसार मनि, माथे भाग सुहाग।
देखि विमोह दवना, दिष्टि पाय नहँ भाग॥ ७०॥

औ नृप बहुतिन्ह सेवा करहीं, सेवा माँह रैन दिन रहहीं॥
कोइ चित्रावलि पाछे खरा, छत्र फिरावैं मानिक जरा[2]।
मानिक नग जो फिरैं हरि फेरा, बरने होहि नषत ससि केरा॥
कोऊ लिए जल पानि पियावै, कोउ बेना लै बाउ डोलावै॥
काहू करै विछावन जाना, डासन[3] नवा उडास[4] पुराना।
कोउ ठाढ़ लीन्हे मसियारा, ठाँवहि ठांव करै उजियारा॥

१—पार्श्व = आस पास। २—जटा = जटित। ३—बिछौना। ४—वह बिछावन जो उठा लिया जाय।

बैठे पंछी रैनि के, भयो जानि जग भोर।
उठे जागि सब दिवस गे, फिरन लगे चहुँ ओर ॥ ७१ ॥

बाहर चित्रसेन मनियारा, सभा जोरि कै रचा अखारा।
कनक पाट पर बैठ्यो राजा, सुरपति देखि सभा मन लाजा ॥
गुन निधान दच्छिन के गुनी, तिन्ह प्रगटी विद्या जत सुनी।
गावहि गीत बजावहि बाजा, परथिर[1] बाव भेद[2] उपराजा ॥
सुरमंदिल तहँ अपुरुब दीसा, एक सरासन पइँच बतीसा।
सहस बान छूटहिं एक बारा, मूरख छाड़ि जान पै भारा ॥
बाज पखाउज आउज संगा, मन हुलसै जस उठै तरंगा।

मुरछि परे सुर नर सबै, बिनु अतंक भई मीच।
मनहुँ जियाए लै सकल, मुख अमिरित पुनि सींच ॥ ७२ ॥

महुअर सुर जनु मद महुवारा, त्रुकटी (क)[3] माह करै मनवारा।
चंग अतंक[4] सुनत नर झूले, बंसी धुनि सुनि अहि-कुल भूले ॥
पुनि बुधि हरन कमाइचि साजी, डोल सुमरू बीन जब बाजी।
गहि पिनाक जानहुँ सुर गहा, जत कत जगत बेझ[5] होइ रहा ॥
हुडुक बाज जलजं[?] बजावा, को न जन्तु यै सबद भुलावा।
डफ बजाइ मुनिवर चितहरा, को न जाइ तेहि घेरे परा ॥
बाजे झाँझ मजीरा तूरा, राजहिं भाव सोई सुर पूरा।

तन्त वितन्त औसिखर धुनि, अन्त परे पुनि तार।
पाँचो सबद जो जगत महँ, होइ रहा झनकार ॥ ७३ ॥

१—पर + स्थिर = गति रहित। २—प्रभाव। ३—एक राग। (क)। चाग्वन माहँ—पाठा०। ४—आतंक = शब्द। ५—बद्ध = स्तब्ध।

गाइ गुनिन पुनि राग सुनाए, वरतमान जस कलि महँ आए।
भैरो कौसिक मेघमलारा, हिंडोला दीपक उजियारा॥
सिरीराग रागन्ह कर साँई, पुनि तिन्ह की रागिनी सुनाई।
एह मत राग सबै कोउ जाना, तातेँ मैँ नहिँ कीन्ह बखाना॥
हनुमँत मत जो राग बखाना। जे संगीत पढ़ा ते जाना।
भैरो पंचम मेघ मलारा, नट गौरा मालवा सुधारा॥
पारबती मत जो कोउ गावा। छओ राग एहि भाँति सुनावा।

सिरी राग भैरो कहा, औ पुनि कहा बसंत।
पंचम मेघमलार पुनि, नटनारायन अंत ॥ ७४ ॥

सिरी राग की रागिनि अहीँ, कहौं बनाइ जो गिरिजै कहीँ।
गौरी मधुमाधवी केदारी, तरिवन औ मालवी बिहारी॥
भैरो की रागिनि भैराई, पारवती अपने मत जोई।
रव बंगाली औ गूजरी, पुनि गाए बहु लै गुन करी॥
देसी देवगिरी बैराटी, पुनि बसंत कह जो तिअ बाटी॥
पुनि टोड़ी हिंडोलहि गाई, भोरहिँ गाई ललित सोहाई॥
पंचम कहँ बिभास भूपाली, बडहंसा करनाटी माली॥

पंचम की पुनि रागिनी, पंचम के सँग गाइ।
मेघ राग की रागिनी, अब सुनु कहौं बनाइ॥ ७५ ॥

गंधारी सोरठ मल्लारी, सादेरी पुनि हरिसिंगारी।
तब छट्ठे कौसिकी सोहाई, बिबिधि भाँति के गुनियन गाई॥
पुनि नटकी रागिनी बखानी, नटिका कामोदी कल्यानी।
नट हम्मीर अहीरी गाई, सारंगी पुनि गाइ सुनाई॥
तीनि ग्राम गाइनि सुर बरना, ऊडौ खाडौ सरल सँपुरना।
खरज रिषब गंधार सोहावा, चौथँ सुर मध्यम पुनि गावा॥
पंचम धैवत और निखाधा, सोई गुनी सातौ सुर साधा।

अस कछु सभा सिँगार भा , औ पुनि राग बखान ।
हाहा हूहू[1] सुनि चपे , सुरपति देखि लजान ॥ ७६ ॥

नाँचहि परिन्ह मन उपराहीं , गहँ पान जनु अँतरिख जाहीं ।
जेहि गति चलहिँ तेही मन[2] हरहीँ , मानहुँ पाइ पुहुमि नहिँ धरहीँ ॥
नैनन्ह रूप श्रवन धुनि रागा , सबको मन पायन्ह रह लागा ।
पाय लागि मन रहै न पावै , दै दै ताल पाय झहरावै ॥
सगर रैन रहस सुख लीन्हा , अगनित दान मोतिनग दीन्हा ।
उड़सा[3] नाच भयो भिनुसारा , भयो दिवस तब भा जेवनारा ॥
जेवन अधिक अबूझ रसोई , पर आपन जेवै सब कोई ।

जैस रात बीती सभा , आजु तैस पुनि साज ।
मैं आयउ तोहि लेन कह , चलहु छाड़ि सब काज ॥ ७७ ॥

तहाँ मीत एक प्रान पियारा , आनन मोरे एहि संसारा ।
मीतहि होई मीत की चिंता , चारि भाँति जग कहिये मिंता ॥
नैन-मीत एक जग आवा , नैन देखि कै मीत कहावा ।
मुख फेरत भा औरै लेखा , गयो भूलि जनु सपना देखा ॥
इच्छा मीत होइ एक दूजा , तो लहु मीत इच्छ जब पूजा ।
हौंछा पूजी गई मिताई , बहुरि बार नहिँ झाँकै आई ॥
बैन-मीत बैन रस रसा , बैनहि लागि रहै मन बसा ।

प्रान-मीत वहि कहिन है , पर न सकै निरबाहि ।
सो दुख आनै आप जिय , जा महँ सुख हो नाहि ॥ ७८ ॥

मैं निसि तहाँ बहुत सुख पावा , कहौं कहा कछु कहत न आवा ।
अब जो तोहि होइ सुख देखैं , मोर सुख आवे तब लेखैं ॥
उठु चलु बेगि होत है बारा , रूप नगर बहु सुख देनिहारा ।
सुनि यह कथा देव अकुलाना , जनु हिय लागु प्रेम कर बाना ॥

१—हाहा, हूहू, दो प्रधान गन्धर्व । २—मान = मर्यादा, ढंग । ३—बन्द हुआ, सिमटा ।

कहेसि कि सुनु ए मिंत पियारे, दुखी प्रान कहँ सुख देनिहारे।
सुनि अमिरित यह बात अनूपा, मन लागेउ चित्रावलि रूपा॥
पै एक लाज काज हौं गहा, उठि नहिँ सकौं अचक मन रहा।

महाराज नैपाल पति, धरनीधर जग जान।
तेहि कर सुत कुलदीप इक, सूर सुबुद्धि सुजान॥ ७९॥

औ पुनि उहै एक सुत आवा, सोइ बहु सेवा कै जेहि पावा।
बहुत पुन्य औ बहु तप कीन्हा, महादेव परसन होय दीन्हा॥
आजु सो एहि बन करत अहेरा, परा भूलि जब भयो अँधेरा।
एकसर आइ मढी महँ सोवा, ढूँढ़त फिरहिँ रतन जनु खोवा॥
एक (क) एकसरि औ रैनि अँधारी, हौं तेहि वैठ अहौं रखवारी॥
एहि बन बहुत जंतु मुख-खोवा, औ बिग खाँहि जो मानुष छावा[1]॥
तेहि कारन तजि सकौं न ठाऊँ, जनि नसाइ धरनीधर नाऊँ।

मात पिता दोऊ मरहिँ, सुनि कलपैं सब कोइ।
हम तन पुनि हत्या चढ़ै, जेहि के सरन सो सोइ॥ ८०॥

बोला मिंत बचन सुनु मोरा, इह संसै जिय मानहु थोरा।
एहि पुनि तहाँ संग लै जाहीँ, अस लै चलहिँ जो जानै नाहीँ॥
चित्रावलि की है चितसारी, बारी माँहि विचित्र सँवारी।
एहि लै जाइ सो राखब तहाँ, हम तैं देखब कैातुक उहाँ॥
देखि कुअँरि औ देखि अखारा, ले आउब होतहि भिनुसारा।
सुनि मन रहसा देव सयाना, जनु तम गए कँवल विगसाना॥
सोवत कुँअरहिँ लीन्ह उठाई, निमिष माँह तहँ पहुँचे जाई।

चित्र सार महँ कुँअर तजि, जहाँ न दूसर कोइ।
आपु सिधारे नगर महँ (ख), जहाँ सो कैातुक होइ॥ ८१॥

(क) यह अकसर औ निसि अँधियारी—पाठा०।

१—शावक = बच्चा।

(ख) कहँ—पाठा०।

(६) चित्रदर्शन खंड।

वै भूले तेहि कौतुक जाई, इहाँ कुँअर जागा अँगिराई।
नैन उघारि देखि चितसारी, रहा अचक उठि बैठ सँभारी॥
देखा मँदिर एक बहु भांती, चित्र सँवारे पांतिन्ह पांती।
कनक खंभ औ कनक केवारा, लागे रतन करहिं उँजियारा॥
ऊपर छात अनूप सँवारे, करि कटाव सब कंचन-ढारे।
कीन्ह उरेह सूर ससि जोती, औार नषत सब मानिक मोती॥
हेठ अपूरब डासन डासा, जहँ तहँ आउ सुगँध की बासा॥

भयो कुँअर चित अचक[1] एक, मनहीं माँहि गुनाउ[2]।
काकर लोन मँदिर यह, औ मोहि को लै आउ॥ ८२॥

बहुरि कुँअर जो पाछे देखा, अपुरुब रूप चित्र एक पेखा।
जानि सजीउ जीउ भरमाना[3], भयो ठाढ़ उठि कुँअर सुजाना॥
देखि रूप मुख परचै खरा, बिधि यह चुरइल कै अपछरा।
किए सिँगार संग नहिँ कोई, धरे भेष भावन है सोई॥
जग न होइ मानुष अस रूपा, को पावै अस रूप सरूपा।
निहचै अहीं सरग पर आवा, सुरकन्या भौ दिष्टि मेरावा॥
निहचै यह सुरपति अपछरा, देखत मोर चित्त जिन हरा।

हौं तो मंडप देव के, सोवत अहा सुभाउँ।
होइ परसन कोउ देवता, लै आवा एहि ठाउँ॥ ८३॥

भयो भाग्य मम दाहिन आजू, जेहि बिधि दीन्ह आनि यह साजू।
कै वहि जन्म पुन्य कछु कीन्हा, तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा॥
कै बेनी सिर करवट सारा, कै कासी तन तप महँ जारा।
कै मथुरा बसि हरि जस गावा, ताहि पुन्य यह दरसन पावा॥

१—अचंभा। २—शोच। चिन्ता। ३—चकित हुआ।

कै काहू की इंछा पूरी, बल वैसाउ[1] कीन्ह दुख दूरी।
कै सुदिष्ट अपने बिधि देखा, आनि देख वह रूप सुरेखा॥
सुनत अहा कबिलास सोहावा, (क)सो बिधि मोहिँ आन देखरावा।

मन रहसहि चिंता चितहि, रहा मौन होइ भूप।
रसना भरम न बोलई, लोएन[२] भूले रूप॥ ८४॥

छिन एक गुनि मन महँ बहु भावा, पुनि ढाढ़स कै आगेँ आवा।
नियरे होइ जो बदन निहारा, रहे निहारि मीन जिमि तारा॥
तब जानेसि यह चित्र अनूपा, हरघो चित्र लखि बदन सरूपा।
नैन लगाय रहेउ मुख बोरा[३], चित्र चाँद भा कुँअर चकोरा।
सुधि बिसरी बुधि रही न हीये, गा बौराइ प्रेम मद पीये॥
कबहूँ सीस पाइ तर धरही, कबहुँ ठाढ़ होइ बिनती करई।
कबहूँ चाहे अंचल गहा, हाथ न आव अचक मन रहा॥

कबहूँ परे अचेत भुइँ, कबहूँ होइ सचेत।
रूप अपार हिएँ समुझि, मुख जोवे करि हेत॥ ८५॥

निरषत जोति नैन जो पाई, परी डीठ आला पर जाई।
देखा आहि लिखे कर साजू, जाते होइ चित्र कर काजू॥
साँवर अरुन पीत औ हरा, जो रँग चाहिय सो सब धरा।
कहेसि बिचारि बूझि मन माहीँ, कालिह आजु अस होइ कि नाहीँ॥
आपन चित्र लिखौं एहि ठाऊँ, मुकुरहिँ जोति जोति कछु पाऊँ।
आपनि जोति सूर उँजियारा, सूर कि जोति चंद मनियारा॥
हिएँ विचारि चित्र तब लिखा, वहि क चरन तर आपन सिखा।

साजि सो मूरति आपनी, ले सब रँग वहि केर।
कै सुजान सो जानई, कै सुजान यह फेर॥ ८६॥

१—व्यवसाय। (क) सुर कन्या मैा दीस मेरावा—पाठा०। २—लोचन। आंख। ३—बउरा। गूँगा।

चित्र लिखा पूजी पुनि धरी, निंद्रा आइ कुँअर चखु भरी।
कुँअरक चाहत पलक न लावा, बरबस बैरिन नींद सोआवा॥
इहै नींद जासैां धन खोवा, इहै नींद जो करै बिछोवा।
इहै नींद मगु चलै न देई, इहै नींद सरबस हरि लेई॥
इहै नींद जेहिँ नैन समानी, पलकन्ह भीतर दृष्टि समानी।
जो जग माहँ नींद बस होई, रहै बीच मग सरबस खोई॥
जे यहि नींद आपु बस कीन्हे, इहै नींद तेहि नौ निधि दीन्हेँ।

मान गवाए सोई सब, जो संपति हुति साथ।
अजहूँ जागु न घर-बसे, भकुरे[1] है कछु हाथ॥ ८७॥

देवन्ह कैातुक अति जिय भाया, चित्रिनि दरस अमर भइ काया।
होत भोर अदित परगासा, उठी सभा औ नाँच उडासा।
चित्रावलि कहँ निंद्रा आई, ले पलंग पर सखिन सोआई॥
औ जहँ तहँ सब सोवन लागीँ, सगरी रैनि अही सुख जागीँ।
देवन्ह कहा होत है बारा, चित्रसारि जनु कोऊ उघारा॥
चलहु कुँअर लै चलहि सबेरा, मगु कोइ आइ मढ़ी महँ हेरा।
एहि न पाउ औ तुरै जो पावा, जानइ कुँअर जन्तु कोउ खावा॥

जन पुरजन माता पिता, जहँ लहु हित सुनि पाउ।
मरिहहिँ छाती फाटि सब, तब कछु हाथ न आउ॥ ८८॥

पुनि दोउ एक संग चितसारी, आइ उघारेन्हि पैारि के बारी।
सोवत कुँअर आन नहँ पावा, लीन्ह उठाइ बार नहिँ लावा॥
निमिष माँह लै मढी उतारा, गए छाड़ि सोवत दुख मारा।
सूरुज किरन जब कुँअरहि लागी, करवट लेत उठा तब जागी॥
देखै कहा चहूँ दिसि हेरी, भई आनि रचना बिधि केरी।

१—मूर्ख, अज्ञानी।

ना वह(क)मँदिर नहिँ कविलासू , ना वह चित्र न वह सुख बासू ॥
सपन जान चित उठा मरोहू[1] , मेटि करेज पानि भा लोहू ।

पुनि जो निहारे आपु तन , त्रिन्ह आह सो संग ।
बस्तर औ कर पर वही , लिखत लाग जो रंग ॥ ८९ ॥

षन एक कुँअर अचक मन रहा , कौतुक सपना जाइ न कहा ।
पुनि जो बिरह लहरि तन आई , थाँभि न(ख) सकेउ गिरेउ मुरझाई ॥
दोउ नैनन जनु समुँद अपारा , उमँड़ि चले राखै को पारा ।
फारै अँगा औ लोटे परा , बंधुन कोऊ हाथ को धरा ॥
भरि गै खेह सीस औ देहा , सेवक नाहिँ जो झारै खेहा ।
संग न कोऊ हितू पियारा , को उठाइ बैठाइ सँभारा ॥
षिन चेतै षिन होइ बेसँभारा[2] , घरी घरी सिर भुइँ दइ मारा ।

बिरह दहनि कोउ किमि कहै , रसना कहि जरि जाइ ।
सोइ हिय माँहिँ सँभारै , जेहि तन लागै आइ ॥ ९० ॥

कटक जो आइ नगर नियराना , देखिन्ह संग न कुँअर सुजाना ।
वह औ कहँ वह औ कहँ पूँछा , कटक जानु बिनु जिउ तन छूँछा ॥
सब मिलि कहा कुँअर जो नाहीँ , राजा पास काह लै जाहीँ ।
पूछत उतर देब हम काहा , छूँछ लजाइ रहब मुँह चाहा ॥
जेहिँ बिनु तब जाइहि मुँह गोवा[3] , कसन अबहिँ जो खोजिअ खोवा ।
सोवत जानु सबै सुनि जागे , आपु आपु कहँ ढूँढ़न लागे ॥
जल जल थल थल मेह पहारा , एक एक तरु तर सौ सौ बारा ।

स्याम रैन बिनु पंथ पुनि , अगुवा संग न कोइ ।
दूरि दूरि सब धावहिँ , नियर जाहिँ नहि कोइ ॥ ९१ ॥

(क) वह मंदिर ना वह कैलासू—पाठा० । (ख) कांपत गिरेउ भूमि मुरझाई—पाठा० ।

१—मरोर = मसोस । २—संभारहीन = बेहोश ।

३—फा० गोयाई = वाचालता ।

खोजत खोजि कटक सब हारा, बीती रैनि भयो भिनुसारा।
सूरज उदै पंथ तब सूझा, भयो दिवस पर आपन बूझा॥
बाजी चरन खोज पुनि पाए, खोजत खोज मढ़ी महँ आए।
देखहिँ कुँअर परा बिकरारा, हाथ पांव सिर कछु न सँभारा॥
ऊभ[1] उसास लेइ औ रोवा, देखत सैन प्रान जुन खोवा।
खेह झारि ले बैसे कोरा, रोवै कटक देखि मुख ओरा॥
पूछे बातन उतर न देई, पिन पिन ऊभ साँस पै लेई।

अरुन बदन पिराइ गा, रुहिर[2] सूखि गा गात।
रहा झाँपि लोयन दोऊ, कहै न पूछे बात॥ ९२॥

कोऊ कहै मृगी एहि आई, होइ अचेत परा मुरछाई।
कोउ कह डसा सांप एहि मढ़ी, सूरज उदै लहरि है चढ़ी॥
कोउ कहे अहा राति का भूखा, ताँवरि आइ रुहिर तन सूखा।
कोउ कह रैनि रहा एकसरा, कै दानौ कै चुरइलि छरा[3]॥
इहवाँ घरी बिलँब भल नाहीँ, बेगहि होहु नगर लै जाहीँ।
ततषन राज सुखासन आना, लै पौढ़ाए कुँअर सुजाना॥
नाउँ सुखासन लै दुखवाहा, बिरह क जरा दून कै डाहा।

जाइ सुखासन आसुभा, बाजु गीत औ नाद।
चला पाछु सब आवै, कटक भरा बिसमाद[4]॥ ९३॥

केऊ कहा जाइ जहँ राजा, कुअँर आव कछु औरै साजा।
संगन सुनिय गीत औ दाना, सिगरी कटक देखि बिसमाना[5]॥
सुनि औगुन राजा उठि धावा, व्याकुल होइ भुइँ पाव न लावा।
रानी सुनि सिर परी बिजागी[6], सुनतहि जरी कोष की आगी॥
आई धाइ कुअँर जहाँ आवा, रोइ सुखासन लेइ कँठ लावा।

१—ऊर्ध्व = ऊँची। २—रुधिर = रक्त। ३—छला = आवेश किया।
४—विस्मय। ५—विस्मित हुआ। ६—वियोग।

देख पीन तन मुख पियराना, राजा रानी तजहिं पराना ॥
कंठ लगावहिं पूँछहिं बाता, उतर न देइ बिरह-मद-माता ।

पुनि ते पूँछा बोलि कै, जे सँग हुते सयान ।
जहँवा कुँअर बिछुरि मिला, तिन्ह सब कीन्ह बखान ॥ ९४ ॥

राजमँदिर महँ कुँअर उतारा, जानहु आनि अगिन महँ डारा ॥
कल न परै पल अति बिकरारा, हाथ पाँव सिर दै दै मारा ।
राजै ततखन जन दौराए, बैद सयान[1] गुनी लै आए ॥
गहहिं नाड़िका[2] बूझहिं पीरा, नारि माँह निरदोष सरीरा ।
ससि सूरज दोऊ निरदोषी, अपुने अपुने घर संतोषी ॥
अब नाड़िका माँह नहिं पीरा, प्रगट पियर मुख पीन सरीरा ।
कहि न आव हम हियँ बिचारा, ई जस बिरह घाउ कर मारा ॥

पीर सोई जो नहीं कछु, औषद मूरि उपाय ।
एहि कर हितू जो होइ कोइ, सो पूछै फुसिलाय ॥ ९५ ॥

उठि अकुलाइ मात दुख-भरी, कुअँर पास आई एकसरी ।
सीस लाइ कै बैठी कोरा, पूछै बात देखि मुख ओरा ॥
नैन उघारु पूत कहु पीरा, केहि कारन भा पीन सरीरा ।
काहे पीत भयो मुख राता, कहहु बात बलिहारी माता ॥
(क) तहीं एक दिनमनि कुल केरा, नैन मूँदि कस करहि अँधेरा ।
हम सब घट[3] तुइ जीव सनेही, कस कुँभिलाइ देसि दुख देही ।
पूत पीर कहु कस जिउ तोरा, नैन खोलु करु जगत अँजोरा ॥

तोरे पीर कि औषद, जो एहि जग महँ होइ ।
अर्थ द्रव्य जिउ दइ कै, बेगि मँगावों सोइ ॥ ९६ ॥

१—भूतविद्या जाननेवाला । २—नाड़ी ।

(क) तैहीं दीप एक कुल केरा—पाठा० ।

३—होते हुए ।

कहु जो उपजी विथा सरीरा, करौं सोई जेहि नेवरइ पीरा।
जो है मढ़ी देव कर भाऊ[1], लै पूजा सो देव मनाऊ[2]॥
जो काहू के दरसन भूला, माँगौ होइ दुनौं कर फूला।
औार जो मन कछु हींछा होई, कहु सो वेगि लै पुरवौं सोई॥
दुहु जग माँह तुहीँ एक आसा, आस तोरि(क) का करसि निरासा।
को काटै इह दुख दिन राती, अबहीँ मरब फाटि मैं छाती॥
सुनि कै कुँअर मातु कै बोला, ऊभि साँस लीन मुख खोला।

माता पीर सो ऊपजी, ताहि न मूरि उपाइ।
लोयन अटके तहाँ पै, मन न सकै जहँ जाइ॥ १७॥

कहि कै कुँअर मौन भै रहा, लोयन दुहु गिरे जल बहा।
बहुत पूँछि रानी जब हारी, कहि न बात नहिँ पलक उघारी॥
एहि महँ बिरह लहरि पुनि आई, (ख) थाँभि न सका परा मुरछाई।
धाह मेलि तब रानी रोई, सुनत लोग धावा सब कोई॥
राजा रोवै डारि सिर पागा, जन परिजन सब रोवइ लागा।
राज मँदिर कर सुनत अँदोरा[3], घर घर परा नगर मह रोरा॥
जो जैसहि तसहि उठि धावा, हाथ हाथ लै कुँअर उठावा।

कोइ मेलै पानी मुख, कोऊ मूँदै नाक।
मेटे कैसेहु नहिँ मिटै, माथ लिखा जो आँक॥ १८॥

विद्याधर गुरु पंडित महा, तेहि कुल सुमति पूत एक अहा।
नाउ सुबुद्धि सकल गुन जाना, पढ़ा पाठ सँग कुँअर सुजाना॥
विद्या जानु जहाँ लगि गुनी, नाटक चेटक आखर घनी॥
मानत हेत कुँअर तेहि सेती, कहत सुनत जिय बातैं जेती।
सुनि कै विथा कुँअर पहँ आवा, कुँअर अचेत आइ तहँ पावा॥

१—मनोनीत है। २—अनुकूल कर। ३—आन्दोलन, हुल्ला।

(क) आस तोरि जन करसि निरासा—पाठा०।

(ख) काँपत भूमि परा मुरछाई—पाठा०।

नारी देखि बिचारेसि पीरा, दोष न पाइस कुअँर सरीरा।
वदन पियर लोचन न उघारा, निहचै कहेसि बिरह कर मारा॥

प्रेय मंत्र बोला सुबुधि, श्रवनन लागि पुकारि।
सोवत जागा कुअँर पुनि, देखिसि पलक उघारि॥ ९९॥

तब एकसर भै पूछेसि बाता, कहहु कहाँ कासों मन राता।
कौन रूप तुम देखा जाई, देखत जाहि परे मुरझाई॥
मैं तोर हितू जान सब कोई, कौन बात तुम मोसों गोई[1]।
औ मैं गुन आकरषन पढ़ा, स्वर्ग बसै सोऊ कर चढ़ा॥
नाउँ ठाउँ जाकर जौ होई, करि उपाउ पुनि आनउँ सोई।
जो तुम्ह काज आज नाहँ आवौं, बुधि विद्या सब कुलहि लजावौं॥
प्रेम पहार स्वर्ग ते ऊँचा, बिनु टेघे[2] कोउ तहँ न पहूँचा।

कहु सो बात अब जीउ की, वेगहि करौं उपाइ।
ना तो बारे कुअँर निज, सब मरिहैं बौराइ॥ १००॥

सुनि सुनि मन सब बात बिचारी, रोइ रोइ कहत कथा अनुसारी।
जैसें खेलै गए अहेरा, आँधि आइ औ भयो अँधेरा॥
औ जैसें सब चले पराई, पर्यो आपु जस एकसर जाई।
औ जैसें बीती सो आँधी, सोवा मढ़ी तुरै तरु बाँधी॥
औ जैसें वह सपना देखा, अपुरब रूप चित्र जस पेखा।
औ जैसैं मनगा बउराई, दिष्टि परत चित लीन्ह चोराई॥
आपन चित्र लिखा रँग लागा, सोवत मढी माँह जस जागा।

जैसें देखा सपन सब, सौंमुह[3] पाए चीन्ह।
कुँअर कहा सब सुबुधि सों, जस कौतुक बिधि कीन्ह॥ १०१॥

कहा कहौं कछु कही न जाई, हिय सँरित बुधि जाइ हेराई।
कहन न बनै जो कछु मैं देखा, गूँग क सपन भयो मोर लेखा[4]॥

१—छिपाता है। २—आश्रय लिये। सहारा लिये। ३—सम्मुख।
४—मि० गूँग को सपना भयो समुझि समुझि पछताइ।

नाउँ न जानौं पूछौ काही, पटतर नाहिँ देखावौं जाही।
देस न जानौं केहि दिसि आही, पंथ न जानौं पूछौं काही॥
मन चहुँ दिसि धावै बैरागा[1], फिरि आवै बोहित[2] ज्यों कागा।
करहु उपाय करै जो पारहु, नाहि तो कहा मुए कहँ मारहु॥
गहिरे सिंधु जाइ जिउ खोवा, अब मैं हाथ आपु सो धोवा।
मोहिँ जियन नहिँ सूझइ, पुनि वह रूप मिलाउ।
मुएँ कबहुँ सुरभौन मँह, हाथ आउ तो आउ॥ १०२॥

जबहिँ कुँवर यह बात सुनाई, सुधि-बुद्धि सब गई हेराई।
परेउ जाइ मन तेहि अवगाहा, तीर न देखि पाव नहिँ थाहा॥
कछु विचार हिए नहिँ आवै, कुँअर पीर जेहि औपद जावै।
कहेसि कुँअर यह पंथ दुहेला[3], निराधार खेलैं तिन्ह खेला॥
कहेसि उपाइ एक मति मोरी, मूँदिय और बाट चहुँ ओरी।
जहवां सोइ सपन अस दीसा, ओही ठाँव हनहुँ पुनि सीसा॥
मकु[4] विधि सोवन कर्म लगावै, बहुरि सोई सपना सो पावै।
लेहु कुअँर उपदेस यह, चेतहु चेत सँभारि।
आन पंथ नहिँ दूसरा, दीख न हिएँ विचार॥ १०३॥

(७) मढी खंड।

सुनि कै कुँअर पंथ पहिचाना, हिएँ विचारि सुमति मन माना।
हुत जो निरास आस कछु पाई, बूड़त कहँ जनु थाह बनाई॥
राजा रानी दोउ हँकराए, सुनि सुचेत रहसत दोउ आए।
कुँअर ठाढ़ भा दोउ कर जोरी, मात पिता बिनती एक मोरी॥
अग्या देहु हिए मति चढ़ी, दिन दस रहौं देव की मढी।
जाकर जाइ जहाँ कछु खोवा, जहवां खोउ तहाँ पै जोवा॥
ढूँढौं जाइ सुबुधि ले साथा, मगु ढूँढ़त आवै कछु हाथा।

१—उचटा हुआ। २—नाव। ३—कठिन।
४—कदाचित्।

अग्या देहु तो दिवस दस, रहौं मढ़ी महँ जाइ।
हम तन पीर सो ऊपनी, जाहि न आन उपाइ॥ १०४॥

राजैं कहा जहां सुख होई, रहहु (क) जाई तुम्ह बरज न कोई।
रहिह कटक पुनि तुम्ह सँग जाई, उहँहिं देव मैं नगर बसाई॥
अर्थ दर्ब जत लागै लावहु, तुम्ह सुबुद्धि सँग जिउ बहलावहु।
बेगि बोलाइ चहूँ दिस केरा, थवई खाती गुनी चितेरा॥
दीन्ह अनेक कनक औ रूपा, होइ लाग तहँ मँदिर अनूपा।
मारुतसुत सम लाग कहारा, रहसत आवहि लिए पहारा॥
खंड उपर खंड होई बिनानी[1], कै गच ढारहिं कँचन पानी।

खँड उपर पुनि खँड करहि, जहँ तहँ गुपुत चढ़ाउ।
बाहर भीतर दुहूँ दिसि, होइ अनेक कटाउ॥ १०५॥

बाहर चहुँ दिस कोट बिराजा, भीतर सब तो मंदिल साजा।
देवमढी पुनि फेरि बनाई, हीरा फटिक[2] लगाइ उँचाई॥
ईंगुर पीसि साजि जनु सोना, कीन्ह कटाउ चित्र बहु लोना।
लिखि लिखि चित्र बिचित्र सिँगारा, जनु पुहुमीक बिलास उतारा॥
सुरपुर सुर गन नहि अब लेखे, पुहुमी साध[3] होइ तेहि देखे।
मढ़ी सँवारि[4] देव जो आवा, मढ़ी न पावा चहुँदिस धावा॥
धावत फिरै न पावै वासा, बिधि यह पुहुमी कै कविलासा।

भूलि सुदामा ज्यों फिरै, न हँसी आव न रोइ।
भटकत फिरै चहूँ दिसि, गई मढ़ैया खोइ॥ १०६॥

कुअँर सुबुद्धि दोऊ एक साथा, आइ देव कहँ नाइन्हि माथा।
ले जल पानि देव कहँ पूजा, चित्र ध्यान चित आन न दूजा॥
बिनती कीन्ह सुनाइन्ह सेवा, होहु दयाल बहुरि हो देवा।
जो मनसा चित पुरवहु आनी, कलस चढ़ावौं बारह पानी[5]॥

(क) रहहु तहां कछु हरज न कोई—पाठा०। १—तय्यारी। २—स्फटिक। ३—इच्छा, अभिलाषा। ४—स्मरण कर के। ५—बारह बरस का सूअर।

कै विलाप सोवा तेहि ठाऊँ, सँवरै रूप न जानै नाऊँ।
बरबस नैन झाँपि जो सोवा, बिरह जगावै त्यों त्यों रोवा॥
बिरह अगिन बस जेहि तन माहीँ, भूख पियास नीँद तेहि नाहीँ।
हियरेँ भीतर दुख बसे, नैनन मूरति सोइ।
नैन नीँद तब आवई, ठौर कहँहुँ जो होइ॥ १०७॥
दिन दस जौ बीते एहि भाँती, कुअँर जीउ पावै नहि साँती[1]।
बिरहा अगिन अधिक उदगरी, प्रगट होइ मढ़ी तब जरी॥
मढ़ी जरी जानहु धै जोरी, चित्र अँगार भए जरि होरी।
देव देखि नैनन नहिं भावा, मानहु सिंघ होइ चाहै खावा॥
मँदिर भीति जनु दै उदगारा, कनक अगिन नग भये अँगारा।
बसन सोहाइ न अंग जो आहा, जिय तजि देह चलै जनु चाहा॥
उमड़े नैन आँसु तस तूटे, भादौं मघा धार जनु छूटे।
कहेसि सुबुध चेतहु न चित, इहौ गई अब आस।
नीँद न नैनन आवई, सपनेहु भयो निरास॥ १०८॥
बूड़ अहौं समुँद मँझ नीरा, नाउ न बेड़ा थाह न तीरा।
निग्रर न कोई माया मोरी, बूडत धरि भुज काढ़ै मोंही॥
दानव बिरह आइ जो लीला, रहा गाढ़ होइ देह न ढीला।
कोउ नाहीँ अस बंधो मोरा, होइ हनुवँत जमकातर तोरा॥
गयो चित्र नैनन्ह ते धोई, जस दसरथ सुत सीय बिछोही।
को सेवक हनिवंत[2] समाना, बल बाँसाइ[3] वाहि को आना॥
कासों कहौं बिथा जिउ गाई, आपद पीर न जानै कोई।
रैनि अँधेरी अगम अति, अगुवा नाहीँ संग।
पंथ अकेला बापुरा, किमि कर पावै भंग[4]॥ १०९॥

(८) धरमसाल खंड।

सुनि कै सुबुधि साँस उर काढ़ी, कुअँर कि पीर पीर जिअ बाढ़ी।

१—शान्ति। २—हनुमन्त। ३—लगा के। ४—भेद। पता।

करी ग्यान जिय रचा उपाई, कहेसि कुँअर सुनु बात(क) सोहाई॥
गिरिवर प्रेम विकट अति ऊँचा, धाइ चढ़ा सो तहाँ पहूँचा।
धीरज धरि जो लेइ पथ हेरी, चढ़ै जाइ जहँ शृंग सुमेरी॥
सपने चित्र जहाँ देखि आए, सौंमुख सबै चीन्ह तहँ पाए।
अहै चित्र सो एहि जग माहीँ, जनि जिय जानसि जौ कछु नाहीँ॥
जानैँ जति सन्यासी कोई, जो जग माँह फिरा बहु होई।

धरम साल एक बार कै, जोगिन्ह बैठि जेँवाउ।

पूँछहु बात जगत की, जो कोउ चाह सुनाउ॥ ११०॥

सुनि मति कुँअर पंथ कहँ पावा, स्वाति पानि चातिक मन लावा।
धरम साल एक बार सँवारा, जन सहस्र राखे रखवारा॥
चारिहुँ दिसा भोर उठि धावहिँ, जोगी जती ढूँढि लै आवहिँ।
बोलहिँ मया देखावहिँ सेवा, लुबधे फिरहिँ भौंर जस केवा॥
पाउँ पखारहिँ ढारहिँ पानी, कहहिँ बचन सब अमिरित बानी।
पहिले आनि जेवावहिँ भोजा, पाछे करहिँ देस कर खोजा॥
कहहिँ कथा जो जो कछु जानैँ, भाँति भाँति पुनि देस बखानैँ।

चित्र बात कछु पूछही, कहै जो देखा होइ।

सुनि सुनि बात सुहीय मह, पटतर लावै सोइ॥ १११॥

दुहुँ जग जाकी उपमा नाहीँ, रे मन सोइ बसै तोहि माहीँ।
का ढूँढहिँ जहँ तहाँ उदासा, मृग ज्योँ तृन तृन ढूँढत बासा॥
जब कीरात नाभी कटि लेई, मृग पछनाइ तहाँ जिउ देई।
मृगमद माह बास ज्योँ रहई, त्योँ घट माँह निरंजन अहई॥
तैँ अबही घट आप न साधत, जब लौँ जम बाधा नहि बाधत।
ग्यान अंत घट माहँ थिराई, निरमल रूप निहारहु जाई॥
धरम पंथ छाडौ जनि कोई, धरमहि सिद्धि परापित[१] होई।

(क) हमारी—पाठा०।   १—प्राप्त।

मान इहो जो धरम पँथ, डोरि लावै राउ।
रूप नगर अब जाइ कै, चित्रावलिहिँ जगाउ॥ ११२॥

(६) चित्रावली जागरण खंड।

चित्रावलि चषु नीँद जो लागी, दिनकर उगा तबहु नहिँ जागी।
कौंल न खिला अली अकुलानी, भा बिहान कुमुदिनि कुँभिलानी॥
सखी बेग जो दरस न देखा, आपन जनम अकारथ लेखा।
जनी चार जिन्ह विरह बिछोवा, आईँ तहाँ कौंल जहँ सोवा॥
जिन्ह सों हेत रहा अधिकाई, तिन गहि पावँ पलोट जगाई।
नैन उघारि नारि जँभुआनी, दोऊ भुज पसारि अँगिरानी॥
बदन सरूप देखि जग मोहा, जनु मयंक पारस मधि[1] सोहा।

छूटहिँ अलकावलि बदन, भौंहैँ चढ़ी कमान।
जाल रोपि कुसमेखु[2] जनु, मारन चाहति प्रान॥ ११३॥

ससि समीप कुमुदिनि मुँह खोला, सुनु चित्रावलि वचन अमोला।
तैँ सुबुद्धि औ चतुर सयानी, ऐसे सोवत का जिय जानी॥
अस निचिंत पै सोवै सोई, जा कहँ इहाँ रहन नित होई।
एह नहियर औ पितु कै राजू, ससुरे गएँ आव नहिँ काजू॥
दिन दुइ चार इहाँ कर रहना, खेलन हँसन सोई पै लहना।
खेलहु खेल बूझि मन माहीँ, आजु जो आहि कालिह सो नाहीँ॥
कालिह पीउ बोलिहि चितधरी, राखि न सकिहि कोऊ एक घरी।

काढि देब हम एकसरी, चलिहिँ न कोऊ साथ।
कहे न पाउब बात कछु, रहब मरोरत हाथ॥ ११४॥

कठिन रहन ससुरे कर आही, तबहीँ कुसल कंत जब चाहै।
सकुचहि तैँ बीती पल जेती, छुटन न छिन अंचल कर सेती॥
लाज त्रास पुनि गुरुजन केरी, सोहँ न सकब काहु न तरेरी।

१—मध्य। २—कामदेव।

बोलत ऊँच सासु देइ गारी, ननँदी नीच बोल बेवहारी ॥
रिसि आइहि राखब जिय मारी, रिस कीन्हे आवै कुल गारी।
ऐसे पर पुनि जान बिधाना, पिउ कस चाह जो जनम सँधाना ॥
सब(क) दुख सुख जौ पै पिउ चाहा, ना तरु जनम अकारथ आहा।

सुख सरवर इह पिता घर, लहर तरंग अपार।
खेलि लेहु जो खेलिबे, कोऊ न बरजनहार ॥ ११५ ॥

तुम्ह तौ इहाँ नीँद चित लावा, तुम्ह बिनु सरवर सोभ न पावा।
कँवल मराल हंस तुम्ह सेती, औ मृनाल सोभा सर जेती।
(ख) तुम्ह बसन्त लइ सोवहु बारी, तुम्ह बिनु खांखरि सब फुलवारी॥
तुम्ह सरीर पुनि चंपक फूला, आध गुलाल मधुमती फूला।
फुलपंछी तुव संग पियारी, जेहि बिनु सोभा पाव न बारी॥
तुमहीँ डारि औ तुमही सूआ, तुमहीँ ते सर फूल अछूवा।
तुमहिँ आप जो सरस अमोला, तुम्हही ते जो कोकिल बोला॥

तुव बिनु सूनी चितसरी, चित्र सबै बिनु रंग।
जल थल सोभा उठि चलहु, सखी सहेली संग ॥ ११६ ॥

चित्रावलि रचि कीन्ह सिँगारा, गरे सोह मनि मोतिन हारा।
सखी सहेली लीन्ह हँकारी, आई सब जानहुँ फुलवारी॥
पाँति पाँति निकसीं सब बाला, गूँधी जानु पुहुप की माला।
अलिकावलि अलि माला जैसी, उड़ि उड़ि जानु पुहुप पर बैसी॥
जेहि जेहि पंथ चली ते जाहीँ, ठौर ठौर तेहि मधुप लोभाहीं।
खेलत सब निसरीँ जेहि ओरी, होत बसंत आव तेहि ओरी॥
मधु कर फिरहिँ पुहुप जनु फूले, देवता देखि रूप सब भूले।

एहि बिधि सब क्रीड़ा करत, आईँ सरवर तीर।
खोँपा[1] छोरिन सीस के, गात उतारिन चीर ॥ ११७ ॥

(क) यह केवल एक ही प्रति में है। (ख) तुम बसन्त सोभा पुनि बारी—पाठा०।

१—जूड़ा।

(१०) सरोवर खंड ।

तीर धरिन सब चीर उतारी, धाइ धसीं सब नीर मँझारी।
कनक लता फैलीं सब बारी, पुरइनि तोरि जानु जल डारी॥
मानहुँ ससि सँग सरग तराईं, केलि करत अति लाग सोहाईं।
हंस देखि जलहर तजि गए, पदुम सबै दिन कुमुदिनि भए॥
आइ चकोर देखि मुख रहा, सरवर नाहिं गगन सब कहा।
भूले गगन अचक रहे तहाँ, अब निसि नषत कहहि दिन कहाँ॥
चित्रावलि तन मलया घानी[1], अलकावलि नागिन लपटानी।

कच बिषधर सरवर डसा, मूरि नगारुरि[2] संग।
नख सिख सेतीं लहरि जनु, बिथुरि गई सब अंग॥ ११८॥

हँसि बोली चित्रावलि बारी, सुनहु सखी एक बात हमारी।
यह सरवर जो आहि सोहावा, एहि क अंत बिरला जन पावा॥
तुम संतन पालहु मम नेहू, आज मोर परतिग्या[3] लेहू।
हौं छिपाउँ एहि सरवर माहीँ, तुम खोजहु कोउ पावकि नाहीँ॥
मोहि खोजत जो आइ उचावै, हारउँ बचा माँग सो पावै।
बाएँ घाट, गहिर जल जानी, तहँ छपि रही कौँल गहि पानी॥
काहु न जाना केहि दिसि गई, सरवर मथन करत सब भई।

बूडि बूडि हेरहिँ सबै, जेहि जस भाग सो पाउ।
कोउ घोंघा कोउ मोति लै, कोउ छूँछे बहराउ॥ ११९॥

सरवर ढूँढि सबै पचि रहीं, चित्रिनि खोज न पावा कहीं।
निकसीं तीर भईं बैरागी, धरी ध्यान सब बिनवै लागी॥
गुपुत तोहि पावहिँ का जानी, परगट मँह जो रहहि छपानी।
चतुरानन पढि चारौ बेदू, रहा खोजि पै पाव न भेदू॥

१—आघ्राण कर। २—साँप का मन्त्र जानने वाला। ३—प्रतिज्ञा, परीक्षा।

संकर पुनि हारे कै सेवा, ताहि न मिलिउ और को देवा।
हम अंधी जेहि आपु न सूझा, भेद तुहार कहाँ लौं बूझा॥
कौन सो ठाँउ जहाँ तुम नाहीँ, हम चखु जोति न देखहिँ काहीँ।

पावै खोज तुम्हार सो, जेहि देखलावहु पंथ।
कहा होइ जोगी भए, औ पुनि पढ़े गरंथ॥ १२०॥

ततपन सरद चाँद परगासा, बिहँसि कुमुदिनी कीन्ह हुलासा।
चित्रावलि जनु पंकज कली, सरवर जीउ काढ़ि लै चली॥
पहिरि चीर जल चिहुर[1] निचोवा, मानहु घन मुक्ताहल बोवा।
रचि भूषन पुनि कीन्ह सिंगारू, पहिर कंठ मुक्ताहल हारू॥
पुहुपमाल पुनि ह्वै सब बारी, फूलीँ आइ माँझ फुलवारी॥
जब लगि आहि आइ सब देखी, फूल माहिँ पुनि कौन बिसेखी॥
तोरहिँ कुसुम नवावहिँ डारा, कोऊ गेंद कोउ हार सँवारा।

उर उर मेलहिँ हार गहि, भौंर कवँल तेहि संग।
मानहु दोऊ मिलि चलीँ, कालिंद्री औ गंग॥ १२१॥

(११) चित्रावलोकन खंड।

सखी एक आई तहँ धाई, कहेसि कि अचरज देखहु आई।
चितसारी जहँ चित्र तुम्हारा, पुरुष एक कोउ लाइ सँवारा॥
अस विचित्र नहि जाइ बखाना, पटतर दइ न जाइ ससि भाना।
अपुरुब रूप चित्र वह दीठा, राजकुँअर जनु आइ बईठा॥
देखत चित्र गई हम आऊ, कहूँ चित्र अस देख न काऊ।
नैनन देखत हिये समाई, जनि पतियाहु तौ देखहु आई॥
अचरज रहै जो इहाँ को आवा, इहाँ पौन नहिँ संचरै पावा।

मानुष इहाँ न आवइ, देवता लिखै न कोइ।
विधि ने अपने हाथ जो, लिखा होइ तो होइ॥ १२२॥

१—प्रकाश।

सुनि चित्रिनि चितसारी आई, देखि चित्र मुख रही लुभाई।
सहस कला होइ हियेँ समाना, निरषि रूप चित चेत भुलाना॥
नैन लाइ मूरति सौं रही, डोलि न सकी प्रेम की गही।
चित्रिनि कह सुनु सखी पियारी, तुम्ह मोरि पीर-सिरावनिहारी॥
यह सरूप मोहि सुख-देनिहारा, जोबन भयो जीउ-लेनिहारा।
करहु विचार इहाँ को आवा, औ कैसे सो आवै पावा॥
केहि क चित्र औ को अस लीखा, अस वै लिखै कहाँ दहु[1] सीखा।

करहु खोज ता कर सखी, जेहि क चित्र यह आह।
नाहिँ तो मरिहौं बूड़ि मैं, विरह समुद्र अगाह॥ १२३॥

सखिन कहा तुम्ह चतुर सुजाना, जो तुम्ह जान सो काहु न जाना।
नाउँ ठांउ जाकर नहिँ आही, धावत कैसे पावै ताही॥
हम सब मिलि खोजब एक साथा, खोजत खोज आउ पै हाथा।
तुम घर चलहु करहु कुल लाजा, जौं यह बात सुनै कहुँ राजा॥
तुम कहँ रिस कै घरहि लुकावै, हमहि जियत लै गाड़ भगावै(क)।
दुर्जन लोग करहिँ सब हाँसी, बोलहिँ बोल करहिँ कुल नासी॥
जौ अपना है प्रेम, पियारी, गुपत सहहु दिन दस दुख भारी।

बरजहिँ आपन साथ सब, अहिन सुनै नहि पाउ।
कै तुम्ह कै हम कै बिथौ, जे यह कीन्ह उपाउ॥ १२४॥

चित्रावली चित्र-रँग राती, लिए बुलाइ निपुंसक जाती।
औ यह भेद कहा तिन्ह संती, तुम्ह जानहु कि सहेली जेती॥
जो यह बात चलाइह कोई, आपन कीन्ह पाव पै सोई।
मूँड मुँडाय निसारौं देसा, कारा मुख गुंजा कर भेसा॥
निस दिन इहाँ रहहु रखवारी, अहित न आव पाउ चितसारी।
दिये पाट राखहु निसि दीना, कोउ न उघार आइ मोहि बीना॥
जनम सेइ जे मोहिँ न बिसारा, यहि सेवा मैं होब मयारा।

१—दहु—भौं। २—उपन्न। (क) हमहिं जियत धरि ठाढ़ गडावे। पाठा०।

सिख दइ निकसी चित्रनी, रही चित्र चित गाड़ि।
छूँछी काया ले चली, जिउ चितसारी छाड़ि ॥ १२५ ॥

दिवस गयौ निसि आइ तुलानी, परी जाइ धौराहर रानी।
कहैं कहानी सखी पियारी, चित्तन टाउँ को देइ हुँकारी ॥
नींद न परै प्रेम चित जागा, कछु न सोहाइ चित्र मन लागा।
कुसुम सेज जानहु चित[1] जोरी, देह लाइ दीन्ही जनु होरी ॥
जागत बरष एक दिन जाई, पलक उलटि सम पहर बिहाई।
चित अकुलाइ चलन कहँ चाहा, लाज आइ पग साँकर बाहा[2] ॥
निसि जनु जम होइ जीउ हरि लीन्हा, पलटि भोर जानहु जिउ दीन्हा।

बिहसित भोर अरुन उदै, चित्रिनि चित्र सँभारि।
हितू सहेली संग लै, रहसि चली चितसारि ॥ १२६ ॥

चित्रावलि आई चितसारी, रहसि उघारेसि पौरि केवारी।
कौंल वदन जो अहा कुम्हिलाना, दिनकर दरस देखि बिगसाना ॥
रहे जो नैन बियोग जगाए, चित्र रूप जल आनि सिराए।
टक टक रही चैन चित खोवा, मानहुँ चित्र चित्र-मुख जोवा ॥
एक टक लाइ रही मुख ओरा, (क)चित्र चाँद भा कुँवरि चकोरा।
एहि बिधि दिन बीता निसि आई, सखिनि आइ गहि बाँह उठाई ॥
सखी सबै जो एकमत भईं, बरबस लै धौराहर गईं।

निसि दुख देखा चित्रिनी, सब निसि एक एक जाम ॥
जस असोक तर जानकी, बिरह सहा बिनु राम ॥ १२७ ॥

एहि बिधि बीते जो दिन चारी, निसि धौराहर दिन चितसारी।
प्रीति आइ उर अंतर बसी, प्रेम जोति माथे परगसी[3] ॥
रूप मलोन बदन पियराना, अंचल दीप न रहै छिपाना।

१—चिता। २—डाली।
(क) मनहु सरद ससि पाव चकोरा—पाठा०।
३—प्रकाशित हुई, चमकी।

आनन पियर तेज बिनु गाता, लखि बरची मुख हेरा माता ॥
पारखि होइ मन परखी हीरा, परगट दोष न देख सरीरा।
खेलत हँसत रैन दिन जाई, का तैं आहि बदन पियराई।
जिउ उदास आनन कुँभिलाना, बाज प्रेम यह दीसत आना ॥

पूछि एक एक सखी सन, औ निपुँसक जत साथ।
चित्रावलि जनु सुरसरी, कहा सबन छुइ माथ ॥ १२८ ॥

अहा जो एक निपुंसक-जाती, चित्रावलि सेवा दिन राती।
एकचित करत रहत नित पूजा, आन न ओहि सर सेवक दूजा।
निसि दिन प्रेम दृष्टि भरि हेरा, हिये ध्यान चित्रावलि केरा ॥
फिरे भाग औ भइ मति हानी, भा भिमान[1] सेवा बहु जानी।
चित्र रूप जब चित्रिनि राती, ताहि देखि सुठि बिहरी छाती ॥
जिमि जिमि चित्रिनि चित्र निहारा, कहै आगि भरि भयो अँगारा।
जिय न विचार अभागा ऐसा, रांक होत राजा सो कैसा।

जेहि सेवा जिउ दीजिये, नित उठि ताहि असीस।
जो जिउ जानें सो करै, ता सैां कैसी रीस ॥ १२९ ॥

जाइ तहाँ जहँ हीरा रानी, चित्र बात वह कहिसि बखानी।
बारी माहँ जो है चितसारी, तहँ चित्रावलि खेल धमारी[2] ॥
रैनि काहु एक चित्र सँवारा, परगट भयो भयेँ भिनुसारा।
को लिखि गा कछु जानिय नाहीँ, जेहिक चित्र सो को जग माहीँ ॥
ताहि देखि सो भूली बारी, फूली हियेँ प्रेम-फुलवारी।
भौंर न मिला कौंल कहँ आई, भौंर छाँह लपि रही भुलाई ॥
चित्र-प्रेम चित्रावलि हीयेँ, माती रहै प्रेम मद पीयेँ।

जानहिँ सब सखि संग की, औ निपुँसक दुइ चार :
जो मोहि कहिबे सो कहा, करहु जो आव विचार ॥ १३० ॥

१—अभिमान। २—एक खेल।

मुनि रानी मन कीन्ह विचारा, उपजत बीरो[1] जौ न उपारा ॥
भएँ विरष पुनि हाथ न आवै, जो बल करै सोई दुख पावै ।
अबहीं कस न जाइ सो धोवौं, प्रेम अँकूर मूर तैं खोवौं ॥
जब लगि सुनै पाव नहिं राजा, करौं सोई कुल होइ न लाजा ।
बहु दुख पहर रैन पर हेली[2], तब लीन्हो सँग चारि सहेली ॥
पहिले जाइ कही रखवारा, लै कुंजी पुनि बार उघारा ।
देखा चित्र एक मनियारा, जगमग मँदिर होइ उजियारा ॥
जिमि जिमि देखै रूप मुख, हियें छोह अति होइ ।
पानी[3] पानिहिं लै रहा, चित्र जाइ नहि धोइ ॥ १३१ ॥

---

(१२) चित्र धोवन खंड ।

सखी एक जो अही सयानी, कहिसि कहा बिलवावहु[4] रानी ।
यह सो चित्र जासों जग हांसी, दुहिना पाव नांउ कुलनासी ॥
धोवहु बेगि आहि जो लोना, कान टूट का करिये सोना ।
सुनि मति हीरा रानी जागी, लै जल कर सों धोवन लागी ॥
जिमि जिमि चित्र जाइ कछु धोई, राहु गरासि जानु ससि होई ।
जिमि जिमि मिटै रूप मनियारा, होत आंउ नैनन्ह अँधियारा ॥
गई मेटि सो मुरति रसीली, जनु मनि आइ भुअंगम लीली ।
मेटि चित्र रानी चली, हिये दुन्दु दुख खोइ ।
एतन न जाना विधि लिखा, मेटि सकै नहि कोइ ॥ १३२ ॥

चित्रावलि निसि विरह दुखारी, होत भोर आई चितसारी ।
चित्र न देखि अचक होइ रही, चांद सरूप गहन जनु गही ॥
अन्तक[5] बिरह आइ जिउ हरा, धर बिनु जीउ पुहुमि खसि परा(क) ।
सुनै न कछू कहै जो कोई, जनु मनि खोई भुअंगिनि सोई ॥
कोइ सखि दसन खोलि जल नावै, कोउ गहे नाकि सांस जेहि आवै ।

१—वीरुध = बिरवा । २—टाला । ३—हाथ । ४—नाश करती हो । ५—यमराज ।

(क) सखी सँभारहिं पूँछहिँ बाता, उतर को देइ जीव नहि गाता ।
हिंदी प्रति में यह अधिक है ।

कोइ अंचल गहि पौन डुलावै, कोइ करतल पातल सुहरावै।
कोइ चंदन घसि पोतै काया, बरत अगिन जानो घिउ नाया॥
घरी चारि बीतै बहुरि, भयो चेत कछु तासु।
नैन उघारि निहारि तब, कहेसि ऊभि लै साँसु॥ १३३॥

भयो काह सो रूप अमोला, जेहि बिनु गात पात जिमि डोला।
भयो कहा सो सूर उजियारा, जेहि बिनु भयो जगत अँधियारा॥
कहहु सो जोति कहाँ अब गई, जेहि बिनु पूनु अमावस भई।
गई कहाँ सो मुरति पियारी, जेहि बिनु आजु सून चितसारी॥
कै जिन लिखा मेटि तिन गवा, कै छिति छाँड़ि सरग अपसवा[1]।
कै जम अहा जीउ लेनिहारा, आइ जीउ लै सरग सिधारा॥
कै कतहूँ माता सुनि पावा, लाज जानि निसि आइ मिटावा(क)।
ताहि बोलि कै लीन्ह सुधि, जो हुत निसि रखवार।
को आयो निसि सूरसुत[2], जिउ लै गयो हमार॥ १३४॥

आवा बोलि रैनि रखवारा, सीस नाइकै किहिस जोहारा।
कहेसि राति रानी हुति आई, लै जल से कर गई मिटाई॥
मात चरित सुनि हियँ सकाने[3], पिता संक पुनि अधिक लजानी।
कहेसि ताहि अब खोजहु आली, जे अस बात मातु सों चाली।
अस को आहि कुटीचर[4] संगा, कै कुटचारि[5] कीन्ह रस भंगा॥
बेगि खोजि आनहु पै सोई, करौं सोई जो मनसा होई।
होइ लाग चारिहुँ दिसि खोजू, घर घर परा तिहूँ पुर खोजू॥
सुर नर मुनि गन सब डरं, सुनि चित्रिनि चित-रोष।
ताकर आहि अभाग बिधि, जाहि लाग यह दोष॥ १३५॥

मैं का कहौं जगत सब जाना, यहि कलि पाप न रहै छिपाना।

१—पा० अपसरा = उड़ गया। २—सूर्यसुत = यम।
३—सकोच किया। सहमी। ४—चुगलखोर, चवाव करने वाला।
५—चुगुली, चवाव। (क)........निसि आनि नसावा। पाठा०।

जो खिन गोप करै संसारा, आय आपु ज्योंर हट[१] पुकारा ॥
छिपत जो किये कूप औ बापी, कोउ न जगत कहावत पापी।
पाप न रहै छिपाएँ छिपा, छिपै पुन्य जो अहनिसि जपा ॥
पापहि गोइ[२] कहाँ कोउ सोवा, आपहिँ पाप जनम तेहि खोवा।
तजहु पाप पंथहि जिय जानी, करहु पुन्य जो रहै कहानी ॥
पुन्य करत जनि लावहु धोखा, जा सों होइ दुहूँ जग मोखा[३]।

मान करहु जो करि सकहु, कथनी अकथ अपार।
कथे न कर कछु आवई, करनी करतब सार ॥ १३६ ॥

खोजत खोज कुटीचर जाना, बाँधि सखिन्ह त्रितिनि पहँ आना।
पग साँकर[४] हाथन हथकरी, दिपहि स्याम[५] जो आनी जरी(क) ॥
ततषन बेगि हँकारा नाऊ, येरिउ अस जनि होइ बिपाऊ[६]।
मूँड़ मुड़ाइ लाइ मुख कारी, पाछ(ख) रही देही रतनारी ॥
खर चढ़ाइ कै नगर फिरावा, बोला जैस कीन्ह तस पावा।
नगर फेरि पुनि देस निकारा, फिरि आइ पहुँचावनिहारा ॥
गुन सेवा पति निमिष न हेरा, किंचित (ग) दोष लागि मुँह फेरा।

आपन करनिहि जानिये, अति मयार जौ राज।
ठाकुर अज्ञा मेटि कै, काकर भा न अकाज ॥ १३७ ॥

चित्रावलि कहँ सो चितसारी, जानहु भई भुअंगिनि कारी।
फूल अँगार भए फुलवारी, किछु न सोहाइ बिरह की मारी ॥
बेगि आइ धौराहर चढ़ी, बिरह बिथा बियोग उर बढ़ी।
लोयन जल जनु घन बरषाई, देह दहै जानहु दौ[७] लाई ॥
मलय मेद घनसार मिलावा, सखी आनि चाहैँ उर लावा।

१—पानी निकालने का एक यन्त्र। २—छिपाकर। ३—मोक्ष।
४—स० शकु = सीकर, जंजीर। (क) देहि स्याम जो औगुन जरी—पाठा०।
५—कारिख = स्याही। ६—विपति। (ख) पाछु रहीर देहि रतनारी—पाठा०।
(ग) तनिक दोष .... पाठा०। ७—दावाग्नि।

अस तन तवै बिरह-नल[1] पागा, निकट सुखाइ(क) अंग नहि लागा ॥
पदुम गूँधि मेलहिँ उर हारा, टूटहिँ जरि जरि होइ अँगारा।

रोइ कहै तब सखिन सौं, हम तन तपनि सो लाग।
जौ तुम्ह हिमगिरि आनहु, तउ न बुझै यह आग ॥ १३८ ॥

करहु उपाय सोई चित जानी, हिरदै आगि परै जेहि पानी।
को अस बिधनै जग उपराजा, जो चित-हरन चित्र अस साजा ॥
करहु खोज सो कहाँ चितेरा, मकु गा जीव बहुरि लिखि फेरा।
कै जेहि मिलै सो करहु उपाई, कै बिष देहु मरौं जेहि खाई ॥
रँगमति नाउँ सखी एक अही, ते समुझाइ बात तब कही।
करि गियान चेतहु चित माहीँ, आहि सो आहि नहिँ सो नाहीँ ॥
आहि कोऊ सो एहि संसारा, जेहिक चित्र यह काहु सँवारा।

कस न खोज तेहि लीजिये, जाकर चित्र अनूप।
रंक न ऐसा रूप भा, है कुलीन कोउ भूप ॥ १३९ ॥

तासौं कहा प्रीति तुम्ह लाई, जो जल धोवत गयो मिटाई।
दिन दुइ केर नटक देखरावा, गयो मेटि पुनि बहुरि न आवा ॥
कस न ताहि जिउ दीजे जानी, जेहिक चित्र तुम्ह देखि भुलानी।
बूझि बिचारि देखु मन माहीँ, कया सजीव चित्र परछाहीँ ॥
कया सूर दीपक परछाहीँ, होइ पतंग जरहु तुम्ह काहीँ।
जाकर परछाहीँ चित हरई, सो दहुँ कया काह धौं करई ॥
जो अति चित्र लीन लिख कोई, संभु सरीर न पटतर होई।

चित्र, चित्र चित सौं हरहु, धरहु ध्यान मन सोइ।
तुम्ह ज्ञानी औ सुबुधि अति, का समुझावै कोइ ॥ १४० ॥

सखी बात सुनि तपनि सिरानी, उपनत अगिनि परा जनु पानी।
परमवचन[2] सुनतहि मन जागा, तजि छाया चित कायहि लगा ॥

१—बिरहानल। (क) अगिनि तन लागा—पाठा०। २—सदुपदेश।

चित्र सबै सो नास्ति कै जाना, काया अस्ति सोइ परमाना।
कहेसि सखी तैँ हितू हमारी, भूला पंथ देखावनिहारी॥
अस्ति प्रेम उपजेउ चित आई, नास्ति सबै अब गई हेराई।
हौं असूझ बन जात अकेली, तैँ गहि बाँह पंथ सिर मेली॥
हिय के नैन पंथ अब सूझा, आन विचार संभु तन बूझा।

कहु कैसे तेहि खोजिये, कै एकसर कै साथ।
करु उपाय अब सोइ निजु, जेहि जिउ आवै हाथ॥ १४१॥

सुनु सुंदरि अब बचन सोहावा, बिनु खोजे कछु हाथ न आवा।
नियरहि जाहि न चीन्है कोई, जानहिँ कोस सहस दस सोई॥
दूरि नाहिँ जेहि होइ चिन्हाई, नैन न आवै मन तहँ जाई।
जन दुइ चार चित्र जिन्ह चीन्हा, औ बुधि होइ गियान तिन्ह दीन्हा॥
भसम लाइ तन जोगी भेसा, पठवहु जाहिँ देस परदेसा।
लेहिँ सो राउ रंक घर फेरी, पुर पट्टन सब देखहिँ हेरी॥
मकु[1] तुव भाग जागि कै जाई, सोँतुख[2] हाथ चढ़ै कहुँ आई।

जेहि काहू खोजै कोऊ, एक मन एक चित लाइ।
होइ दूरि जो अति तऊ, नियरहि मिलै सो आइ॥ १४२॥

---

(१३) परेवा खंड।

कै सिव-साज निपुंसक चारी, जिन्ह सों आहि सौं चित्र चिन्हारी।
बेगि चलाए चारिहु ओरा, ढूँढ़न चले सूर ससि जोरा॥
औ समुझाइ कीन्ह पुनि बाता, जानत अहौं जाहि मन राता।
ताकर चाह कहै जो आई, जो माँगहि सो देउँ बँधाई॥
चारौ चले चारि दिस भए, आपु आपु कहँ ढूँढन गए।
जल थल सायर मेरु सुमेरा, रन बन पुर पाटन सब हेरा॥
जहँ तहँ भवहिँ[3] गहैं बैरागा, दहु इन महँ कोइ होइ सुभागा।

१—शायद, कदाचित्। २—सम्मुख प्रगट। ३—भ्रमण करें।

बन घन गिरि सायर पटन, जहाँ सुनहिँ नर नाम।
फिरि फिरि हेरहिँ रैन दिन, छिन न लेहिँ बिसराम ॥ १४३ ॥

तिन्ह महँ अहा जो नाम परेवा, हिएँ सँवरि चित्रावलि सेवा।
उत्तर दिसा दीप अति भला, धौलागिरि पर्वत कहँ चला ॥
प्रथमहिँ (क) नगर कोट कर फेरी, काशमीर पुनि तिब्बत हेरी।
हरद्वार गै गंग अन्हावा, माँगि हीँछा सिंभु मनावा ॥
सिरीनगर गढ़ देखि कुमाऊँ, खसिया लोग बसहिँ तेहि गाऊँ।
पुनि बदरी केदार सिधारा, ढूँढा फिरि फिरि सकल पहारा ॥
दुरगम देखि मगन कर देसा, चला ताकि नैपाल नरेसा।

बांक कोट बसगित बहुत, औ चारिहुँ दिसि ताल।
अमर पुरी जानहुँ बसी, नाउ धरा नैपाल ॥ १४४ ॥

अतिहि अपूरब ताल सुहावा, इसिकंदर जुलकरन खनावा।
घाट बँधाए गच चिकनाई, चहुँ दिसि फेर आरसी[1] लाई ॥
तिरहिँ[2] होइ पानी कर धोखा, देखि पिआस पाव संतोखा।
पुनि दुइ नदी सुहावनि बहीं, उत्तम बेदब्यास जस कही ॥
नागमती अहि मुख ते आई, बागमती नाहरमुख पाई।
तीरथ जानि जगत चलि आवा, अंग धोई सब पाप नसावा ॥
बारह मास पटन पुनि घिरी, बरहौ मास जातरा भिरी।

नर नारि सुंदर सबै, ससि मुख अधर रसाल।
नैन परेवा थकित रह, देखि नगर नैपाल ॥ १४५ ॥

घर घर नगर लीन्ह तहँ फेरी, राउ रंक देखे तहँ हेरी।
रूप सरूप लोग सब आहा, सो न मिलै जा कहँ चित चाहा ॥
जहँ न होइ सो प्रान पियारा, बसत देस सब जानु उजारा।

(क) दूर नाहिं जेहि होइ चिन्हाईं। गा सुमेरु पुनि तपनि हेराई—पाठा०।

१—सीसाबन्दी, सीढ़ी। २—डाँड़े। किनारे।

चला नगर तजि परबत मोटा, परी दिष्टि एक कंचन कोटा ॥
हीरा रतन पदारथ मोती, जगमगाइ सब मानिक जोती।
कहेसि जाइ देखौं एहि ठाऊँ, लागत अतिहि सुहावन गाऊँ॥
हियेँ चाउ भइ पाव न लावा, जोगी जाइ न नगर नियरावा।
आइ सींव[1] दिन नियर भो(क), लीन्ह अतीथ बोलाइ।
धरमसाल जहँ हुत रचा, तहँ ले गए लिवाइ॥ १४६॥
गै जोगी तहँ देखै काहा, अतिथि सहस एक बैठे आहा।
ठाढ़े सबै गाउ औ राना, सेवा करहिँ जैस मन माना॥
भाँति भाँति पकवान जेँवावहिँ, औ अपने कर पान खियावहिँ।
जो इच्छा मन माँगै कोई, तेगिहि आन पुरावैँ सोई॥
देखि अतीथ सबै रहँसाए[2], सेवा कहँ चलि आगे आए।
आदर सहित आनि बैसारा, पहिलेँ ले जल पांव पखारा॥
ता पाछेँ लाए पकवाना, जेँउ गोसाईँ जो मन माना।
जोगी कछु न जेँवई, पूछेँ कहे न बैन॥
चरचै[3] आनन चहूँ दिस, कीन्हें चंचल नैन॥ १४७॥
जोगि न जेँवा रहे जेँवाई, काहू कहा कुँअर पहँ जाई।
धरमसाल एक जोगी आवा, चित चंचल बैराग जनावा॥
नहिँ जानहिँ दुहुँ का चित जानी, अन्न न खाइ पियै नहि पानी।
पूँछे कहे न एकौ बाता, पियर बदन जस काहुक राता[4]॥
चंचल नैन चहूँ दिस हेरा, चरचै पुनि आनन सब केरा॥
पलक न लाउ जानु नहि सोवा, ढूँढत फिरै जानु कछु खोवा।
धरमसाल की नीत न होई, भूँखा जाइ इहां हुत[5] कोई॥
भइ आयसु ऐसी कहा, बेगिहि आनहु सोइ।
मैं चूक्यौं सेवा कछू, तातेँ रिसि जिय होइ॥ १४८॥
कुँअर पास तब जोगी आना, जोगी कुँअर देखि पहिचाना।

१—सीमा, सिवान। २—आनंद हुए। ३—जांचता था। ४—अनुरक्त। ५—से।
(क) आइ सींव बैठेहू नियर—पाठा०।

चित रहसा जानहुँ निधि पाई, कंथा महँ जोगी न समाई।
पीत बरन जु अहा भा राता, अति हुलास कंपेउ सब गाता॥
देखि कुँअर आदर बहु कीन्हा, निकट पाट बैठन कहँ दीन्हा।
विनती कीन्ह सुनौ हो देवा, कस न धरम कै मानहु सेवा॥
हम सेवक तुम्ह देव गोसाईं, सेवक हुते चूक बहु ठाईं।
रिस तजि जँवहु जैँवन देवा, होउँ सनाथ आज तुम्ह सेवा॥

कहेसि कुँअर सुनु धरम तरु, अस लगेउ तुअ भाग।
जरि पताल पालो सरग, हौंछा फल तेहि लाग॥ १४९॥

जा दिन तैं हम गुरू बिछोवा, अन्न न जैँवा नींद न सोवा।
भूख नाहिं औ नाहिं पियासा, नाँउ अधार रहइ घट साँसा॥
दक्खिन देस जान जिन्ह देखा, रूपनगर कबिलास बिसेखा।
बसे गुरू तेहि नगर सोहावा, चेला देस बिदेस फिरावा॥
जोग अगिनि जब हिए प्रचारी[१], पल महँ कीन्ह भसम रिसि जारी।
काया जोग अहै रिसि रोगू, जो रिसि करै सो नासै जोगू।
कुँअर कहा कस देस तुम्हारा, औ को देस-बसावनहारा[२]॥

मो सौं देस बखान करु, कैस नगर कस भूप।
कौन लोग तहवाँ बसैं, पुनि गुन कौन अनूप॥ १५०॥

जोगी कथा कहन अनुसारी, सुनहु कुँअर यह बात रसारी[३]।
रूपनगर सो उत्तिम देसा, जनु कबिलास आइ भुइँ बैसा[४]॥
(क) धन सो नग्र धन उत्तिम देसा, चित्रसेन जहँ राउ नरेसा।
ऊँच नीच घर ऊँच उँचाए, चित्र कटाउ अनेक बनाए॥
राउ रंक घर जानि न जाई, एक ते एक चाह अछवाई।
बेल चँबेली कुंद नेवारी, घर घर आँगन फुलि[५] फुलवारी॥
लीपे चंदन मेद अवासा[६], भीत बैठि लेहिं अलि बासा।

१—परचाया, सुलगाया। २—राजा। ३—रसीली। ४—बैठा।
(क) यह उर्दू की प्रति में नहीं है। ५—फूली हुई। ६—आवास, घर।

मृगमद चोवा कुमकुमा, खोरि खोरि महकाइ।
सुर नर मुनि गंधरब सब, रहे सुबास लुभाइ ॥ १५१ ॥

चित्रसेन अति राउ भुवारा, जस रवि तपै तेज मनियारा[1]।
जेहि घर विषम दिष्टि परि राई, बैरी तम जिमि जाइ बिलाई ॥
बड़ परताप अखंडित राजू, अगनित हस्ति घोर दल साजू।
गुन विद्या सरि भोज न पावा, पँडितन्ह हियेँ हेत बहु लावा ॥
दुखी न कोऊ सब सुख राता, जहँ तहँ चलै धरम की बाता।
सब सुखिया कोउ दुःख न जाना, ढूँढत फिरहिँ लेइ को दाना ॥
देस देस के राजा आवहिँ, ठाढ़ तँवाहि[2] बार[3] नहिँ पावहिँ।

महथ[4] गरब अति मान तहँ, रहै न एकौ अंक।
रूप नगर की खोरि महं, राउ होहिँ सब रंक ॥ १५२ ॥

तेहि घर पुनि चित्रावलि बारी, मात पिता की प्रान-पियारी।
रूप सरूप बरनि नहि जाई, तीनिहुं लोक न उपमा पाई ॥
दिनकर दिन पावै नहि जोगा, इन्द्र लजाइ देखि मुख ओरा।
अमरकोष गीता पुनि जाना, चौदस-विद्या केर निधाना।
संतति आन न तेहि घर आवा, वाही एक त सब चित लावा ॥
भौंह चढ़ाइ जो कबहुँ रिसाई, मात पिता कर जिउ निसराई।
औ जो चाह करै पुनि सोई, लेन देन कछु बरज न कोई ॥

दखिन दिसा पुनि नगर के, सरवर एक खनाइ।
सखिन साथ चित्रावली, तहँ नित जाइ नहाइ ॥ १५३ ॥

कहा सराहौं सरवर तीरा, पानि मोती तहँ काँकर हीरा।
अति औगाह[5] थाह नहिँ पाई, विमल नीर जहँ पुहुमि देखाई ॥
अति अमोघ औ अति विस्तारा, सूझ न जाइ वारहु त पारा।

१—मनिवाला। २—प्रतीक्षा करैं, अगोरैं। ३—बार = गुजर = प्रवेश।
४—महत् = बड़ा। ५—अवगाध = अवगाह = गहिरा।

घाट बँधाए कंचन ईँटा, सरग जाइ जनु लाग्यो भीटा ॥
ऊपर ताल पानि जहँ ताईँ, ठाँव ठाँव चौखंडि बनाईँ।
औ जहँ तहँ चौरा कै लीन्हेँ, निसि दिन रहहिँ बिछावन कीन्हेँ ॥
जहाँ एक छिन करै निवासा, सोई ठाँव होइ कविलासा।
सुख समूह सरवर सोई, जग दूसर कोउ नाहि।
मानुष कर का पूछिये, देवता देखि लोभाहिँ ॥ १५४ ॥
भीतर सरवर पुरइन पूरी, देखत जाहिँ होइ दुख दूरी।
फूले कँवल सेत औ राते, अलि मकरंद पियहिँ रस माते ॥
बासर पदुम कुमुद रह फूला, सब निसि नखत चाँद रह भूला।
तोरि कँवल केसर झहराहीँ[1], केसरि बास आव जल माहीँ ॥
हंस झुण्ड कुरिलहिँ[2] चहु ओरा, चकइ चकवा पौरहिँ जोरा।
संवरत ताहि सिरायो[3] हीया, चातक आइ पानि सो पीया ॥
औ जिन पंछी जलके आए, केलि करत अति लाग सोहाए।
रहसहिँ कीड़ा वृन्द बस, भौंर कँवल (क) फहराहिँ।
निसि दिन होहिँ अनंद तहँ, देखत नैन सिराहिँ ॥ १५५ ॥
सरवर तीर पछिम दिसि जहाँ, चित्रावलि की बारी तहाँ।
सीतल सघन सुहावन छाहीँ, सूर किरिन (ख) तहँ सँचरै नाहीँ ॥
मंजुल डार पात अति हरे, औ तहँ रहहिँ सदा फर फरे।
तुरँज जँभीरी अति बहुताई, नेबू डारन गलगल जाई ॥
अमिरित-फर औ दाड़िम दाखा, संतति जियँ निमिष जो चाखा।
नरियर और सोपारी लाई, कटहर बड़हर कोऊ न खाई ॥
आँब जमुनि ले एक दिसि लाए, बर पीपर तहँ गनत न आए।
मूर सजीवन कलपतरु, फल अमिरित मधु पान।
देउ दइत तेहि लगि भजहिँ, देखत पाइय प्रान ॥ १५६ ॥

१—खेलते हैं। २—गिरना। ३—ठंढा हुआ।

(क) बिकसाहिँ पाठा०। (ख) तरनि किरनि... पाठा०।

कोकिल निकर अमिरित बोलहिँ, कुंज कुंज गुंजत बन डोलहिँ ॥
सारी सुआ पढ़ैं बहु भाखा, कुरलहिँ बैठि बैठि तरु साखा।
पवई आपन आपन जोगी, छकी फिरहि कुरलहिँ चहुँ ओरी॥
खंजन जहँ तहँ फरकि देखावैँ, दहिअल मधुर बचन अति भावैँ[1]
मोर मोरनी निरतहिँ बहुताई, ठौर ठौर छवि बहुत सोहाई॥
चलहि तरहिँ तहँ ठमुकि परेवा, पंडुक बोलहि मृदु सुख-देवा।
बहु करनास[2] रहहिँ तेहि पासा, देखि सो संग भाग जेहि बासा[3] (क) ॥
भंगराज औ भृङ्गी, हारिल चात्रिक जूह।
निसि बासर तेहि बागि महँ, कुरलहिँ पंछि समूह॥ १५७॥
औ पुनि रहै माँझ जहँ बागी, चित्रावलि लाई फुलवारी।
सोनजरद नागेसर फूले, देखि सुदरसन दिष्ट जो भूले॥
जाही जूही अति बहुताई, अनबन भाँति सेवती लाई।
बनबेला सतवर्ग चँबेली रायबेल फूली सुखबेली॥
करना केतकि बास नेवारी, चंपकली जनु कुंदि उतारी।
कदम गुलाब लाग बहु भाँती, औ बसाहि बकुचन की पाँती॥
मौलसिरी फूली औ मूँदी, जनु सिंगार हरावलि गूँदी।
पौन बसेरा लेहि निसि, तेहि फुलवारी पास।
भोर भए जग प्रगटइ, तिन्ह फूलन्ह की बास॥ १५८॥
ललित लवंग लता जहँ फूली, भौंर भौंरि कुसुम तेहि(ख) भूली।
नगर नगर तहँ डगरैं जूही, गंधराज फूलहिँ संबूही॥
कस्तूरी सुगंध बिगसाहीँ, ठौर ठौर सो अधिक बसाहीँ।
भुइँचंपा फूली बहु रंगा, मानहु दरसा रूप अनंगा॥
सूरज[4] भाँति भाँति अति राते, देखत बनै बरनि नहिँ जाते।
उड़हिँ पराग भौंर लपटाहीँ, जनु बिभूति जोगिनि लपटाहीं॥
भरकंडी[5] भौंरन संग खेली, जोगिन संग लागि जनु चेली।

१—भ्रमैं। २—नीलकंठ। ३—एक शिकारी चिड़िया, जुर्रा। (क) बहुक चास रहहिँ तेहि वासें, देखि सो सकहिं भाग जेहि पासैँ—पाठा०। ४—सूर्य्यमुखी (ख) रस। ५—एक कीड़ा।

केलि कदम नवमल्लिका, फुल चंपा सुरतान।
छ ऋतु बारह मास तहँ, ऋतु बसंत अस्थान ॥ १५९ ॥

औ पुनि जहाँ माँझ[1] फुलवारी, तहँ चित्रावलि की चित सारी ॥
चंदन मेद कपूर मिलावा, इन्ह तिहुँ मिलि कै कीन्ह गिलावा।
हीरा ईंट लगाइ उँचाई[2], देखत बनै बरनि नहिँ जाई ॥
चुनी चूरि[2] कै कीन्हो खोहा, मोती चूरि गच्च जग-मोहा ॥
अति निरमल जस दरपन कीन्हा, तहाँ जाइ पुनि आपु न चीन्हा।
मँदिर एक तहँ चारि दुआरी, नगिन जरी पुनि लागु केवारी ॥
कनक खंभ तहँ चारि बनाए, हीरा[3] रतन पदारथ लाए।

ठौर ठौर सब नग जरित, अस होइ रहेउ अँजोर।
जहँ न रैनि दिन जानिए, औ न साँझ नहिँ भोर ॥ १६० ॥

तेहि महँ चित्रावलि गुन ग्यानी, आपुन चित्र लिखै अस जानी।
जौ लौं सखी दरस नहिँ पावहिँ, भोरहिँ आइ सीस तेहि नावहिँ ॥
और जो चित्र अहहिँ तेहि माहीँ, सो चित्रावलि की परछाँहीँ।
अस विचित्र केहि लावौं जोरी, अस्तुति जोग जीभ नहिँ मोरी ॥
वही रंग अपने रँग माहीँ, ओहि के रंग और कोउ नाहीँ।
सौंह न जाइ चित्र मुख हेरा, धन सो चित्र औ धन सो चितेरा ॥
मानुष कहा सो देखै पावैँ, देवता जाहिँ जोहारे[4] आवैँ।

कोटि चित्र चितसारि महँ, देखत एकौ नाहिँ।
जौं दिनकर उद्दोत हो, नषत सबै छिपि जाहिँ ॥ १६१ ॥

लखो लिलाट दूजि कर चंदा, दूजि छाड़ि जग वो कहँ बंदा।
भौंह धनुष बरुनीँ विषबाना, देखि मदन धनु गहत लजाना ॥
बरुनी बान गड़े जेहि हीये, बहुरि न निकसै जब लहुँ जीये।

१—मध्य। २—उँचाना = उठाया, बनाया। २—पीस कर, चूर्ण करके।
३—मानिक—पाठा०। ४—नमस्कार करने के लिये।

लोचन बिमल जानु सम जोवा, निमिष जो देख जनम भर रोवा ॥
अधर सुरँग जनु खाए तँबोला. अबहीँ जनु चाहै हँसि बोला।
लंक छीन जेहि भृंग लजाहीँ, कोउ कह आहि कोऊ कह नाहीँ ॥
फीली चरन सराहौं काहा. अबहीँ रहसि चलै जनु चाहा ॥

गुपुत रहै चित मारि महँ, जग जानै सब कोइ।
सपने जो कोइ देखई. सौंतुक जोगी होइ ॥ १६२ ॥

सुनी कुँअर जो चित्र की बाता. हिए हुलास कँपेउ सब गाता।
सचक भयौ चित औ मन गुना, सपन जो देखा सौंतुक सुना ॥
सोवत भाग अहे सो जागे, श्रवन भए सुनि जाहि सभागे।
मोहँ परतीति करम की नाहीं. कहत आहि कोउ सपने माहीँ ॥
जौ निहचय हौं सोअत अहौं, जनि जगाउ विधि हाहा कहौं।
कौन घरी यह आइ सुभागी, देखेउँ सोइ सुनेउँ सो जागी।
कौन बार यह आइ सरेखा. सरवन सुना नैनन जो देखा (क)॥

यहि अंतर जनु बिरह अहि, बंधन देई छुड़ाइ।
बिथुरि गयो बिष सकल तन. लहरि चढ़ी जनु आइ ॥ १६३ ॥

गुपत पीर परगट पुनि भई. सुलगत आगि फूँकि जनु दई।
उठी आगि सिर पालहु जरा, धाइ कुँअर जोगी पग परा ॥
रहि न सकेउ हिय गह भरि[१] रोआ. नैन नीर जोगी पग धोआ।
बिरह अनल जल मैं चखु ढरा, लोचन नीर जोगि तब जरा ॥
दुहुँ हाथ गहि सीस उठावा, पूँछन बात बकुर[२] नहिँ आवा।
साँप डसा जनु बिष छहराना[३], घूमत[४] रहै सुनै नहिँ काना ॥
दिष्टी भुअँग बंद जनु कीन्हीँ, तै पढ़ि मंत्र खोलि जनु दीन्हीँ।

तब जोगी कर नीर लै, मुख छिरकेसि करि हेत[५]।
पहर एक बीते भयौ, बहुरि कुँअर चित चेत ॥ १६४ ॥

(क)—यह उर्दू प्रति नहीं है। १—शक्ति भर, जहाँ तक हो सके। २—शब्द। ३—फैला। ४—चक्कर खाता, मत्त। ५—हिताई।

बहुरि जो कुँअरउ सोइ कै जागा(क), बैठ सँभारि गहिस सिर पागा।
तौ पुनि कहिस ऊभ लै साँसा, ए देनिहार निरासहि आसा॥
वोह सो चित्र जो मोहि दुख दीन्हा, बरबस जीउ मोर हरि लीन्हा।
जीउ लेइ तन दूरइ डारा, हौं तो वही चित्र कर मारा॥
वही चित्र मैं सपने दीठा, चित्त माँहिँ वहि चित्र बईठा।
वही चित्र बिनु जीउ बिहूना[1], जिउ हरि लीन्ह कीन्ह तन सूना॥
वही चित्र जो नैन समाना, सौं तुक सपन आइ नहिँ जाना।

वही चित्र हम हिये महँ, जो तैँ कीन्ह बखान।
हौं अब रहा सरीर होइ, वह भौ जीउ समान॥ १६५॥

जेहि दिन ते नैनन भा लाहा, बहुरि न पायौं कतहूँ चाहा।
पंथ न पावउँ केहि दिसि जाऊँ, पूछौं काहि न जानउँ नाऊँ॥
मैं निरास भौ बिनु जिउ आहा, आस दई तैँ जिउ घट बाहा[2]।
आजु आस तैँ पुरएसि मोरी, तन मन धन न्योछावरि तोरी॥
अब कहु पंथ गवन जेहि पावौं, चलउँ बेगि खिन विलँब न लावौं।
तुम्ह जहँ चहहु सिधारहु तहाँ, मोहि अब कहहु पंथ सो कहाँ॥
कै अब जाइ चित्र सो पावौं, कै अपान वहि पंथ लगावौं।

जिउ चितसारी महँ रहा देह रही हम साथ।
देहु सोई उपदेस मोहिँ, जेहि जिउ आवै हाथ॥ १६६॥

जोगी कहा कुँअर सुनु बाता, अबहीँ देखि चित्र तूँ राता।
वह सो चित्र तैँ देखा नाहीँ, जाकर पेस चित्र परछाहीँ॥
चित्र देखि तैँ चित्रै जाना, ता महँ अहा सो नहिँ पहिचाना॥
चित्रहि महँ सो आहि चितेरा, निर्मल दिष्टि पाउ सो हेरा॥
जैसेँ बूँद माँह दधि होई, गुरु लखाव तौ जानै कोई।
जा कहँ गुरू न पंथ देखावा, सो अंधा चारिहुँ दिसि धावा॥
मूरख सो जो चित्र मन लावै, सेमर सुआ जैस पछतावै[3]॥

(क) फरकि कुँअर सोइ अस जागा। पाठ। १-विकल। यह पद उर्दू की प्रति मे नहीं है। २—डाला। ३—मि० सेमर सेइ सुआ पछताना। मारिसि ठोर भुआ उधिराना॥

यह मूरति औ चित्र जग , जो बिधि सरा सुजान ।
परगट देखहि नैन यह , गुपुत जो पूजहि आन ॥ १६७ ॥

अति सरूप चित्रावलि बारी , जनु बिधिनै कर चित्र सँवारी ।
चित्रहिँ कहाँ जोति छबि ओती , वह सजीव यह बिनु जिउ जोती ॥
चित्र अबोल होइ जनु गूँगा , वोहि क बोल जस मानिक मूँगा ।
चित्र कटाच्छ भाव बिनु नैना , वोहि क नैन सब मोहन सैना[1] ॥
चित्र अडोल न डोल डोलावा . वोहि गौनत जनु हंस सोहावा ।
सायक बरुनि भौंह धनु ताना , सौंरन जाहि लागु उर बाना ॥
चंद-बदन तन चंपक सारी अलि सँग फिरहिँ जानि फुलवारी ।
काहि लगावौं उपम तेहि , अच्छर पूज न छाँहिँ ।
सुर नर मुनि गन पच्छि मरहिँ . दरसन पावहिँ नाहिँ ॥ १६८ ॥

बदन जोति केहि उपमा लावौं , ससिहर पटतर[2] देत लजावौं ।
ससि कलंक पुनि खंडित होई , है निकलंक सँपूरन सोई ।
ससि बंदी जब दुजिक[3] दीसा , ओहि बंदी[4] नित देहिँ असीसा ॥
जो मुख खोलि करै उजियारा , नपत छपाहिँ होइ ससि तारा ॥
नैन कुरंग कहे नहि पारौं , खंजन मीन ताहि पर वारौं ।
तीन रंग जा महँ नित लहिये . तेहि कुरंग[5] कहुं कैसे कहिये ॥
जाकहँ नैन एको छन हेरा , सो विष बान क भयो अहेरा ।
ऐसन चित्र अहेरिया , मारि न खोज करेइ ।
जेहि उर लागे बान सो , रहसि रहसि जिउ देइ ॥ १६९ ॥

औ तेहि संग अनेग सहेली , सबै सरूप अनूप नवेली ।
उन्हक रूप बिधि अपुरुब कीन्हा , करि करि चित्र जानु जिउ दीन्हा ॥
कोउ कुमुदिनि कोउ पंकज-कली , एकतेँ एक चाहे अति भली ।
अबहीँ सबै कली मुँह-मूँदी , भौंर चरन तेँ बेलिन खूँदी ॥
सब चित्रिनि औ पदुमिनि जाती , सेवा करत रहत दिन राती ।

१—सयन = कटाक्ष । २—उपमा । ३—मुसलमान लोग द्वितीया के चाँद को देख कर बन्दना करते हैं । रमजान के महीने में मास भर रोजा रह कर द्वितीया के दिन ईद मानते हैं । ४—बन्दीजन । ५ कुत्सित रंग का = बदरंग ।

अग्या होइ करहिँ पै सोई . मेटि न सकैँ रजायसु कोई ॥
औ जिहि ठाँव करहिँ बिसरामा , जपत रहहिँ चित्रावलि नामा ।

निसि बासर ठाढ़ी रहहिँ , लीन्हें आपन साज ।
जो पठवहिँ सिष एक कहँ , धाइ करहिँ दस काज ॥ १७० ॥

पुनि सो चित्र लिखै भल जाना , उनसौँ जगत न कोऊ सयाना ।
आपन चित्र अपु पै लीखा , और को लिखै जान ? नहिँ सीखा ॥
जगत चितेर रहे पचि हारी , ओकर चित्र न सकैँ सँवारी ।
जो कोई आपन चित आनै , अंतरजामी तबहीँ जानै[1] ॥
आपन चित्र छीन कै लेई , औ तेहिँ देस निकारा देई ।
आपन चित्र जाहि लिखि दीन्हा . ते सो घालि हिये मो लीन्हा ॥

एहि डर कोऊ न बीसरैँ , अह-निसि आठौ जाम ।
लिये रजायसु नित रहहिँ . जपत फिरहिँ सो नाम ॥ १७१ ॥

औ तेहिँ संग निपुंसक जाती , पठवै जहाँ जाहिँ लै पाती ।
गुन विद्या सब जाना बूझा , निरमल दिष्टि पंथ भल सूझा ॥
अन्न न खाहिँ पानि नहिँ पीयहिँ , नाउँ अधार रैनि दिन जीयहिँ ।
काम क्रोध तिसना मन माया , पंचभूत सौँ तिन्ह की काया ॥
अग्या काज विलंब न लावा . करहिँ सोई जेहिँ दोष न पावा ।
सब की बात जनावहिँ जाई . अग्या होई कहहिँ सो आई ॥
अग्या बिना पैग जो धरहीँ , अनल-तेज-सिखा लहि जरहीँ ।

दूरि रहहिँ तेहिँ गनति नहिँ , निकट रहहिँ ते चारि ।
रचना सिरजनहार की , नावै पुरुष न नारि ॥ १७२ ॥

हौं तेहि माहँ परेवा नाऊँ . सेव करौं चित्रावलि ठाऊँ ।
वह सो गुरु हौं ओकर चेला , वहिक नाउ हम मुँदरा मेला ॥
वही पंथ मोहि दीन्ह देखाई , वेहि के वचन सिद्धि मैँ पाई ।

---

[1] دل بدست آور که حج اکبر است * از هزاراں کعبۂ یکدل بہتر است — मि०

औ सुमिरन दीन्हो वोहि केरी . वोहि क नाउँ सुमिरौं हरि फेरी ॥
भूख नाहिँ औ नींद पियासा , चित्रिनि सुरति ध्यान घट आसा ।
भा अग्या करि साज महेसू , दिन दस फिरहुँ देस परदेसू ॥
जौ लगु फिरत होइ नहिँ रोगी , तौ लगि सिद्ध होइ नहिँ जोगी ।
भसम अँग पग पांवरी , सीस कलपि करि केस ।
कंथ पहिरि लै दंड कर , देखन निसरयौं देस ॥ १७३ ॥
सुनत कुअँर जोगी के बैना , उघरे दोऊ हिये के नैना ।
मन महँ कहेसि सांचु यह साजा . वह सो कौन जाकर उपराजा ॥
जेहिक चित्र अस जिउ लेनिहारा . दुहुँ[1] कस होइहि सिरजनहारा ।
साजा होई मेटि पुनि जाई , सिंभू[2] सरीर न कोऊ मिटाई ॥
जो न आपु आपहि पहिचाना . आन क पेम कहाँ हुत जाना ।
जैसे कुबुध जानि कै देवा , बहुत करहिँ पाहन की सेवा[3] ॥
पाहन पूजि सिद्धि किन पाई , से मर सेइ सुआ पछिताई ।
कस न बूझि खोजों सोई , जेहिक चित्र सब कीन्ह ।
जीउ देई जो चाहई , लेइ जो चाहै लीन्ह ॥ १७४ ॥
कुअँर कहा अब सुनहु परेवा . मैँ तोर सीष[4] मोर तैँ देवा ।
मैँ तजि पंथ जात बौराना , तैँ गहि बाँह पंथ पर आना ॥
बूडत मोर नाउ मँझनीरा . तूँ खेवक होइ लाइसि तीरा ।
सोअत हौं जो अहा सो जागा , मन तजि चित्र चितेरहिँ लागा ॥
चित्र देखि न चितेरा जाना . बिनु चितेर अब दिष्टि न आना ।
अब फिरि कहु चित्रावलि बाता , जेहि के रूप आजु मन राता ॥
सुनतहि नाम दूरि भइ दाहा , दहुँ मुख देखत होइहै काहा ।
मरत जियाए जोई कहि , फिरि फिरि कहु सो बात ।
सुनिबे कहँ अमिरित कथा , श्रवन भए सब गात ॥ १७५ ॥

१—कौन जानता है । २—स्वयंभू = जो बिना किसी के बनाये बना हो ।
३—मि० प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनाम् । ४—शिष्य, चेला ।

जोगी सँवरि कहै पुनि बाता, वह चित्रावलि जेहि रँगराता।
बदन मयंक मलयगिरि[1] अंगा, चंदन वास फिरहिँ अलि संगा॥
जो अलि अंग वास वह पाई, सो तजि आन फूल नहिँ जाई।
बहुतन्ह सिर करवट गहि सारा, हिंछा करि मधुकर औतारा॥
बहुत नाउँ सुनि जोगी भए, मूँड मुँडाइ देसंतर गए।
ससि सूरज औ नषतन पांती, बरने होहिँ दिवस औ राती॥
भूषन सोभ पाव तेहि अंगा, तातै निसि दिन छाड़ न संगा।

चाँद न सरवर पावई, रूप न पूजै भानु।
अब सुनु तन मन कान दै, नख सिख करौं बखानु॥ १७६॥

प्रथमहिँ कहौं केस की सोभा, पन्नग जनौं मलयगिरि लोभा।
दीरघ विमल पीठि पर परे, लहर लेहिँ विषधर बिषभरे॥
कच अहि डसा जनम नहिँ जागा, मंत्र न मानै मूरि न लागा।
बिथुरी अलक भुअंगिनि कारी, कै जनु अलि लुबुधे फुलवारी॥
कै जनु बदन तरनि जौ तपा, सिमिटि सुमेरु पाछु तम छुपा।
किमि कच बरनौं राजकुमारा, मति न समाइ देखि अँधियारा॥
मृग-मदवास आव तेहि केसा, पैान जाइ लइ देस बिदेसा।

सिरजी तब बिधि स्यामता, जब जग सिरजै लीन्ह।
तै कच सिरजे सार लै, सेष बाँटि कै दीन्ह॥ १७७॥

सीस सिँगार माँग बिधि कीन्ही, तातैँ ठाउँ माँग पर दीन्ही।
सूर किरन करि बालहि धारा, स्याम रैनि कीन्ही दुइ फारा॥
पंथ अकास विकट जग जाना, का न जाइ तेहि पंथ भुलाना।
तहाँ देखि अलकावरि[2] फाँसा, पंथिन्ह परा जीउ कर साँसा॥
जिउ परतेजि[3] चलहिँ तेहि माहीँ, और बाट नहिँ केहि दिसि जाहीँ।
बेनी सीस मलयगिरि सीसा, माँग मोति मनि माथैँ दीसा।
सूर समान कीन्ह बिधि दीया, देखि तिमिर कर फाट्यो हीया॥

१—मलयागिरि, चंदन। २—अलकावली। ३—सं० परित्यज्य = त्यागके।

स्याम रैनि महँ दीप सम . जेहि अँजोर जग होइ ।
अछज भुअँगम माँहि बसि . दिया मलीन न होइ ॥ १७८ ॥

पुनि लिलाट जस दूजि क चंदा , दूजि छाड़ि जग वो कहँ बंदा ।
पटतर दूजि होति. जौ होती , दूजि माँह पुन्यो कै जोती ॥
भाग भरा अस दिपै लिलारा , तीनहुँ भुवन होइ उजियारा ।
होइ मयंक[1] खीन जेहि गैसा . सो लिलाट कामिनि पहँ दीसा ॥
कुंदन तिलक सोभ कस पावा , मनहुँ दुइज माँ जीउ मिलावा ।
मुकुता पाँति चहुँ दिसि पाई . मानहुँ मिली किरिनिका[2] आई ॥
जाहि लिलाट भाग मनि होई , अस सँजोग सुभ देखै सोई ।

सुभ सँजोग वहि एक छिन जा कहँ सनमुख होइ ।
जौ जग लागै गरह जिमि , बार न बाँके कोइ ॥ १७९ ॥

कुटिल भौंह जानों धनु ताना . इंद्रधनुष तेहि देखि लजाना ।
जानहु काल जगत कहँ कढ़ा . निसि दिन रहै पगच[3] जनु चढ़ा ॥
भौंह फिराइ जाहि तन हेरा , देखन काल होइ तेहि केरा ।
यही धनुष जुध मनमथ लीता , कै परनाम काम तन जीता ॥
भौंह धनुष लखि इंद्र सँकाना , सब जग जीति सरग कहँ नाना[4] ।
कौन सो बली जो न गै मारा , तीनहु लोक एक हुंकारा ॥
ऐस धनुष जग और न दूजा (क) , देवतन्ह आइ बाहुबल पूजा ।

अहिपुर नरपुर जीति कै , सुरपुर जीतो जाइ ।
अब दहु कछू न जानियं . का कहँ धरै चढाइ ॥ १८० ॥

बाँके नैन तीष अति दोऊ , जगत जाहि सर पूजि न कोऊ ।
राते कौंल मधुप तेहि माहीं , कहत लजाउँ तेउ सर नाहीं ॥
कौंल देखि ससिहर कुम्हिलाने , ए ससि संग सदा बिगसाने ।

१—मृगांक, चन्द्रमा । २—कृतिका = कचबचिया । ३—प्रत्य चा ।
४—यह उर्दू की प्रति मे नहीं है । (क) अस धनुधारी और न दूजा । पाठा० ।

स्याम सेत अति दोऊ सोहाए, खंजन जानु सरद रितु आए।
कै दुइ मिरिग लरत सिर नीचे. काजर रेख डोर गहि खीँचे॥
दोउ समुंद्र जनु उठहिँ हलोरा. पल महँ चहत जगत सब बोरा।
तीछे हेर जाहिँ चषु आछेँ. चली मीन जनु आगेँ पाछेँ॥

बर कामिनि चषु मीन सम, निमिष हेर तन जाहि।
बहुरि जनम भरि मीन जिमि. पलक न लागै ताहि॥ १८१॥

बरुनी बान तीख अरु घने. सोई जानु जाहि उर हने।
मद सिराय ते भाल सँवारे, जाके हने सबै मतवारे॥
तापर विष काजर सोँ बाँधा. सोई मरै जाहि तन साँधा।
लाग न बरुनि बान जेहि हीया, सो जग माँह अमिरथा जीया॥
जेते अहैँ जीव जग माहीँ, साधन जाइ बान सो खाहीँ।
जगत आइ होइ रहा निसाना, मकु हौँ सौँह मारि तेहि बाना॥
गलि गलि हाड़ रहे जो आई, बेंठ जो लागि जाइ तो जाई।

एक मूँठ[1] के छाड़ते, लागे बान अलेख।
जग महँ ऐसन पारधी[2], दूसर काहु न देख॥ १८२॥

सुभग सरूप सुरंग अमोला, जनु नारँग बरनारि कपोला।
ईँगुर केसर जानु पिसाए, दोऊ मिलाइ कपोल बनाए॥
और सो देखि कपोल लुनाई, मती हीन कछु बरनि न जाई।
तेहि पर तिल सो देइ अस सोभा, मधुकर जानु पुहुप पर लोभा॥
कै बिधि चित्र करन कर धरे (क), करत उरेह बूँद खसि परे।
बदन सिँगार सोभ जो पावा, रहेउ न दिन पुनि सो न उचावा॥
वह तिल जाहि दिष्टि तल परा, भयो स्यामतस तिल तिल जरा।

नहि चीन्हत कोउ काहु कहँ, जो जग माहिँ न होनि।
परछाहीँ तिल एक की, सब नैनन्ह महँ जोति॥ १८३॥

---

[1]—जितना एक बार छोड़ा जाय। [2]—तीर चलानेवाला।

(क) कै विचित्र करता-करमरे। पाठा०।

किमि बरनौ नासिका सोहाई, नासिक सुनि मति नियर न जाई।
खरग धार कहि आवै हाँसी, कौन खरग जेहि उपमा नासी॥
तिलक फूल कबिनन्ह चित धरा, उहौ लजाइ पुहुमि खसि परा।
(क) इह रुआँर पुनि कीर कठोरा, उपम देत मन मान न मोरा॥
उह सुर भौन जगत उपराई, ससि सूरज जहँ उदै कराई।
तेहि पर हेरि रहा मति मोरी, उपमा नहिँ केहि लावौं जोरी॥
बेसरि जो पहिरे रहसाई, नग कुंदन छबि पाउ सोहाई।

मुकुता डोलत निरखि मन, सुर नर इहै गुनाहिँ[१]।
कहत सोहागिनि नासिका, तिहुँ पुर पटतर नाहिँ॥ १८४॥

अधर सुधा निधि बरनि न जाई, बरनत मति रसना पनियाई[२]।
छुए न काहु अछूते राखे, प्रेम दिष्टि मुख अजहुँ न चाखे॥
बिद्रुम[३] अति कठोर औ फीके, सुरँग मृदुल दुख दायक जीके।
बिंब अरुन सो सरि न तुलाना, अति लजान बन जाइ दुराना॥
बदन मयंक जगत उँजियारा, अमिरित अधर प्रानदेनिहारा।
का बरनौं का मति भइ मोरी, उत्तम अधम लगाएउँ जोरी॥
ससि अमिरित देवनन्ह कै जूठा, जगत जान यह अधर अनूठा।

लोयन जाहि कटाच्छ सर, मारि प्रान हरि लीन्ह।
अधर बचन तत-खिन दोऊ, अमिय सींचि जिउ दीन्ह॥ १८५॥

दसन जानु हीरा निरमरे, बदन आनि मुख संपुट धरे।
इक इक नग दुहुँ जग कर मोला, जो जिउ देइ कहै सो खोला॥
पान खात कछु भए उघारे, दिष्टि परे मंजुल रतनारे[४]।
जनु दुइ लर मुकुता रँग भरे, मंजन लागि आइ मुहँ धरे[५]॥

क, से ख, तक ७६ प्रति में नहीं है।

१—विचारते हैं। २—पानी आता है। ३—वैदूर्य, मूँगा।
४—मंजन लागि अमी मुह धरे। पाठा०। ५—अमिरित छिये आनि के धरे। पाठा०।

कै देवतन्ह ससि कीन्ह कियारी, अमिरित सानि बारि अनुसारी।
दाड़िम बीज तहाँ लै बोए, रखवारे राखे अहि पोए॥
निसि वासर तै निकट रहाहीँ, मकु सुक पिक खंजन चुनि जाहीँ।
इक दिन विहँसी रहसि कै, जोति गई जग छाइ।
अबहूँ सौंरत वह चमक, चौंधि चौंधि जिय जाइ॥ १८६॥

तेहि भीतर रसना रस भरी, कौंल पाँखुरी अमिरित भरी।
दसन पाँति महँ रही छिपानी, बोलत सो जनु अमिरित बानी॥
बोलत बैन अमी जनु चूआ, सुनत जियै बरषन कर मूआ।
जे मन अहि कुंतल[1] के खाए, बोलि बोलि धन सबै जियाए॥
जाके सवन बचन उन डारा, ताकर बचन जीउ-देनिहारा।
उकतिन[2] बोलत रतन अमोली, आँब चढ़ी जनु कोइल बोली॥
व्याकरनौ जानै संगीता, पिंगल अमर पढ़हि पुनि गीता।
रहहिँ रैनि दिन बाद मह, चित्रिनि चखु औ बैन।
त्यों त्यों रसन जियावई, ज्यों ज्यों मारहिँ नैन॥ १८७॥

आँब सूल[3] सम ठोढ़ी भई, वह आमिल यह अमिरित भई।
तेहि तर गाड़ अपूरब जोवा, पाक आँब जनु अँगुरि टोवा॥
पाका आँब गात पियराना, वह कुमकुम जनु ईंगुर साना।
चिबुक कूप अति नीर गँभीरा, बिंब अधर सँजीव जेहि नीरा॥
अमिरित कुंड अगम औगाहा, जो तहँ परा निकास न चाहा।
ताहि कूप ढिग रहस न जाहीँ, बूड़न कहँ मुनि लाल[4] कराहीँ॥
परहिँ जाइ मन रहइ न देई, कुंतल काँट काढि कै लेई।
नैन पियासे रूप जल, पीवत जेहि न अघाहिँ।
कूप चिबुक जो मन परै, बूडि बूडि रहसाहिँ॥ १८८॥

१—केश, बाल। २—उक्तिन = युक्ति से। ३—नोक।
४—चाउ, इच्छा।

सिंधु सुता सम[1] स्रवन अमोला, जल सुत[2] बचन लागि बिधि खोला।
जे अमोल नग जगत बखाने, नारि स्रवन महँ सबै समाने॥
ग्यान बात बिनु आन न सुना, सुनत मोनि तबहीँ सिर धुना।
निसि दिन मुकुता इहै गुनाहीँ, खंजन झाँकि झाँकि जिमि जाहीँ॥
कंचन खुटिला जा न बखाना, गुरु सिष देइ लाग ससिकाना[3]।
राहु जुद्ध कहँ सपरि निसंका, दुहुँ कर लीन्हे सेलि[3] मयंका॥
सो पुनि सोभै खुभी[4] सोहाई, अबही तरिवन चढा न जाई।

कलभ दसन खँभिया दोऊ, सोऊ पट तर नाहिँ।
एक छिन देखेँ जनम भरि, खुभी रहैँ जिउ माहिँ॥ १८९॥

अब सुनु बरनौं गीँव सुहाई, बिधि कर चाक भँवाइ[5] चढाई।
अँगुरिन बीच रही जो रेखा, सोइ चीन्ह रेखा तहाँ जो देखा॥
केलि समै कँातर[6] की गीसा, तन पिन चलो लाइ भुइँ सीसा।
नाचत मोर गीँव सर जोवा, तबहीँ म्रास पाइ धरि रोवा॥
संख न सम भा साँझ सँकारा, तातेँ जहँ तहँ करैँ पुकारा।
तबही छरन[7] जान अपछरा, भूषन लाग न बाँधे छरा॥
वोहीँ कंठ जानु जिन्ह दीठी, अमिरित चाहि न पूरै मीठी।

सोहत हाँस[8] जराउ गर, बदन हेठ निकलंक।
सर[9] न मयंक मूर जनु, दुरत राहु कै संक॥ १९०॥

दीरघ बाहु कलाई लोनी, अति सुंदर जग भई न होनी।
दुहुँ पौनाल सोऊ सर नाहीँ, तातेँ रंध[10] कलेजे माहीँ।
सुभ्र भुजन पर टाँड[11] सोहाई, टाँड तहाँ छबि पाव सवाई॥
देखि धुनहि गन गंध्रब माथा, एक सो इंद्र वज्र पुनि हाथा।

१—सीप। २—मोती। ३—ढकेल के, धक्का देकर; अथवा खड्ग। ४—खुभी—घुस गई। ५—घुमा कर। ६—कबूतर। ७—छरण = विनाश, हीनता; वा छल। ८—हंसुली, गले का एक आभूषण। ९—बराबरी कर सका। १०—रंध्र—छेद। ११—एक बाहु का आभूषण।

देखि सो मंजुल सुभ्र कलाई, को न गयो बनफलै सिधाई(क)॥
वहि संग देखु जो जुरी हथोरी[1], कौंल पाँखुरी ईँगुर बोरी।
विद्रुम बेलि सो अँगुरी दीसी, वह कठोर यह मूँगफली सी॥
अँगुरिन मुँदरी जरित की, सोह छला प्रति पोर।
अमीकरन नग आँखि जनु, गाँठि कनक के जोर॥ १९१॥
होत उतंग सिहन[2] निरभरे, एक डारि दोइ नारँगि फरे।
कनक कटोरी दुइ गुन भरीँ, संकर पूजि उलटि जनु धरीँ॥
झीने पट महँ झलकन दीसी, जनु भीतर द्वै कँवल कली सी।
मुकुनाहल बिच सोभा कैसी, चकवा छवा बिछुरि जनु बैसी॥
होत उतंग दोऊ अति लोने, जनु द्वै बीर छत्रपति होने।
अबहीँ छत्र सीस नहिँ छाजू, छत्रिन जहाँ तहाँ कर साजू॥
दान दुंद जोरि गुन भरी, दुई जनु डँका[3] उलटि कै धरी।
गढपति हयपति दुरदपति, सुनि कुच कथा अकाथ।
होइ भिखारी सब चहहिँ, जाइ पसारन हाथ॥ १९२॥
रोमावलि अबहीँ उर छीनो, बरनि न सकै दिष्टि मति हीनी॥
संधि सुमेरु लही अहि पोवा, सीतल ठाँव पाइ जनु सोवा।
अमिरित अधर वास सुनि माती, उर जनु चढ़ो पपील क पाँती॥
द्वै नृप साँव लागि रिस बाढ़ी, रतिपति आनि लीक जनु काढ़ी।
सीरत रोमावली सोहाई, हेवर[4] जाय दरलि सी खाई॥
पाँहन हिये जोरि वहि दीसी, होइ लीक वह पाहन की सी।
नीँद न परी जनम भरि जागा, जिन्ह नैनन्ह होइ रही सरागा॥
खैँची लीक हदीस की, विधिना हियेँ विचार।
तिहुँपुर रोमावलि सरी, आन न दूजी नार॥ १९३॥
नाभि कुण्ड पुनि अति गहिराई, जब चित चढ़ै बूड़ि जिउ जाई।
सिंधु भौंर जहँ पानि फिरावा, तहँ परि जनम निकास न पावा॥

१—हथेली। २—फ़ा॰ सीना = छाती। ३—डंका। ४—छाती।
(क) को न कियो बल बली सिहाई। पाठा॰।

बिगसत पंकज कली सोहाई, अजहुँ भौंर बास नहिँ पाई।
छीर सिंधु मथनी जब काढ़ी, नाभि भौंर आही जहँ ठाढ़ी॥
नैनूँ[1] ते कोमल सो ठाऊँ, जीभ कठोर लेउँ का नाऊँ।
रोमावलि सोभा तेहि पासा, नैनूँ ते जनु बारि विकासा[1]॥
जासों ग्यान हाथ भा हीना, जनमत धाइ नार किमि छीना।

नारि पेट जेहि अंत नहि, बारिधि गहिर गँभीर।
नाभिकुंड मन जो परै, बहुरि न निकसै तीर॥ १९४॥

पातर पेट कहै का कोई, जनु बाँधी ईँगुर की लोई[3]।
मनहु महाउर दूध सो पागा, संतत[4] रहै पीठि सों लागा॥
छीर न पिये अतिहि सुकुवारा, कै तँबोल कै फूल अधारा॥
बिनु रस पान आन नहि खाई, सोऊ बिकल करै अधिकाई।
तेहि तर त्रिबली अति सुख देई, गढ़ी बिधाते काम पसेई[5]॥
सोभित तीनौ रेख सोहाई, तीन भुवन नहिँ उपमा पाई।
सिसुता जानि तरुनता मिली, तीनों रेख खाँचि कै चली॥

सिरजन भार नितंब के, मिलत न कीन्ह सँबंधि।
मनु कटि राखे बाँधि कै, त्रिवली बँधन बंधि[6]॥ १९५॥

अति सुकुँवारि लँक पुनि छीनी, दिष्टि न परै बारहु तन्न खीनी।
देखत सकुचै देखनहारा, टूटि न परै दिष्टि के भारा॥
काम कला दुई साँचे भरी, सकल सोहाग जोरि जनु धरी।
बिधिनै तोरि जोरि पुनि लीन्हे, तातेँ नाउ निगम कटि कीन्हे॥
अपने थल भूखे केहरी, कोऊ कहै कटि तिन्ह की हरी।
देखि लंक भृंगी[7] कटि टूटी, भँवति फिरै जनु संपति लूटी॥
तहँ सोहै किंकिनि कटि-कसी, काछे जनु आहै उरबसी॥

१—नवनीत = मक्खन। २—निकला। ३—लौंदा। ४—सतत = नित्य, सदा।
५—पसाकर, सत्त निकाल के। ६—गाँठ। ७—एक कीड़ा, बिलनी।

सोभित किंकिन निकट कटि, मान उपम जी आइ।
हंस-पांति तजि मानसर, परबत बैठे जाइ ॥ १९६ ॥

सुभ्र नितंब नितंबनि केरे, गए हेराइ सोई जनु हेरे।
जनु संगम दुइ परबत अहहीँ, एक बार के बाँधे रहहीँ ॥
तेहि पर कटि सोभित निरमरी, जनु सिंहिनि गिरि ऊपर धरी।
दुइ गिरि सम दोउ मगु जहँ नाहीँ, चिन के चरन चढ़न बिछलाहीँ ॥
मति नितंब बरनत झिझकाई, मति की दिष्टि न आगे जाई।
परगट सो कवि कीन्ह बखाना, गुपत सो अंतरजामी जाना ॥
जहाँ जात मन पिंडुरी काँपी, तहँ की बात रहो सब झांपी।

गुपुत जो रचना बिधि रची, परगट नहिँ होनिहार।
ग्यान तहां नहि संचरै, जानै सिरजनिहार ॥ १९७ ॥

पुनि जंघा अति सुंदर साजी, जुगल जंघ तिहुँ लोक बिराजी।
केरा खंभ कलभ कर हेरी, जंघ निकट ये दोऊ करेरी।
अति सुंदर सम तूल[१] सुहाए, जनु बिधि अपने कर चिकनाए ॥
सुरति करत सुख संपति हरी, मन की दिष्टि थलकि तहँ परी।
गौन समै जनु चमकत चूरा, हंस गयंद गरब धरि चूरा[२] ॥
सीस धुने गज लज्जित भए, हंस मानसर बूड़न गए।
छवाछीन भूषन छबि हरी, पायल आइ पाय लै परी ॥

चकइ जराऊ जेहरी[३], जेहरि जिउ लै जाइ।
सुर नर हैं झाँझर भए, देखि सो झाँझरि[४] पाइ ॥१९८॥

चरन कँवल पर मन बलि गए, जेहि मगु चलै तहां रज भए।
मकु नेहि पंथ गौन पुनि करई, भूलि पाँव इन्ह नैनन धरई ॥
तरवा ऊधरेख[५] सुभ बाँची, सुरनर हियेँ लीक जनु खाँची।

१—सुडौल। २—नाश किया। ३—एक आभूषण। ४—झांझ, एक पैर का आभूषण। ५—ऊर्ध्व रेखा पांव में होना सामुद्रिक में शुभ माना जाता है।

जेहि जेहि पंथ चरन ते चले, केते हिये पाँय तर मले ॥
रकत लाग रह पायन संगा, जानहिँ लोग महाउर रंगा।
चलत चरन भुइँ परै न देहीँ, सुर नर मुनि नैनन पर लेहीँ ॥
अनवट बिछिया अंगुरिन भरे, मैन सोनार रतन नग जरे।
जेहिँ चित चित्रावलि चरन, चित्र किए बिधि आनि।
ते चषु मगु बाहर कियो, हियेँ सरोवर पानि ॥ १९९ ॥
वह चित्रावलि आहै सोई, तीन लोक बंदै सब कोई।
सुर पुर सबै ध्यान ओहि धरहीँ, अहिपुर सबै सेव तेहि करहीँ ॥
मृतुमंडल[1] जो देखा हेरा, घर घर चलै बात तेहि केरी।
पंछी वोहि लगि फिरहिँ उदासा, जल के सुत[2] ओहि नाउँ पियासा॥
परबत जपहिँ मैान होइ नाऊँ, आसन मारि बैठि एक ठाऊँ।
पुहुमी दहु जो सरग लहु बढ़ी, सेवा करतहिँ एक पग ठाढ़ी ॥
जानि बूझि जो ताहि बिसारा, सो मनु जियतहिँ मरा अड़ारा।
अति सुरूप चित्रावली, रवि ससि सर न करेइ।
धन सो पुरुष औ धन हिया, ओहि क पंथ जिउ देइ ॥ २०० ॥
भए सुनत चित्रावलि बरना, कुँअर नैन पर्वत के झरना।
गयो चेत चित रह्यो न ग्याना, जनु एहि सागर लच्छ हेराना(क)।
माथेँ चढ़ी लहर जनु आई, बिसम्हरि[3] परा पुहुमि मुरझाई।
गहि जोगी पुनि कुँअर उठावा, खेह झारि सन्मुख बैठावा ॥
कहेसि कुँअर कस भए अचेता, बैठु सम्हारि हियेँ करु चेता।
एकै बात कहै नहिँ पूछी, जनु गा जीउ देह भइ छूछी ॥
मूँदे नैन साँस पुनि लेई, सुनै न कछू उतर नहिँ देई।
प्रेम मंत्र जोगी कहै, कुँअर स्रवन महँ तंत्र।
सुनत नाउ चित्रावली, निजन[4] गयो विष सत्र ॥ २०१ ॥

१—पृथिवी। २—जल-जन्तु। (क) जनु एहि दसा मरग निअराना। पाठा०।
३—बेहोश हो के। ४—निरयन = नाश।

जबहि कुँअर जागा जनु सोई, गहिसि पाउ जोगी कर रोई ॥
सो तुम रूप बखाना देवा . भइ मनसा होइ उडउँ परेवा ।
पुनि मन महँ अस होइ गियाना . जाउँ कहाँ जो पंथ न जाना ।
कहु सो केहि दिसि नगर अनूपा, जहाँ बसै वह नारि सुरूपा ॥
चलौं न करौं बिलँब एक घरी . निहफल जाइ घरी जो टरी ।
और न मोरे हियेँ विचारा . सीस मोर औ चरन तुम्हारा ॥
किंचित रैनि जाइ नहँ ताईं . चरन लाइ लै चलहु गोसाँईं ।

लोचन रहे चकोर होइ . हिया सकल उनमाद ।
मकु ससि मुख चित्रावली, देखौं तुव परसाद ॥ २०२ ॥

कहेसि कुँअर यह पंथ दुहेला . अस जनि जानु हँसी औ खेला ।
अगम पहार विषम गढ़ घाटी . पंखि न जाइ चढ़े नहि चाँटी ॥
खोह घराट जाइ नहिँ लाँघी . देखि पतार काँप नर जाँघी ।
जाइ सोई जो जिउ परनेजा . सार पाँसुली लोह करेजा ॥
तैँ अबहीँ घट आप न बूझा , बार देखि पिछवार न सूझा ।
बैठे देइँ सेँध पिछवारे . मूँसहिँ तसकर घर अँधियारे ॥
तैँ दै बार रहा गहि कूँजी, रही न एको घर महँ पूँजी ।

निसिबासर सोवहि परा . जागेसि नहिँ पल आध ।
घर न सँभारसि आपना , का लेवे एहि साध ॥ २०३ ॥

एहि मगु केर करै जो साधा . चलत निचिंत न होइ पल आधा ।
चाहै चरन चुभै जो काँटा , चले बराइ मारग नहिँ छाँटा[1] ॥
जौ पल एक कोऊ बिलँमावै , साथ जाइ पुनि पंथ न पावै ।
एहि मगु माहँ चारि पुनि देसा , जस जस देस करै तस भेसा ॥
चारिहुँ देस नगर हैं चारी , पंथ जाइ तेहि नगर मँझारी(क) ।
चारिहु नगर चारि पुनि कोटा , रहहिँ छिपे एक एक के ओटा ॥
जो कोउ जान न चार[2] विचारा , बीचहिँ मारि लेहिँ बटमारा ।

१—छोडे । (क)—बीचहिँ मारि लेहिँ बटपारा । पाठा० । २—आचार ।

चारि देस बिच पंथ सो, अब सुनु राजकुमार।
बेगर बेगर[1] बरन गुन, जस कछु नहँ व्यवहार॥ २०४॥

प्रथम भोगपुर नग्र सोहाया, भोग बिलास पाउ जहँ काया।
दुइ दुआर कर कोट सँवारा, आवागमन यही दुइ बारा॥
पुनि दूनहुँ दिसि अपुरुब हाटा, अनबन भाँति पटन सब पाटा॥
जो कछु चाहिय सबै बिकाई, मिरनक देखि जीभ ललचाई।
कहुँ पंचअमिरित जेवनारा, कहूँ सुगंधि करै महकारा॥
कहुँ नाच कहुँ कथा अनूपा, कहुँ मिरदुल अति ससिहर रूपा।
इंद्रपुरी जनु चहुँ दिसि छाई, जो आवा सो रहा लुभाई॥

घर घर मोहन जानहीं, पंथहिं बस कै लेहिं।
माया रूप देखाइ कै, आगे चलै न देहिं॥ २०५॥

बसै सोई ओहि नगर मँझारी, लेखा जानि होइ बैपारी।
सूधेँ मारग आवै जाई, माँटी लेखैँ बिषै पराई॥
सो देखै जेहि दोष न पावा, सुनै सोई जो पँडित सुनावा।
खाइ सोई जेहि ऊठै साँसा, फिरै न माथ लेइ सो बासा॥
मिलि कै पांच देहिं जेउनारी, भुगतै ताहि सोई बैपारी।
आपन अंस माँगि कै लेई, राज अंस बिनु माँगे देई॥
पांच जूनि कै राजजोहारू[2], करत रहै जस जग बेवहारू।

धरै छोह चित नेह सैं, रिस की ठैार रिसाइ।
ऐसी चलन चलावहि, तेहि भल पांच कहाइ॥ २०६॥

पंथी जेहि आगे है जाना, सो व्यवहार कहैं करु काना।
अंध होइ तस मूँदे नैना, बहिर होइ तस सुनै न बैना॥
रसना मैान होइ नहिं भाषा, षट रस अमी न पावै चाषा।
मूँदै नास साँस नहिं आवै, काम क्रोध कै छार जरावे[3]॥
दुष्ट के हनत न पाछे टरई, पगु जो उठाइ आगु मन धरई।

१—अलग अलग। २—राजा की वदना = निमाज। ३—मि०।

گوش بند و چشم بند و لب بهبند * گر نهبيني سر حق بر من بخند

बिलँब न लावै मन जग मंदा, निसरै तौरि मीन जिमि फंदा ॥
पंथी जो ओहि बार लहु जाई, आपु केवार उघारि कै आई।

चित रहसत पट ऊघरत, मिटै नैन अँधियार।
जैसे बीते स्याम निसि, होइ बिमल भिनुसार ॥ २०७ ॥

आगे गोरखपुर भल देसू, निबहै सोई जो गोरख भेसू।
जहँ तहँ मढ़ी गुफ़ा बहु अहहीं, जोगी जती सनासी रहहीं ॥
चारिहु ओर जाप नित होई, चरचा आन करै नहिं कोई।
कोउ दुहुँ दिसि डोलै बिकरारा, कोऊ बैठि रह आसन मारा ॥
काहू पंचअगिन तप सारा, कोऊ लटकइ रूखन डारा।
कोऊ बैठि धूम तन डाढ़, कोउ विपरीत रहे होइ ठाढे ॥
फल उठि खाहिँ पियहिँ चलि पानी, जाँचहि एक बिधाता दानी।

परम सबद गुरु देइ तहँ, जेहि चेला सिर भाग।
नित जेहिँ ड्योढ़ी लावई, रहै सो ड्योढ़ी लाग ॥ २०८ ॥

ताहि देस बिच आहि सो पंथा, चलै सोई जो पहिरै कंथा।
तेल नाहिँ सिर जटा बरावै, रजक नासि जे बसन रँगावै ॥
भसम देह पग पाँवरि सोई, एहि मग बिकट चलै पै सोई।
मेखलि[1] सिंगी[2] चक्र अधारी, जोगौटा[3] रुद्राष[4] धँधारी[5]।
भल मँद बसैं तहाँ इक भेसा, होइ बिचार न राँक नरेसा ॥
एही भेष सिद्ध बहु अहहीं, एही भेष बहुत ठग रहहीं।
एही भेष सौं बहु ठग आए, एही भेष सौं बहुत ठगाए ॥

जो भूले एहि भेष जग, खुले न तेहि हिय आछ।
आगे चलैं न तहँ रहैं, वह फिरि आवैं पाछ ॥ २०९ ॥

जो कोउ आगे चाहै चला, परगट देह भेष सो रला।

१—मेखला। २—सृङ्गी = एक बाजा जिसे गोरखपंथी रखते हैं। यह सींग का होता है और इसे पूजा में बजाते हैं। ३—झोरी। ४—रुद्राक्ष। ५—डंड।

पै अंतर सब जानै धंधा, भेष पत्याइ[1] सोई जग अंधा॥
घटही माँहि भेष सो लेखै, हिय के लोचन मारग देखै।
काया कंथा ध्यान अधारी, सीँगी सबद[2] जगत धंधारी॥
लोचन चक्र सुमिरनी साँसा, माया जारि भस्म कै नासा।
हिय जोगौट मनसा पाँवरी, प्रेम बार लै फिरि भाँवरी॥
परगट भेख तहाँ दइ डारै, आगे चलै सो पँवरि उघारै।

रहहि नैन जो जोति बिनु, दीपक पहिल मिलानु।
पुनि ससिहर सम दूसरे, होहिँ तीसरे भानु॥ २१०॥

आगे नेहनगर भल देसू, रांक होइ जहँ जाइ नरेसू।
भूलै देखि देस की सोभा, जहँवहिँ देखनहीँ चित लोभा॥
जाइ तहँहिँ जहँ कोइ लै जाई, ऊँच खाल सम एक देखाई।
खाइ सोई जो कोई खिआवै, बिष अमिरित एक स्वाद जनावै॥
भल औ मंद दोऊ एक लेखा, दुइ न जान सब एक कै देखा।
मारि गारि जिय राख न कोहू, रहम न होउ किए कछु छोहू॥
उतर न देइ जो कोउ कछु कहा, ऐसेँ रहै तहाँ सो रहा।

पंथ नाहिँ पुनि पंथ सो, ताहि देस निज पंथ।
बिनु गुरु कोऊ न जानई, औ पुनि पढ़ै गरंथ॥ २११॥

आगे पंथ चलै पै सोई जाके संग कछु भार न होई।
डारै कंथा चक्र धँधारी, करै मया जिय काया सारी॥
पैसन जिअ जेहि लोभ न होई, रूपनगर मगु देखै सोई।
हेरत तहाँ पंथ नहिँ पावा, हेरन चहै जो आपु हेरावा॥
पथिक तहाँ जो जाइ भुलाना, बिमल पंथ तेहीँ पहिचाना।
आवहिँ रूपनगर के लोगा, परषत फिरहिँ कौन तेहि जोगा॥
जो तेहि जोग लषहिँ जिय माहीँ, आगेँ होइ नगर लै जाहीँ।

१—प्रतीति करै। २—अनहद शब्द वा अलख।

रूप भेष उनहिँ क सजहिँ, औ सिषवहिँ सब भाव।
पेस न जानहिँ तेहि कोऊ, आन कहूँ ते आव॥ २१२॥

रूप नगर अति आह सोहावा, जेहि सिर भाग सो देखै पावा।
अतिहिँ डेरावन अतिहि सो ऊँचा, कोटि माँह कोउ एक पहूँचा॥
बहुनन्ह कीन्ह जोगि कर भेसा, चले छाँड़ि घर मन ओहि देसा।
तैं सुखिया सुख कौतुक राता, का जानसि दुख पंथ कि बाता॥
भोजन बिनु मुख जाइ सुखाई, पानी बाजु कँवल कुम्हिलाई।
छीन बसन जेहि अँग न सोहाई, कंथा कैसें सकै उठाई॥
सौरि माँह जिन बनउर टोवा[1], कुस साथरी सो कैसें सोवा।
बसन अपूरब पहिरि तन, लावहु मोद सुबास।
अहहिँ नारि अछरी सरस, मानहु भोग विलास॥ २१३॥

---

(१४) उद्योग खंड।

कहिसि कुँवर सुनु गुरू परेवा, सुनि सो पंथ उपजे उर केवा।
अब मोहि उहै पंथ पै जाना, प्रेम प्रीति लै कीन्ह निदाना॥
मैं सुख तजि दुख लीन्ह सम्हारी, कै जिउ जाइ कि मिलै सो नारी।
मोर दुख आदि सँघाती आहा, मिलै आइ मैं सोइ संग्राहा॥
काकर सुख काकर यह राजू, दुखियहि अपने दुख सौं काजू।
भलेहुँ नारि अछरी सम पाई, मेघ पियास कि ओसहि जाई॥
जौं चकोर चँदहि चित लावा, कहा सो तरागन महँ भावा।
राज पाट सुख सकल अब, मोहिँ न कछु सोहाइ।
चित लाग्यो चित्रावली, दुहुँ बिधि कब लै जाइ॥ २१४॥
जब ते चित चित्रावलि महियाँ, इहाँ क रहन न जानौं कहियाँ।
संक सँकोच न एकौ हियेँ, मोहि अब प्रेम पंथ सिर दियेँ॥
अस साहस उपजा जिय माहाँ, आहै नियर दूर जनु नाहाँ।

---

[1] —टटोला।

जो बिधि देत पंख तन मोरे, अबहीँ चलि उड़ि देखन तोरे ॥
अगिनि होइ तौ सनमुख धाऊँ, समुँद होइ तौ सौंह धसाऊँ।
अँकरौरी सम गनौं पहारा, लेखौं समुंद हिये महँ नारा ॥
कबलौं रहौं परा घर घेरे, कहु उठि लागौं पंथ सबेरे।

मैँ अनाथ तुम्ह नाथ गुरु, गहि खैँचहु मम डोर।
तैँ मोर अगुवा पंथ तहँ, मैँ पिछलगुवा तोर ॥ २१५ ॥

निहचैँ प्रेम सुरा इन्ह पिया, उतरै मात[1] न जौ लहु जिया।
सुना परेवा कुँअर कि बाता, निहचै कहसि कि यह ओहि राता ॥
निहचै प्रेम-पंथ इन्ह गहा, राज पाट तजि दुख संग्रहा।
अब लै चलौं बिलँब नहिँ लावौं, लै चित्रावलि आस पुरावौं ॥
वै पुनि अबलहुँ बहु दुख सहा, दहुँ घट मँह किमि जिउ ओहि रहा।
जस वह यहि के दरस पियासी, तस यह वोहि लगि दून उदासी ॥
अब जो मिलहिँ बहुत सुख होई, ओ सुख तिनहिँ जो देखै कोई ॥

मान जगत तेहिँ जनम लै, बहुत भाँति सुख होय।
इहि सम सुख नहि और सुख, मिलै जो माते दोइ[2] ॥ २१६ ॥

कहेसि कुअँर तैँ साहस बाँधा, चल अब तोर भार मैँ काँधा।
अब तोहि रूपनगर लै जाई, चित्रावलि सों देउँ मेराई ॥
पै कहु मोहिँ घर छाड़ब कैसे, मया फांस निरवारब[3] कैसे।
मात पिता लागहिँ सँग दोऊ, एकसर तोहिँ न छाड़ैँ कोऊ ॥
कुटुँब लोग जन परिजन तोरा, सब मिलि करहिँ मया नहिँ थोरा।
मया मोह घर घेरै आवा, बिछुरत लोग सबै दुख पावा ॥
यह सो पंथ खरग की धारा, सहस माँह कोउ गवनै पारा।

बन बीहर नारा नदी, लांघत बहु दुख होय।
आपनि आपनि तहँ परै, काहु कि सुनै न कोइ ॥ २१७ ॥

[1]—नशा, मद। [2]—मि० खूब निबुटैगी जो मिल बैठैँगे दीवाने दो।
[3]—दूर करना, छोड़ना।

कहेसि कुँअर पूछहु का मोहीँ, आपन भार दीन्ह मैँ तोहीँ।
हौं अजान तू पँडित सयाना, पंडित पूँछे आनि अजाना॥
करहु सोई जा महँ भल होई, जो तुम कहहु करौं मैँ सोई।
मैँ विचारि देखा मन माहीँ, भाइ बंधु कोउ काहु क नाहीँ॥
का कर पितु मै का कर माता, कहाँ क लोग कुटुँब कर नाता।
जस दिन बीतेँ परै अँधेरा, पंछि आइ तरु लेहिँ बसेरा॥
भएँ भोर दिनकर परगासा, नैन कौंल पुनि करहिँ विगासा।
रवि प्रसाद पथ सूझई, मिटै नैन अँधियार।
जाहिँ जहाँ ते आइ इत, तजि तरुवर की डार॥ २१८॥
कहिसि कुँअर अब आपु सम्हारहु, राज काज कर साज उतारहु।
काढ़हु दगल सुहावन राता, पहिरहु चिरकुट कंथा गाता॥
मनि कुंडल मकराकृत डारहु, फटिक मुंदरा[1] स्रवन सँवारहु।
धोवहु चंदन भसम चढावहु, किँगिरी गहहु वियोग बजावहु॥
तजहु सेल कर लेहु धँधारी, औरु सुमिरनी चक्र अधारी।
सिंगी पूरहु जटा बरावहु, खप्पर लेहु भीख जेहि पावहु॥
काँधे लेहु बाहि मृगछाला, गीवँ पहिरहु रुद्राष क माला।
करहु कान जनि एकहू, कहै कोऊ जौ लक्ख।
पहिरि लेहु पग पाँवरी, बोलहु सिरीगोरक्ख॥ २२०॥

---

(१५) प्रस्थान खंड।

कीन्ह कुँअर जो जोगी कहा, देखत लोग अचँभौ रहा।
बोलि सुबुधि सों कहा बुझाई, मात पिता सों कहियहु जाई॥
पहिलेँ पालागन जस अहा, तौ पुनि कहब कुँअर अस कहा।
आपन जिउ मैँ खोआ जहाँ, पाएउँ चाह चलेउँ उठि तहाँ॥
रूपनगर है दक्खिन देसा, चलेउँ तहाँ करि जोगि क भेसा।

---

[1]—कुंडल, यह चक्र के आकार का होता है और गोरखपंथी साधू इसे कान पहिनते हैं।

चित्रावलि राजा की बारी, जिहि क बिरह दुख ग्रहीं दुखारी ॥
परम सँजोग जाइ मकु पावों, आपन जीउ माँगि लै आवों।
तुम्ह चित चिंता जनि करहु, हम अस आउ बिचारि।
जाै घट जिउ है फिरि मिलहिँ, नरबर कोटि जोहार ॥ २२१ ॥
तत षन दोउ जन करि उपचारी[1], झोलि मंतरा लीन्ह सँभारी।
नैनन्ह महँ लुकग्रंजन दीन्हा, ग्रौ मुख घालि गोटिका लीन्हा ॥
डंडा ठोंकि चले उठि दोऊ, वै देखहिँ उन्ह देख न कोऊ।
देखत लोग अचक होइ रहे, कहाँ भए बिधि ए जो अहे ॥
जत कत धावहिँ जहँ तहँ जोवा, दिष्टि न ग्राव करैं सब रोवा।
देखि चरित्र नैन हिय जागे, आपु आपु कहँ रोवन लागे ॥
जस ये देखत गए हेराई, एक दिन हमहूँ जाब बिलाई।
कौन भरोसा देह का, छाड़हु जतन उपाइ।
कागद की जस पूतरी, पानि परे घुलि जाइ ॥ २२२ ॥
कही काहु राजा सों जाई, कुँअर गयो कछु चेटक[2] लाई।
जोगी एक कतहुँ तें आवा, नहिँ जानो का भेद सुनावा ॥
कै कछु आनि खियापसि मूरी, कै पढ़ि कै सिर मेलेसि धूरी।
झगा[3] फारि वह पहिरिसि कंथा, कोऊ न जान गयो केहि पंथा ॥
गयो सभन्हि पुनि चेटक लाई, देखत देखत गयो हेराई।
गयाै कौन दिसि काहु न जाना, कै अकास कै धरनि समाना ॥
बल एक सुबुधि निकट पै रहा, तासो कछुक सँदेसा कहा।
राजा सुनि पुहुमी परे, परी मँदिल महँ हूल।
धाइ लछिमिदेइ माता, ब्याकुल फारि दुकूल ॥ २२३ ॥
घर घर नगर परा सुनि सोगू, रोवैं बार बूढ़ सब लोगू।
फिरि फिरि राजा खाइ पछारा, रानी बदन रुहिर कै धारा ॥
तोरि केस ग्रौ सीस उघारा, को ले गयाै मोर मों बारा।

१—तान्त्रिक प्रयोग। २—तन्त्रिक प्रयोग। टोटका। जादू।
३—लबादा = जामा।

निकट होत अस होत न भंगा . जोगिनि होइ जाति हौं संगा ॥
मैं पापिनि कछु जिय न विचारा , बारे दिनन दूरि कै डारा ।
पूत वियोग मरत हौं झूरी , छूँछे जानु मेलि सिर धूरी ॥
को अस आह देखावैं पंथा . जोगिनि होउँ पहिरि गर कंथा ।

गात गात झागा भए . टूटे सिर सिर केस ।
राउ राँक सब रोवई . रोवै नगर नरेस ॥ २२४ ॥

---

(१६) सुबुद्धि खंड ।

सुबुधि आइ तहँ देखै कहा . घर घर सोग नगर महँ अहा ।
राजा विकल सँभार न आपू , औ रानी बहु करै विलापू ॥
कहेसि बाँह गहि चेतहु राजा , तुम्ह पुहुमीपति सोग न छाजा ।
जौ तुम्ह पुरुष मरौ अस रोई . मेहरिन्ह[१] का समुझावै कोई ॥
छमा करहु अब सुनहु नरेसा . चलत कहा जो कुँअर सँदेसा ।
लाग्यौ मातु पिता के पाया , कहेसि न जहु जनि जिय ते माया ॥
सपने जीउ खोइ जहँ आएउँ , तेहि की चाह इहाँ अब पाएउँ ।

दच्छिन देस नरेस एक , चित्रसेन तेहि नाउँ ।
तेहि घर धिअ[२] चित्रावली , ससिमुखि कहत लजाउँ ॥ २२५ ॥

रूप नगर तहँ बसै सो नारी , पुहुमी विधि अछरी औतारी ।
चित्र एक वै लिखा बनाई . मोर जीउ ते लिन्ह चोराई ॥
सो न चोर जिन जीउ चोरावा , चोर सो जो अस चोर बनावा ।
पाएउँ खोज चोर बस जहाँ , अगुवा मिलो चल्यौं उठि तहाँ ॥
चोर सुनत जो विलँब न लावै . उठि धावै तहँहि पै पावै ।
जो विधि करै न आगे भंगा , आनौं जीउ चोर लै संगा ॥
भा विचार अस हम चित माहीँ , तुम्ह चित करुन[३] करहु कछु नाहीँ ।

१—स्त्रियो का । २—संदुहिता = कन्या । ३—करुणा = विलाप ।

इहै सँदेसा कहत खन , ठाढ़ भयौ उठि राउ ।
लुकअंजन चखु देइ कै , तहँवहिँ गयौ छपाय ॥ २२६ ॥
अब तुम्ह चिंत करहु जनि हीयेँ . मिलै न पुनि कछु चिंता कीयेँ ।
देहु दान पर हाथ उँचाई . विकट पंथ किन होइ सहाई ॥
भूखेहिँ भोजन बस्तर नाँगा , देहु पियासहिँ जल बिनु माँगा ।
इहाँ देइ जो उहाँ सो पावै . इच्छा मिलै वेगि घर आवै ॥
दुहुँ जग हितू दान सम नाहीं . बूड़त दधि काढै गहि बांहीं ।
खेवक दान होइ मँझनीरा . गहि गुन खेइ लगावै तीरा ॥
एक देइ दस पावहिँ लाहू . दै देखहु जो ना पतियाहू ।
धरनीधर नृप चेत चित . वैस्यो खोलि भँडार ।
देइ दान जो माँगई . करै न कछु बिचार ॥ २२७ ॥

---

(१७) यात्रा खंड ।

जोगी चला कुँअर संग लाई . जैसे पान पात लै जाई ॥
आगे चला जाइ सो जोगी , पाछे लागा कुँअर वियोगी ॥
बन बीहर जहँ लहु नदि नारा . गिरि सायर[1] गहि बाँह उतारा ।
परबत लाँघि देस एक पावा . दिष्टि परा एक नगर सुहावा ॥
कंचन कोट जराउ कँगूरा , चहुँ दिस बाजहि मंदिल तूरा ।
घर घर होइ गीत झनकारा . चंदन मेद बास महकारा ॥
औ चारिहु दिसि तरुवर पाँती , सीतल छाहँ सुहावन भाँती ।
देखत भावै चहूँ दिसि , स्रवनन गीत सोहाय ।
छाँह देखि भा कुँअर मन . छिनक तहाँ बिलम्हाय[2] ॥२२८॥
जोगी कहि कुँअरहि समुझावा . हम पंथी यह नगर परावा ।
जो अति सुंदर कोट विराजा , पंथिहि दिष्टि न ऊपर छाजा ॥
पंथिहि चाही दिष्टि तराहीँ , चलत न चुभै काँट पग माँहीँ ।
औ तुम्ह कीन्ह जोग कर साजू , जोगिहिँ कहा भोग सोँ काजू ॥

१—सागर ।   २—विश्राम लेवे ।

औ अति आह सुहावन गाऊँ, छाड़े गाँव केर का जाऊँ।
नियरहिँ आह देस पुनि तोरा, अब केहिँ बिलँब कौन दहुँ थोरा॥
आगे अबहिँ दूरि है जाना, एहि रे गाँउँ तो पहिल पयाना।
नाँच कूद कसबा[1] इहाँ, ठाँव ठाँव बहुनाइ।
जा कहँ जाना दूरि है, नियरहिँ कस बिलँमाइ॥२२९॥
ठौर ठौर पुनि छाँह सोहाई, पंथी होइ सो कस बिलँमाई।
पंथिहि कहा धूप औ छाहाँ, चलै जरत पग भूँभर माहाँ॥
जोगी सोई दरस कर राता, छाला पाँवरि सूरज छाता।
आगे दूरि नदी औ नारा, निबहै सोइ जो तिसना[2] मारा॥
यही नगर देखत मनियारा, एही नगर बसहिँ बटपारा।
एही नगर जहँ मोहनि डारहिँ, पूँजी लेहिँ जीउ पुनि मारहिँ॥
सोई पुरुष जो बिलँब न लावै, आँखि मूँदि कै पाँव उँचावै[3]।
बहुत इहाँ लगि आवहीँ, देखत नगर लोभाहिँ।
कोऊ एक आगे चलै, नत इहवैँ रहि जाहिँ॥ २३०॥
सुनिकै कुँअर चेत चित चेता, हिरदै लिखा कहा गुरु जेता।
लोचन मूँदे चरन उँचाए, छिन महँ नगर नाँघि कै आए॥
और देस महँ आरै भावा, कीन्ह सो जो कछु गुरू सिखावा।
देखि देस औ देसाचारा, गिरि सायर सब उतरे पारा।
सुना सो जो कछु सुना न काना, देखा सो जो न जाइ बखाना॥
गुरू जाहि चेला सँग होई, ताहि कहा बिलँमावै कोई।
नदी नार परबत की घाटी, गुरुप्रसाद सब लेखे माटी॥
मूँड़ मुड़ायेँ जग फिरे, जोगी होइ न सिद्ध।
जा कह गुरु किरपा करहिँ, सो पावै नौ निद्ध॥ २३१॥
ततखन पौन बास लै आवा, भा हुलास हिय लागु सुहावा।
जगमग जोति दिष्टि जो परी, भा भिनुसार गई सरवरी[4]॥

[1]—नगर। [2]—तृष्णा। [3]—उठावै। [4]—शर्वरी = राति।

कै जनु चमकै बिज्जु अकासा, कै जनु भोर सूर परगासा।
कहेसि गुरू! अचरज एक हुआ, पूरब छाड़ि दखिन रवि ऊआ॥
ठावँ ठावँ तारागन अहहीँ, सूरज उए नखत किमि रहहीँ।
चौंधी दिष्टि निहारि न जाई, कहुँ ससिहर कहुँ सूर दिखाई॥
पौन आजु पुनि सीतल बहा, मिलन सिरान हिया जो दहा।

मिटत जाइ अँधियार चखु, होत आउ उजियार।
जैसे बीते स्याम निसि, होइ आव भिनुसार॥ २३२॥

सुनि कै बोला गुरू सरेखा, निहचै रूपनगर तुम्ह देखा।
एही नगर जहँ बसै सो नारी, जेहि लगि कया भसम कै जारी॥
एही नगर तुम्ह सुना सो देखा, रूप नगर कबिलास बिसेखा।
यही नगर जा सों जग राता, इंछ तुम्हार पुजाव[1] बिधाता॥
इहहिं छाड़ि जिउ गयो सरीरा, अब जिउ मिलिहि राखु मन धीरा।
दुख की रैनि बीति सब गई, सुख रवि किरन सो परगट भई॥
एही नगर जेहि लागि बियोगी, इहवाँहिं सिद्ध होहिं सब जोगी॥

एही ठौर कबिलास सम, रूपनगर तेहि नाउँ।
कतहुँ होइ कोउ जोगी, सिद्ध होइ एहि ठाउँ॥ २३३॥

ऊँच जो देखहि जैस सुमेरा, सो मंदिल चित्रावलि केरा।
अति बिचित्र जहँ कीन्ह कटाऊ, चढ़ि न जाइ अति बिकट चढ़ाऊ॥
ता ऊपर जो कुंदन मंडी, सो चित्रावलि की चौखंडी[2]।
रतन पदारथ मानिक जरी, सुरपुर हियेँ आनि जनु धरी।
सात धौराहर ऊपर ठाऊँ, कहहिँ सबै सुखमंदिर नाऊँ॥
तहाँ निवास करै सो बारी, जीउ देइ सो देख अँटारी।
जिउ हारहिँ देखत उपराहीँ, चलै जगत सब दिष्टि तराहीँ॥

ऊपर कोउ न निहारइ, बरु मग चलहि बराइ।
दिष्टि तराहीँ कै तहाँ, सब जग आवै जाइ॥ २३४॥

१—पूरा करे। २—चौपाल, बैठक।

पूरब दिसि जो आहि पहारी, जनु बिसुकरमैं आपु उतारी।
झरना झरै सोहावनि भाँती, तरुवर लागे पाँतिन्ह पाँती॥
बोलहिँ पंछी अनबन भाषा, आपन आपन बैठे साषा।
सिखर चढ़े कूकहिँ बहु मोरा, परबत गूँजि उठै चहुँ ओरा[१]॥
जोगी आइ रहैँ तेहि ठाऊँ, सुमिरहिँ बैठि बिधाता नाऊँ[२]।
पाहन काटि गुफा बहु साजी, ठौर ठौर पुनि मढ़ी बिराजी॥
तुम बैठहु तेहि ठाउँ सोहाई, मैँ अब चाह सुनावौं जाई।

चाह सुनावौं प्रथम मग, पाछे दरसन पाइ।
कै वह तुम्ह पहँ आवइ, कै तुम्ह लेइ बुलाइ॥ २३५॥

सुनतै कुँअर दरस की बाता, अहा जो पीतबरन भा राता।
कहेसि कि मोहिँ भावै सो ठाऊँ, जहाँ जपैँ चित्रावलि नाऊँ॥
कुँअर चला सो ताकि पहारी, उड़ा परेवा ताकि अँटारी।
देखा कुअँर जाइ सो ठाऊँ, जल थल जपै बिधाता नाऊँ॥
पंछी सुमिरहिँ अपनी भाषा, सुमिरैँ पात पात तरु साषा।
परबत धरै ध्यान जनु तपा, गुपुत जपहिँ परगट नहिँ जपा॥
जो बीरो उपजै ओहि ठाऊँ, सबै लेइँ परमेसर नाऊँ।

देख कुँअर चित रहस भा, अतिहि सोहावनि ठाउँ।
बैठेउ आसन मारि कै, लागा जपै सो नाउँ॥ २३६॥

जौलौं ध्यान धरै नहिँ कोई, तौलौं दरस न प्रापन होई।
घट मेँ परमरूप परछाहीँ, जा बिनु जग महँ जीवन नाहीँ॥
पै तिन्ह नैन न अंजन सोई, जेहि ते दरसु न प्रापति होई।
गुरु बचन चषु अंजन देहू, हिया मुकुर मंजन करि लेहू॥
माया जारि भसम कै डारौ, परमरूप प्रतिबिंब निहारौ।

१—परबत धरैं ध्यान जसतपा। गुपुत जपैं परगट नहिँ जपा। पाठा०।
२—सबै लेयँ परमेस्सर नाहूँ। पाठा०।

जो वह जोति नैन ठहरावै, चौदह भुवन दिष्टि सब आवै[१] ॥
कुँअर ध्यान धरि बैठे तहाँ, परम रूप की आसा जहाँ।
परम आस लगि जिमि भयो. कुँअर चित्त उतपात ॥
तिमि चित्रावलि बिरह की, कहौं सुनौ अब बात ॥ २३८ ॥

(१८) बिरह खंड ।

चित्रावलि चितवै पँथ लागी. भँवै चहूँ दिसि चितवन लागी।
भूख गई औ नींद नसानी, कंन पियास पियँ का पानी ॥
परगट ढारि सकै नहिँ आँसू, बिरहा गुपुत करै तन नासू।
दारुन धाइ संग दिन राती, प्रेम दुरावै तिय मृदु छाती ॥
कुल की लाज बिरह तन गोवै, परट हँसै गुपुत महँ रोवै।
निकट न बोल अहित जो होई. आँसु उसास न चरचै कोई ॥
कुटुँब लाज नहिँ करै सिँगारा, बैसंदर होइ होइ सब जारा।
मंजन करि पहिरावहीँ, बरन बरन तन चीर।
तेउँ तेउँ दूनो परजरै[२], बिरहा अनल सरीर ॥ २३९ ॥
जौ तन पहिर चीर रतनारा, बिरह अगिन जनु धुकै अँगारा।
सिखा फुलेल सखी जो डारा, जनु सिर परी बिरह की धारा ॥
कंचन तिलक मदन की गाँसी[३], जरी सीस जनु ताहि कि डासी।
अंजन पल सुहाइ नहि लागा, दुहूँ नैन जनु बिरह सरागा ॥
बेसर बरत जानु बिष मढी. छिन छिन डसै बदन पर चढी।
पान खात मुख भा रतनारा, बिरह पीर जनु रकत उडारा ॥
मोति हार गर कंचन हाँसा, जनु गिँव परा बिरह कर फाँसा।
भुजा टाँड़ औ बलै कर, अँगुरिन मुँदरी टूट।
सब तन बंधन बिरह के, प्रान सकैँ नहिँ छूट ॥ २४० ॥

१—मि०
२—प्रगट हो, सुलगै।
३—बाघा की नोक।

تامل در آئینهٔ دل کنی * صفائی بتدریج حاصل کنی
شود بوے از عشق مستت کند * طلبگار عهد الستت کند

खुँभिया[1] कान सेल की जोरी, बिरहै आनि हनी दुहुँ ओरी।
हियेँ डोल मुकुताहल हारू, बिरहा जनु उर हनै कटारू॥
कटि किंकिनि काटै तन दाधा, मानहुँ कीन्ह चहै दुइ आधा।
चूरा चूरै देह दुहेली, पायल मानहुँ पाँवरि[2] मेली॥
अनवँट महँ जनु विष भैारसा[3], बिछिया बीछु होइ पग डसा।
दाहै सब सिँगार तन जेता, कुल की लाज सहै दुख एता॥
जरै अँगार परै जनु छारा, चंदन लागि दहै तन सारा॥
मान जगत परगट जरै, पावक बिरह सरीर।
धन बिरहिनि औ धन हिया, गुपुत सहै जो पीर॥२४१॥

धाई मुख चरचै वपु जोआ, कबहुँ परगट हँसि कै रोआ।
कबहुँ रहै सूर तम जोई, आँसू ढरै न चरचै कोई॥
कबहुँ सखी सो मन मुख जोवा, करि करि याद करै दिन रोवा।
कबहुँ अगर लै निकट जरावै, धूम देखि चषु जल भरि आवै॥
देखै धाइ सेज दिन भीजी, कहै राति हौं बहुत पसीजी।
निसि मुख गोइ सेज जो सोवै, नीँद न आउ भोर लहुँ रोवै॥
लोयन सजल उठै बौरानी, धोवै बदन बेगि लै पानी।
गुपत प्रेम जल लोयन, चाहहिँ परगट कीन्ह।
अतिहि चतुर चित्रावली, बातन्ह गोवै चीन्ह॥२४२॥

दिन एक रोइ रँगमति सोँ कहा, अब नहि जाइ बिरह दुख सहा।
कब लगि जरौं बिरह की आगी, अब परगट होइ चाहै लागी॥
बिरहा बली अनल हौं दही, हिरदै लागि रहै नहिँ गही।
दूतन्ह भए बहुत दिन गए, तेऊ जाइ तहँहिँ के भए॥
कै सो देस अति आह सुहावा, जो तहँ गा सो बहुरि न आवा।
कै सो अजहुँ तेहि पाइन्हि नाहीँ, कै वह रूप नहीँ जग माहीँ॥
बीते बारह मास दुहेली, गुपत रोइ छह ऋतु परहेली[4]।

१—खूँटी, कान में पहिनने का एक आभूषण। २—बेड़ी। ३—भरा हुआ। ४—बिताया।

सुनु सखि छन एक कान दै, कहौं पीर सब तोहिँ।
जैसे बारह मास प, छह ऋतु बीते मोहिँ ॥ २४३ ॥

ऋतु बसंत नौतन बन फूला, जहँ तहँ भौंर कुसुम रँग भूला।
आहि कहाँ सो भौंर हमारा, जेहि बिनु बसत बसंत उजारा ॥
रात बरन पुनि देखि न जाई, मानहुँ दवा दहूँ[1] दिसि लाई।
अंग सुबास चढ़ै जनु चांटे, फूल अंगार कली जनु कांटे ॥
कोकिल पपिहा करैं पुकारा, बोलत बोल सांग उर मारा।
रतिपति दुरद रितुपती[2] बली, कानन देह आइ दल मली ॥
दहुँ केहि बन बस सिंह हमारा, कस न आइ जग बिरह सँहारा।

पुहुप सरासन पनच अलि, मनमथ धरे चढाइ।
पंचबान छिन छिन हनै, बिरहिनि उर समुहाइ[3] ॥ २४४ ॥

ग्रीषम तपनि तवै जग माहीँ, जिय कायर ताकै परछाहीँ।
सूर आगि सिर पर बरसावै, बिरहा भीतर देह जरावै ॥
हौं बिच जरौं अगिन दुइ माहीँ, जरत न परै दिष्ट परछाहीँ।
जेठ जरनि दुख जाइ न काढ़ा, कंत कलप दहुँ केहि बन बाढ़ा ॥
बिरह दवा पुनि जाइ न हेरी, परगट भई अगिन की ढेरी।
कोइ न मया मरोहीं आवै, कतहुँ छाँह की चाह सुनावै ॥
रसना पिउ पिउ रटन सुखानी, प्रेम पियास पियै को पानी।

ग्रीषम पुहुमि अनल भई, पथिक चलै किमि कोइ।
मगु जोवत नैना जरे, धुआँ न परगट होइ ॥ २४५ ॥

दूभर रितु जब पावस लागी, घन बरसे धिउ हम तन आगी।
जिमि जिमि परै मेघ जल धारा, तिमि तिमि उर सों उठै लुआरा ॥
स्याम रैनि महँ कोकिल बोला, बिरह जराइ कीन्ह तन झोला।
दामिनि सरग दीन्ह जनु बाढी, चमक देखाइ लेइ जिउ काढ़ी ॥

१—दशो। २—बसत। ३—सामने करके, ताक के।

कासों कहौं विथा जिउ केरी, काकी होउँ पाँव परि चेरी।
स्याम घटा औ सेज अकेली, जागि जाइ सब रैनि दुहेली॥
बिरह समुंद जानु अति बाढ़ा, को गहि भुज जलबूड़त काढ़ा।

ऊँच खाल जग जल भरे, भए समुँद औगाह।
सखी पथिक जहँ तहँ टिके, को लै आवै चाह॥ २४६॥

सरद समै अति निरमल राती, कंत बाजु[1] मँहि बिहरै छाती।
राति निखँड चकाव पुकारा, मानहुँ काढि मेल उर मारी॥
ससि पारधि भा पारस[2] बाँधा, किरन बान चारिहुँ दिस साँधा।
कहाँ जाँय यह मन मृग भागी, बिरह आगि चारहु दिस लागी॥
केतिक जाइ सकल निसि बीतो, बरबस रहौं बाँधि उर थीती[3] (क)।
आपु माँह किमि सखी मिलाहीँ, जल पर ग्राह दुहूँ पल माहीँ॥
अुँके नीँद बरबस चखु आई, आँसु दरेर साथ बहि जाई।

गुपत मदन दो पर चरै, प्रगट दहै दुजराजु[4]।
सखी प्रान घट क्यों रहै, कंत पियारे बाजु॥ २४७॥

हिम ऋतु यह बिरहानल बाढा, कंत बाजु दुख जाइ न काढा।
परै तुषार बिषम निसि सारी, सिसकी लेति रहौं मैं बारी॥
ते न फिरे जो गए बसीठी, बरै लागि उर मदन अँगीठी।
बिरह सराग करंज पिरोवा, चुइ चुइ परै नैन जो रोवा॥
उरध उसास पौन परचारा, धुकि धुकि पंजर होय अँगारा।
बड़ी रैनि जीवन सुठि थोरा, चेत न परै दिष्टि जनु भोरा॥
पूस मास अति निसि अधिकाई, सो धन जान जो बिरह जगाई।

थके नैन बरु देखते, घटै न कोऊ दुःख।
बाढे सिर पर गुर दोऊ, एकसरि परि ये दुःख॥ २४८॥

१—सं० बाह्य बाहर। २—सं० पार्श्व—किनारा, घेरा। ३—स्थिति, धैर्य।
(क) उर्दू मे नहीं है। ४—चन्द्रमा।

सिसिर समीर सरीर सँतावै, जाडेहुँ नैन नीर भरि आवै।
अुरकै पौन करेजा काँपा, बरिया बिरह रहै नहिँ झाँपा॥
श्रीपंचम मानहीँ सब लोगू, पूजहिँ देवता बिलसहिँ भोगू।
हौं कुल कान प्रेम बिच बसी, हिरदै रुदन अधर पर हँसी॥
सखिन गुलाल आनि सिर डारा, परगट भा जनु बिरह लुवारा।
अब लहु रही गुपुत यह आगी, अब परगट होइ चाहै लागी॥
केहि आगे लै यह सिर मारौं, सिर की आगि सहे नहिँ पारौं।

अब तन होरी लाइ कै, होइ चहौं जर छार।
चहुँ दिस मारुत सँग होइ, ढूँढौं प्रान अधार॥ २४९॥

अबलहुँ सखी गुपत हौं जरी, अब जिउ रहिय न एकौ घरी।
पिँजरा महँ जस पंछी घेरी, औ पग परी लाज की बेरी॥
पंछी बन महँ करै पुकारा, होइ न कोऊ बरजन हारा।
हम तन बिरह रहा होइ रोगू, परगट होउँ तौ मारैँ लोगू॥
परगट लाज कहत पै माटी, दुइ कर बीच भई हौं चाँटी।
घट पिंजर चहुँ दिस तै टूटा, प्रान परेवा चाहै छूटा॥
अधरन आइ रहा जिउ मोरा, जाइ बहुर मन लाज निहोरा।

कबहुँ अधर कबहुँ हिएँ, जानति हौं केहि भाइ[१]।
अति ब्याकुल तेहि कंत मगु, झाँकि झाँकि जिउ जाइ॥ २५०॥

सुनि कै बिथा कहै रँगमती, ऐसी जरै सोई धन सती।
परगट जरै सती सो नाहीँ, गुपत जरै सो सती सराहीँ॥
जेहि कारन दुख सहै सरीरा, मिलिहै आइ राखु मन धीरा।
पहिलेँ दुःख सहै जो कोई, तौ पाछे सुख पावै सोई॥
(क) पहिले दुख पाछे सुख होई, तब अनूप नग पावै कोई।
कागहि सब तन करिखा[२] सारा, छुवै जाइ तब पद मनियारा[३]॥

१—भाँति। (क) यह उर्दू की प्रति में नहीं है। २—कारिख = काला।
३—कौआ ने अपना सारा शरीर काला किया तब सीता जी का पैर छूने पाया।

मान हिअस्थल[1] बाँधि जौ, लावै बीरौ दुक्ख।
सीँचि नैन जल तरु करै, तौ पावै फल सुक्ख॥ २५१॥

सुनु चित्रिनि एक बात सोहाई, मिलै कंत सो कहौं उपाई।
कोटि जतन कै चहुँ दिसि धावै, बिनु सेवा कोई कंत न पावै॥
महादेव देवतन्ह के पीता[2], इंद्र सेइ इंद्रासन जीता।
जो इच्छा करि सेवै कोई, परसन होइ देइ पै सोई॥
महादेव कर खपर भरावहु, जोगिन्ह कहँ बैसाइ जेँवावहु।
तापर बोलि देहु कछु दाना, दान हीँचि[3] सरगहुँ तैँ आना॥
दान देत जनि लावहु धोखा, हौँ छा मिलै होइ संतोखा।

गाँठ दीन्ह चित्रावली, उन गौनो कहि बात।
खप्पर भरौं सहस्र दस, जब आवै सिउरात॥ २५२॥

---

(१६) परेवा आगमन खंड।

तेहि दुख माँह परेवा आवा, चित्रिनि देखा जीउ जनु पावा।
पूछिसि कुसल कहहु सो बाता, मिला सो भौंर कँवल जेहि राता॥
कहहु बेगि जीउ अधर बईठा, निकसि जाइकै हियेँ पईठा।
धरि लिलार भुइँ कहेउ परेवा, आवा मधुप कंज-रसलेवा॥
अब जनि जरहु मरहु तपि बारा, तुम्ह दुख रैनि भयो भिनुसारा।
रहा मलीन कौंल जेहि आसा, आउ सूर अब करहु बिलासा॥
चातक होइ रही दिन राती, करु आनँद अब मिली सेवाती।

सुनि रहसी चित्रावली, पीत बदन भा रात।
जैस उगवत सूर के, पदुम होत परभात॥ २५३॥

पुनि पूछौं निजु कहहु परेवा, कहाँ सो मधुप कौंल रसलेवा।
पै कहु कहाँ सो पाए जाई, कैसे काढ़े प्रेम चिन्हाई॥

१—हृदयस्थल। २—पिता। ३—खींच के।

करै ऊँच कै नीच बिचारी, राजा राउ कि राँक भिखारी।
काह नाउँ काकर सुत आही, एक एक बैठि बखानहु ताही॥
जेहि सुनि रहइ जीउ मम गाता, फिरि फिरि कहहु ताहि की बाता।
आजु सिरान हिया दुख जरा, मुए धान जनु पानी परा[1]॥
कै चकोर ससि किरन देखाई, पपिहा जानु सेवाती पाई।
नियर होहु तुअ चरन परि, सहस बेर बलि जाउँ।
एक जीउ घट माँहि तेहि, वारत अधिक लजाउँ॥ २५४॥

कहिसि कि ताहि सराहौं काहा, धन तूँ धनि जाकर बर आहा।
नषत कि लखै तराइन श्रोरा, ससिहर होइ सूर कर जोरा॥
उत्तर देस नगर नैपालू, राजा धरनीधर नृप सालू।
दान खरग चहुँ जुगन बखाना, कोस सहस दस ताकी आना॥
तेहि कर सुत सरूप बुधिवंता, छत्री कुल पवाँर कुलवंता।
नाउँ सुजान चहूँदिसि जाना, बल बिद्या गुन केर निधाना॥
रतन एक जनु ससि मनियारा, रहा होइ सब कुल उँजियारा।
बिधिचरित्र सोवत तेहि, कोउ चितसारि लै आइ (क)।
गयो चित्र तुव देखि कै, आपन चित्र बनाइ॥ २५५॥

जस तोर जिउ ओहि के रँग राता, वह पुनि आह तोर मद-माँता।
नाउँ न जाना ठाँउ नहिँ सूना, चित्र सरूप हिए महँ गूना॥
तुव दरसन इच्छा मन वारा, देइ लाग सब खोलि भँडारा।
धरमसाला महँ होइ रसोई, भोजन आइ खाहिँ सब कोई॥
नित उठि भोर सोंटिया धावहिँ, जंगम जती ढूँढि लै आवहिँ।
सब की हिंछा पुरवहिँ दासा, एक हीँछा तुअ दरसन आसा॥
तोरे भाग कीन्ह अगुवाई, सूध पंथ मोहि दीन्ह देखाई।
एक दिन निसरेउँ करमगति, ओही नगर मँझार।
देखि सोंटिया लै गए, जहँ हुत राजकुमार॥ २५६॥

१—मि० सूखे धान परा जनु पानी। (क) बिधि चरित्र सोवत कोऊ चित्र सारि ले आए।

देखि कुँअर पुनि निकट बोलावा, पूँछेसि कौन देस तै आवा।
कौन नगर तुअ कौन नरेसा, भल गुन कौन तुम्हारो देसा॥
देखत ही सो कुँअर पहिचाना, आनँद कछु न जाइ बखाना।
कहेउँ वइसि सब नगर कि बाता, बरनेउँ चित्र जेहि क रँगराता॥
सुनतहि चित्र पाउँ लै परा, कहेसि वही चित सपने हरा।
कहूँ लेइ अलि भूलि बसेरा, चित्र कमोदिनि कँवल चितेरा॥
तोर रूप जब बरनि सुनावा, तजि छाया चित कायहि लावा।

राज साज सब छाड़ि कै, कीन्ह जोगि कै भेस।
लुकअंजन चख देइ कै, लै आयौं एहि देस॥ २५७॥

झरना तीर आहि सो जोगी, जो तुअ दरसन लागि बियोगी।
आसन मारि बैठ होइ तपा, नाउँ तुम्हार करै मुख जपा॥
तुअ तन परसि पौन जो जाई, सन्मुख होइ लेइ कँठ लगाई।
सीतल मंद समीर जो पावै, जरत आगि हिय लाइ सिरावै॥
लै आयौ दै सरवर आसा, आइ तीर अब मरै पियासा।
ठाँवहि ठाँव जरत पुनि आवा, आसा जल मुख मेलि जियावा॥
अब जो मरै सो बिरह बियोगी, हत्या तोहिँ जाहि लगि जोगी।

मूरि मंत्र गुन मेरि कै, लै आएउँ करि जोग।
अब न मोहिँ कछु लागई, बैद जान औ रोग॥ २५८॥

सुनि चित्रावलि चितहिँ हुलासी, कौंल कली रबि उदै बिगासी।
रही साँस मन हिय गा दंदू, सुनि कुलीन भा अधिक अनंदू॥
कहेसि परेवा तूँ सो कीन्हा, निक्ख[1] तोर मोहि जाइ न दीन्हा।
तैँ सो बचन अमिरित अस भाखा, निसरत प्रान फेरि घट राखा॥
मोहिँ लगि सकति होति जिय हानी, तैँ हनु[2] होई सजीवन आनी।
दानौ दुःख अहा घट पूरी, तै होइ भिम जमकातरि चूरी[3]॥
का तोरे नैँ वंछावरि सारौँ, लाजन एक जीउ नहिँ वारौँ।

१—स० निष्क = एक प्राचीन सिक्का जो सोने का होता था। यह चार असर्फी का होता था। द्रव्य, दाम, मूल्य = बदला। २—हनुमान। ३—नाश किया, तोड़ा।

तन पंचाल थाल सम, होन जो पूरिन प्रान।
काढि काढि तुम्र चरन पर, वारि देत मन मान ॥ २५९ ॥

पै यहि आहि जगत कर लेखा, अंध पताइ नैन जो देखा।
स्रवन[1] सोत[2] सुनि अमिरित बानी, नैनन नर्पान दूनि अधिकानी ॥
जस सुनिपावा स्रवन संतोषा, नैन देखाउ जाइ जियु धोखा।
मोर निकास न एकौ घरी, परी पायजो[3] पुनि साँकरी ॥
बैठे रहहिँ बार रखवारा, मारु मारु होइ झाँकत बारा।
धावन हटकै[4] दारुन धाई, रहस कूद लइ गै लरिकाई ॥
कहाँ आहि दहुँ सखियर बारी, सपनेहुँ नाहँ देखौं चितसारी।

एहि बिधि जोबन जाउ जरि, सिस्रुता होइ अनूप।
निसरत बरज न कोउ जेहि, देखौं जाइ सरूप ॥

अब फिरि जाहु कुँअर जहँ आही, कहेहु कहै तिय दरस-उमाही[5]।
जाहि लागि तुम्ह भएहु भिखारी, तुम्हते अधिक सो बिरह दुखारी ॥
तुम्ह दुख रैनि अँधेरि बिहाना[6], करु मन धीर भोर नियराना।
हौंँछा एक हिये हम पूजी, तुम्ह दरसन मम हौँछा दूजी ॥
अलप दिनन्ह आवै सिउराती, नेवत जँवावब जंगम जाती (क) ॥
तुम्ह तेन्ह संग बोलावब तहाँ, बैठहु हेठ झरोखा जहाँ।
पाछे दहुँ का करै गोसाईँ, नैन मिलाव होइ तेहि ठाईँ।

जोबन बेड़ी पग परी, गौनन महा सँदेह।
नाहिँ तो बरुनिन आइ कै, झारति तुम्र पग खेह ॥

औ पुनि आपन दरपन दीन्हा, कहेसि दिहेहु लै यह मोर चीन्हा।
कहेहु राखु लै हिरदै लाई, माँजत रहब परै नहिँ काई ॥

१—श्रवन। २—श्रोत। ३—पायजा = लोहे का चुल्ला जिससे कैदी का पैर बाँधा जाता है—एक प्रकार का अदुआ। ४—डाटती है।
५—आतुर। ६—बिगत हुई या प्रभात में परिणत हुई।
(क) पूजब शिवहिं चढ़ाउब पाती। पाठा०।

राखेहु सजग देसि जनि काहू , छाड़ि परेवहि जनि पतियाहू ।
नैन लाइ रहु दरपन माँहीँ , पहिले देखु रूप परिछाहीँ ॥
दरपन चखु ठहराइहि तोरा , बिगसि देखु तब दरस न मोरा ।
एकहि बार जो सनमुख देखा , होइ तूर[1] पर मूसक[2] लेखा ॥
मोरे रूप आहि सो जोती , बारह भान किरन की गोती ।

मांजत दरपन जीउ दै , नैनन्ह धरब अकास ।
जेहि दिन पूजै देव जग , पूजै हम तुम आस ॥ २६० ॥

दरपन लइ सो परेवा आवा , कुँअर आइ झरना ढिग पावा ।
लेयन मूँदि माल कर जपा , चित्रावलि चित्रावलि जपा ॥
कहेसि चेतु जोगी सिधि आई , लेहु सजग होइ गुरू पठाई ।
अस लौलीन कुँवर होइ रहा , बचन परेवा मारुत बहा ॥
तब गहि भुजा कुँअर झकझोरा , उघरे नैन देखि मुख घोरा ।
कहेसि कि जोगी बैठु सँभारी , सिद्ध कहत सुनु सवन उघारी ॥
मैँ सब बाति गुरु सोँ कही , औ जत बिरह बिथा तोर अही ।

रहस गुरू चित ऊपजा , सुनि जोगी कर भेस ।
मया बोलि औबहु असिष , दीन्ही लै आदेस ॥ २६१ ॥

कहेसि कि जौं इहवां लहु आए , चिंता करहु न सिधि अब पाए ।
आए लाँघि समुंद पहारा , अब नैनन महँ ठाँव तुम्हारा ॥
जो दुख मोहिँ लागि तुम्ह पावा , सो दुख सब मोहिँ ऊपर आवा ।
जनि जानेसि मैँ अकसर दुखी , तुमते दुखी दून ससिमुखी ॥
जेते चुभे काँट पग तोरे , सुनि सालैँ सबहियरैँ मोरे ।
औ छाला जत पायन्ह परा , फूटि पानि मम नैनन्ह ढरा ॥
औ जत पातल गड़ी अँकोरी[3] , सुनु मम पुतरिन समुहँ ददौरी[4] ।

आवत मारग और जत , सहा तेज रबिझार ।
होइ बैसंदर मोर हिय , जारि कीन्ह सब छार ॥ २६२ ॥

१—एक पर्वत का नाम जहां मूसा को खोदा का प्रकाश देख पड़ा था वा दर्शन मिला था। २—मूसा-एक यहूदियों का पैगम्बर जिसे ईश्वर तूर पर दिखाई पड़ा था। ३—अँकरी = ककटी। ४—ददोरा।

दरसन चाउ अधिक जिय माहीँ , अबहिँ उहाँ मोर आवन नाहीँ ।
भा दुर्जन जोबन हतियारा , जातेँ रहहिँ संग रखवारा ॥
अब दहुँ कब आई सिउराती , पूजब सिंभु चढाउब पाती ।
जहँ लहु जती सनासी अहहीँ , जोगी जती खपर जे गहहीँ ॥
मंदिर तर बैठाउब आनी , भरि भरि देब खपर अनपानी ।
तुमहुँ कहँ पुनि लेब बोलाई , हेठ झरोखा ठाँउ बिठाई ॥
ओही ठाँउ होइ नैनमिलावा , सिउ परसन होइ हीँछ पुरावा ।

ऊपर ग्रीषम तेज रवि , हेर सो नैन गँवाउ ।
दीन्हों आपनु मुकुर यह , जेहिँ महँ दरस मिलाउ ॥ २६३ ॥

यह दरपन तुम्ह लेहु सँभारी , जेहिँ महँ देखहु दरस पियारी ।
एही मुकुर सिद्धन कर गहा , मन की इच्छ इही मधि चहा ॥
चैादह भुवन रहहिँ एहि माहीँ , तिल समान कछु बाहर नाहीँ ।
नैन होइ गुरु अंजन आँजा , दरपन होइ नीक करि माँजा ॥
जहँ लगि धरती सरग पतारू , परै दिष्टि सब बाँच न बारू[1] ।
अब नहि लावहु चित बेरागा माँजन रहब जो मैल न लागा ॥
औ पुनि माँग देहु जनि काहू , मोहिँ तजि जनि आनहिँ पतियाहू ।

तब लहु सहियँ बिरह दुख , जब लगि आव सो बार ॥
दुःख गए तब सुक्ख है , जानै सब संसार ॥ २६४ ॥

सिउ सिउ करत बार सो आवा , चित्रावलि जानहु जिउ पावा ।
भोरेहिँ नेगिन्ह कहा हँकारी , बेगिहिँ करहु रसोईँ सारी ॥
आजु आहि सिउबार सुहावा , घर घर दंपति सिंभु मनावा ।
हिंछा एक हमारी पूजी , औ हींछा मन आहि न दूजी ॥
साजहु अनबन भाँति रसोई , जहँ लहु घिउपक जलपक होई ।
जोगी नाउँ जहां लहु पावहु , भरि खप्पर बैसाइ जेँवावहु ॥
होइ न काहु परोसत धोखा , मैँ पुनि देखब बैठि झरोखा ।

---

[1]—बालू = रेणु ।

बेगि होहु बिलमाहु जनि, आजु सो उत्तिम बार।
होंछा हरि परसाद हम, पुरवै मकु करतार ॥ २६५ ॥

जेगिन्ह साजी बेगि रसोई, जेहि के खात प्रेम रस होई।
सब मीठे परकार सलोने, भए न एकौ खटे अलोने॥
घीपक जलपक जेते गने, कटुवा बटुआ ते सब बने।
धौराहर तर ठाँउ सँवारा, जोगिन्ह जहाँ होइ जेवनारा॥
पाक रसोईं सोंटिया धाए, जोगी जती ढूँढि ले आए।
जोगी नाउँ जहाँ सुनि पावा, एक एक कहँ जाइ बोलावा॥
आदर सैां लै आवहिँ जोगी, जोगी सेवा करैं सो भोगी।

भोगी जोगी सेवई, इहै सो भोग आचार।
जोगी बाँचहिँ भोग सों, तबही पावैं सार ॥ २६६ ॥

चित्रिनि कहा हँकारि परेवा, कहाँ सो जोगि करों जेहि सेवा।
आइ बैठ सब बार बराती, दूलह कहाँ जाहि धनि राती।
धन सो दिवस धन बार सुहावा, धन सो घरी जेहि होइ मिरावा॥
सुनि कै बात परेवा बोला, ए सुंदरि वह रतन अमोला॥
कंचन बरन मलिन[1] जरि गयऊ, बिरह अगिन जरि कुंदन भयऊ।
आनि देखावैां रूप सुजाना, कसैा कसैाटी दहुँ कस माना॥
अपने जान धोख नहि लायेउँ, बारह बान सँपूरन पायउँ।

वह पिउ रतन अमोल नग, तू धनि कुंदन हेम।
जो बिधि जोगी है लिखी, जरै सो जरिया प्रेम ॥ २६७ ॥

चला परेवा कहि यह बाता, आवा जहँ जोगी रँगराता।
कहेसि कुँअर दुख रैनि बिहानी, उठि चलु अब सुखघरी तुलानी[2]॥
तोहि मया कै गुरु हँकारा, सिद्धि देन अब लाग न बारा।
आजु दरस जेहि लागि बियोगी, आजु सिद्धि जेहि कारन जोगी॥
आजु सो ग्रैाषध जेहि लगि पीरा, आजु प्रान फिर मिलिहि सरीरा।

---

[1]—मैल, मलीनता। [2]—आगई।

आजु सो भोजन जेहि लगि भूखा, आजु सो पान अधर जेहि सूखा ॥
आजु सो कैाँल भैाँर जेहि रंगू, आजु दीप जेहि लागि पतंगू।
आजु सेवाती घन बरिस, चातक हसि जेहि लागि।
आजु उदधि जल ऊमडेउ, बुझी हिये की आगि ॥ २६८ ॥

दरस नाउँ सुनि कुँअर हुलासा, जनु पंकज रवि सूर प्रकासा।
रहसा बदन पेम कर गहा, भा मजीठ केसर जो अहा ॥
कहेसि कीन सो बासर आजू, दरसन मिले होइ सिध काजू।
दाहिन भयो भाग हम आई, भयो भोर दुख रैनि बिहाई ॥
मोहिँ न करग केरि परतीता, दीरघ दुःख होइ लहु[1] बीता।
कहहि बहुरि मन मान न मोरा, जिउ देनिहार बचन है तोरा ॥
तैँ अब लहु जिउ घट महँ राखा, नाहिँ त जात सुआ तजि साखा।
कहेसि आजु है सोई दिन, अंत होइ दुख तोर।
सरग उए ससिहर किरन, पीयै पुहुमि चकोर ॥ २६९ ॥

---

(२०) दरसन खंड।

चला परेवा ले सँग जोगी, जहाँ बेद तह गैाने रोगी।
आनि झरोखा तर बैसारा, नखतन्ह महँ जनु ससि मनियारा ॥
भा अकूत[2] जहँ जोगिन्ह मेला, आवा गुरू होहु सब चेला।
जत कतहूँ ते होइ आदेसू, देइ असिष बैठाइ नरेसू ॥
बैठे जोगी पाँतिन्ह पाँती, धरे खपर सब भाँतिन्ह भाँती।
गेरुआ वस्त्र चढाइ बिभूता, शिव शिव बोलहिँ उठै अकूता ॥
कोई संख लै पूरै नादू, कोई करै जोगी गुनबादू[3]।
कोई बीन बजावई, कोइ धंधारी फेर।
कोई सुमिरनी कर गहे, जपे नाउ बिधि केर ॥ २७० ॥

ततखन भोजन अगिनित सारा, भाँति भाँति जे हुत परकारा।
आने सब पकवान जो कीन्हे, कथा बाढ तेहि नाँवन लीन्हे ॥

१—सं लघु, प्रा० लहु = छोटा। २—बात। ३—गुणानुवाद, प्रशंसा।

पहिले खपर जो भोजन भरा, लाइ गुरू के आगे धरा (क)।
ता पाछे जो खप्पर भरहीँ, जोगिन्ह के लै आगे धरहीँ॥
लागे खपर भरैँ चहुँ ओरी, दे दछिना बिनवहिँ कर जोरी।
मानहु सेवा देहु असीसा, जेहिते होंछा पुरवहिँ ईसा॥
जोगी जेवहिँ पीअहिं पानी, होइ सँतोष हियँ मनमानी।

मन बच क्रम बिनती करहिँ, हे देवन्ह के ईस।
सुंदरि हिंछ पुरावहु, कहहिँ लाइ भुइँ सीस॥ २७१॥

कुँअर न जेँवै बैठु झँवाई, रहा नैन दुहुँ दरपन लाई।
लागी बार न पूजी आसा, बिष भोजन भा जानु गरासा॥
अमिरित भोजन लै कर काहा, सो न मिला जा कहँ चित चाहा।
दरपन देखि सो देखै नाहीँ, उठै मरोर करेजे माहीँ॥
बरी आगि उर बाढ़ि सनेही, पिघिलत चली नैन जिउ देही।
तपि तपि मरै रहै धुनि माथा, बिनु दरपन कछु आउ न हाथा॥
बिरह न करै जनम भरि तेता, औधि आस कर छिन महँ जेता।

मान तेज बल सब घटा, हियँ सोच अधिकान।
औधि घरी नियराति है, निकसि जाइ जनु प्रान॥ २७२॥

चित्रावलि नौ सात बनाई, दरसन लागि झरोखा आई।
तन गुज्रराती चीर अमोला, लहर लेइ जनु उदधिहि डोला॥
देखि चकोर दिब्ब[1] मुख बारा, जनहु मयँक कीन्ह उजियारा।
भरे माँग मोती मनियारे, नखत पाँति ससि आइ जोहारे॥
सीसफूल कच ऊपर बासा, स्याम रैनि मधि सूर बिगासा।
भौंहैँ सौंह न होइ गियानू, लोचन मोचन सुरपति ध्यानू॥
बेसरि सरि न काहु कहँ छाजा, गयो अगस्त सरग कहँ लाजा।

पान खाइ भा अधर रँग, औ चौका रतनार।
परगट देखिय खरग जनु, रुहिर भरा हथियार॥ २७३॥

क—पहिले खप्पर भोजन भरा—आनि गुरू के आगे धरा। पाठा०। १—दिव्य।

सरवन खुटिला[1] बने सभागे, जनु गुरु सूक सवन ससि लागे।
तरिवन बना तरनि की कला, जनु रथ सजि सरग कहँ चला॥
गीँव माल मुक्ता मनि बसी, सुरसरि जनु सुमेरु हुत धँसी।
औ तन बनि कटाव की चोली, रही फूलि फुलवारि अमोली॥
भौंर भए दुइ स्याम सवाई, तेहि फुलवारिन्ह बैसे जाई।
बाँहन चूरी कंकन हाथा, देखि धुनहिँ गन गंध्रब माथा॥
कटि किंकिनि धुनि सुनि मन मोहै, चूरा चमकि चौंधि घन जोहै।

कहहिँ देवता अजहुँ हम, हेम होहिँ छिति जाइ।
परसहिँ बिछिया होइ मकु, चित्रावलि के पाइ॥ २७६॥

चित्रावली झरोखे आई, सरग चाँद जनु दीन्ह देखाई।
भयो अँजोर सकल संसारा, भा अलोप दिनकर मनियारा॥
चौंधे सुर सब सुरपुर माहीँ, चौंधे नाग देखि परछाँहीँ।
चौंधे महिमंडल नर नारी, चौंधे जल थल जिव सब भारी॥
चौंधे जोगी अहे तराहीँ, कस अँजोर कोउ जाने नाहीँ।
दरपन माँह कुँअर देखि छाया, गयो मुरछि सुधि रही न काया॥
सूर जोति दरपन महँ ऊई, यहि दुहुँ बीच कुँअर भा रूई।

ग्यान ध्यान सबही गयो, परा पुहुमि खसि राइ।
देखि झरोखा चित्रिनी, बिहँसि मँदिर महँ जाइ॥ २७७॥

हँसि पूछहिँ ते सखी सयानी, चित्रिनि भेद बात जिन जानी।
भाखहु सखि रैनिपति[2]-मुखी, सो देखा जेहि लगि हुति दुखी॥
नैन कसौटी कंचन कसा, बोलहु हियेँ बान कै बसा।
है वह रतन-पदारथ सोई, कुंदन मिलि जराउ जेहि होई॥
सो पुनि हमहिँ देखावहु आनी, जेहि बिनु तुम्ह जुग रैनि बिहानी।
तेहि क उतर चित्रावलि कहा, देखा अजहु बिरह कर दहा॥
ससिहर सुरनगरी जेहि रूपा, सूरज चाहि सो अधिक सरूपा।

१—कर्णफूल।　　२—चन्द्रमा।

देखत माथे भागमनि, निरमल रतन अनूप।
छपै न कैसहु जोग महँ, प्रगट देखिये भूप॥ २७८॥

दरपन माँहि निरखि मुखछाया, परा मुरछि गा जिउ तजि काया।
अबहीं कंचन कैसें देखाऊ, कुंदन भान जो होइ जराऊ॥
बिरह अगिन जरि कुंदन होई, निरमल तन पावै पै सोई।
अबहीं आहि सो कंचन काँचा, सहि न सका दरसन की आँचा॥
रंचक देखि दीप की करा[1], चौंधि पतंग पुहुमि खसि परा।
पुनि जो चेत होइ अब आई, तुम्हहूँ कहँ सो देखावौं जाई॥
बोलि परेवा कहा बुझाई, मरै न जोगि सँभारहु जाई।

कहहु जाइ दरपन अबहि, सनमुखहु ते न टार।
पुनि मैं झाँकब आइके, बैठहु आपु सम्हार॥ २७९॥

परा जोगि खसि पुहुमी माहीं, चेत न आपु सम्हारै काहीं।
कहूँ चक्र कहुँ खपर उदारा, कहूँ परा तिरसूल निनारा॥
कहूँ सुमिरनी कहूँ अधारी, जीउ बाजु सब भयो धँधारी।
जैा लहु तन जिउ दीप अँजोरा, मोर मोर कै सबै बटोरा॥
दीप बुझा घर भा अँधियारा, जो हुत जहाँ सो तहाँ बिसारा।
सिद्धन्ह भलेहिं पढा यह पंथा, नापी झारि मेखली कंथा॥
भार जानि के मंत्रा-झोली, गैाने पंथ खेलि कै होली।

आवै मान बसंत जब, फूलहिं तरुवर बेलि।
हैां पहिलहिं गुरु बचन लै, निसरैां होली खेलि॥ २८०॥

चेला देखि गुरू बिकरारा, दैारि आइ दुकि करहिं सम्हारा।
टोवहिं हाथ पाँव जिउ नाहीं, रही सास कछु हिरदै माहीं॥
गहे मुकुर कर जानि अँगूठी, छोरि न जाइ मरे की मूँठी।
सबै कहहिं अबहीं भल आहा, पल भीतर यह होइगा काहा॥
कोऊ कहै मिरगी कर भावा, कोऊ कहै सनपात[2] सँतावा।

१- कला। २—सन्निपात।

कोऊ कहै भोजन विष बासा, कोऊ कहै गिव गहा गरासा ॥
कोउ कहै काहु देखि जो भूला, परगट प्रेम कौंल मुख फूला।
कहहिँ चलहु सब जीउ लै, तजहु नगर कै सीँव।
जहाँ गुरू अस मारिये, चेला बाँच न जीव ॥ २८१ ॥

घरी चारि बीते भा चेतू, उठेउ सँभार सौंरि हिय हेतू।
आस पास पूँछहिँ सब जोगी, कहहु कया काहे भा रोगी ॥
उह सो गुटका कहाँ अडारा[1], जेहि बिनु सिद्ध होइ नहि पारा।
कहाँ सो बीरउ लोन अनूपा, जेहि सों होइ सोन औ रूपा ॥
तुम्ह अस गुरू सँभारहु नाहीँ, हम चेला दुहुँ काह कराहीँ।
अब सो कौन बिथा जिय केरी, औषध मूरि सो आनहिँ हेरी ॥
फिरि फिरि पूछहिँ चेला बाता, गुरू न बोल प्रेम मद माता।
रहा अचक मन जोगना, ना हँसि आउ न रोइ।
खाइ रह ठगमूरि सो, गयो जानि गँथ[2] खोइ ॥ २८२ ॥

आइ परेवँ सबद सुनावा, चेत मुछंदर गोरख आवा।
अस भिखारि हम देख न कोई, बारहिँ आइ रहै परि सोई ॥
जागत गयो सकल अँधियारा, गयो सोइ जब भा भिनुसारा।
काया पिंड कमाइ न पारा, गा होइ धूम अनल के झारा ॥
इन नैनन्ह तुम्ह रूप सो देखा, परेहु चौंधि तो कौन परेखा[3]।
अब फिरि गुरू मया तोहि कीन्हा, लेहु सँभारि सिद्धि जो दीन्हा ॥
रहहु नैन पुनि दरपन लाई, चाँद झरोखा देखहि आई ॥
इन्ह नैनन्ह देखै न कोइ, वह सो रूप अपार।
हिये नैन पट खोलि कै, देखहु राजकुमार ॥ २८३ ॥

सिद्ध नाउँ जोगी सुनि जागा, गा बैराग भयो अनुरागा।
दरपन सौंह लाइ चषु रहा, काहु दिष्टि कुंज मन गहा ॥
सरग उदै भौ दिनकर केरी, कुँअर जोति दरपन महँ हेरी।
नैनन्ह भीतर जोति समानी, जोतिहिँ मिली जोति ठहरानी ॥

१—डारा = फेँका। २—सं० ग्रन्थ गाँठ। ३—परीक्षा।

अस परगट भा रूप सरेखा, सैान जो सुना सहस गुन देखा।
पाइ रूप जल नैन पियासे, जिउँ जिउँ पीवैँ अधिक पियासे॥
पुनि भा सोच हिये कछु आई, राता बदन गयो पियराई।
मान दरस महँ कौन गुन, चढ़ै सोच चित आइ।
देखि रूप झुरवै मनहि, पुनि जस करहुत चाइ[1] ॥ २८४ ॥
ससि के सँग जो अहैँ तराईँ, तेऊ सरग चढ़ि देखन आईँ।
देखि कला रबि की जो अही, गई खोइ सुधि गात न रही॥
बोलीँ सबै देखि ससि ओरा, धनि तू धनि जाकर अस जोरा।
तस दुख देखि तु अस पिउ लहिए, अस पिउ लागि कस न दुख सहिए॥
तुम्ह ससिहर यह रबि उजियारा, तुम्ह कुंदन यह नग मनियारा।
तुम्ह रानी यह आहि सो राजा, तुमही कहँ पै अस बर छाजा॥
तुम्ह अंबुज यह दिनकर साईँ, मिलै कँवल अब रहसि तराईँ[2]।
अब बिधना सो कौन दिन, मिटै हिये जेहि दुंद।
ससिहर मिलै चकोर कहँ, तरइन होइ अनंद ॥ २८५ ॥
पुनि नेगिन्ह सोँ कहा बुलाई, सिउ सेवा सुख उपजेउ आई।
जोगिन जेँवत कौतुक होई, कौतुक देखि चाह सब कोई॥
औ पुनि दान देई चित भावा, इहाँ क दीन्हा तहँ पर पावा।
कौतुक पुनि दोऊ सँग पाई, जोगी रहहिँ दिवस दस छाई॥
नित उठि भोर करहिँ जेवनारा, उभय भाँति साजहु परकारा।
भरि भरि खपर परोसा देहु, दै दै दान आसिषा लेहु॥
बहुरै नेगी अग्या मानी, चेरी करैँ कहै जो रानी।
ठाकुर अग्या होइ जब, सबै करैँ जो नेगि।
जहँवाँ कारज पुन्य कर, कसन सँवारैँ बेगि ॥ २८६ ॥
लाग होइ प्रति दिन जेवनारा, जोगी जंगम करहिँ अहारा।
चित्रावली झरोखा आही, कुँअर देखु दरपन पर छाँही॥
दोऊ उदधि पै दोउ पियासे, पीपी जल पुनि रहहिँ पियासे।

१—चाह। २—सं० तरणि = सूर्य्य।

देखत काहु होइ न साँती, दिवस चारि बीते एहि भाँती ॥
हुत जो कुटीचर देस निसारा, वै पुनि सुना जोगि जेवनारा।
कहेसि कि महुँ जोगि होइ जाऊँ, मकु परसाद जाइ कछु पाऊँ ॥
सनमुख भाग होइ जौ आई, जोगिन साथ लेउँ सिधजाई।
आइ सो जोगिन्ह महँ मिला, कै तपसी कर भेस।
बोले सबै कि गुरु सेव हौं, जाइ करो आदेस ॥ २८७ ॥

---

(२१) कुटीचर खंड।

गुरू पास चेला चलि आवा, चित्र चीन्ह मुख देखत पावा।
औ दरपन चित्रावलि केरा, परतष[1] देख कुँअर जेहि हेरा ॥
मन महँ कहेसि आह यह सोई, जाहि लाग यह कौतुक होई।
एही लागि होइ जेवनारा, एही लागि एता बिस्तारा ॥
एही लागि हम देस निसारे, एही लागि हम पुनि पुनि जारे।
अब मिलि लेउँ सो आपन दाऊँ, पुनि अस दाँउ हाथ कब आऊ ॥
बैठो जाइ कुँवर के पासा, कहेसि कि हम चित्रावलि दासा।
जैस परेवा तैस हौं, सो पठयो तुम्ह पाँहि।
कहेसि कि कब लगि ससि किरन, कुमुद पियै जल माँहि ॥२८८॥
तोहि देखि सो कौंल हुलासा, आए भौंर होइ जेहि आसा।
कौंलहि सूर सँतोष न देई, जौ लहु भौंर बास नहिँ लेई ॥
कसा कसौटी निकसा बाना, कौंल क मुख मधुकर पहिचाना।
अब उठि चलहु कौंल बस जहवाँ, सेज सुगंध सँवारी तहवाँ ॥
यह विचारु तूँ जोगि सयाना, जल न पाव पावस ऋतु आना।
चंदबदन देखहु भरि नैना, औ सुनु सरवन अमिरित बैना ॥
अधरन्ह टूटि अधर रस लेहु, भुजनि भुजा आलिंगन देहु (क)।

१—प्रत्यक्ष। (क) यह पद उर्दू की प्रति में नहीं है।

लीन्हेसि दरपन माँगि पुनि, कहेसि चलहु अब राय।
कुदिन आइ नियराइ जौ, पहिलेहिँ बुधि मिटि जाय॥ २८९॥

जोगी अंग समाइ न फूला, बैन कुटीचर की सुनि भूला।
कहिसि कि भाग निसेनी आई, अब चढ़ि सरग मिलौं ससि जाई॥
देखौं सौंह जाइ सो रूपा, नैन सिराहिँ जरे जो धूपा।
अंक म गहौं जो हिया सिराई, अमिरित बैन सुनौं अब जाई॥
अस न जान अमिरित विष बसा, यह विष नाग चाह उर डसा।
बहु दुख पाइय ससिहर छाया, कैसे चढ़िय वेगि उठि काया॥
ऐसे केत बिगूचे[1] पाए, थोरा छाड़ि बहुत कहँ धाए॥

कीन्ह न सोंच कुँअर जिय, चल्यौ कुटीचर संग।
कोऊ न सकै सँवारि जो, कीन्ह चहै बिधि भंग॥२९०॥

कहा कहौं मैं जग व्यवहारा, यह मन कैसहुँ मरै न मारा।
तपि तपि लुहि लुहि एक जो पावा, होइ न सँतोष दोइ कहँ धावा॥
पाछिल दुःख बिसरि सब जाई, सुख ऊपर सुख ढूँढ़ै धाई।
सोन लागि जो पाव सुमेरू, रतन लागि रतनाकर हेरू॥
मुकुता होहिँ समुँद के ढेरी, पुहुमी होइ सरग बरु चेरी।
करै जोहार सकल संसारा, भँवहिँ न नैन बाजु जेहि झारा[2]॥
विक्रम नैन पुहुमि सब आँटी, भरी जाइ मरघटि की माटी।

कहाँ सो विक्रम सकबँधी, कहाँ सो राजा भोज।
हम हम करत हेराइ गे, मिला न खोजे खोज॥ २९१॥

वह लै मुकुर चला होइ आगे, जाइ कुँअर पुनि पाछे लागे।
झोली हुत एक अंजन काढ़ा, सनमुख कुँअर भयो फिर ठाढा॥
कहेसि कि यह लुकअंजन सोई, नैन दिये, जो देखन कोई।
सो चित्रावलि पठवा तोकाँ, नैनन्ह देइ चलहु सिवलोकाँ[3]॥

१—धोखा। बहाली। २—ईर्षा। ३—कैलाश = स्वर्ग।

रहसि कुँअर लुकअंजन लीन्हा, वेगिहिँ दुहुँ नैन महँ दीन्हा।
अंजन देत भयो अँधियारा, रहा अचक तब राजकुमारा॥
भयौ असूझ न जब कछु सूझा, दूत भेद तब मन महँ बूझा।
हाथ मलै औ सिर धुनै, अंजन धोवै रोइ।
पहिलहिँ जो न बिचार भा, अब रोए का होइ॥ २९२॥

कहेसि कुँअर सुनि हौं सो अहऊँ, आपन भेद बात तोहि कहऊँ।
तोर चित्र चितसारी हुता, देखा चित्रसेन की सुता॥
उपजा प्रेम चित्र के देखे, कौतुक आन न आनै लेखे।
मोरे जिय भल काज न आवा, रानि लाई मैं चित्र धोआवा॥
ते रिस लगि हौं देसनिसारा, अब लहुँ सहा बिरह की झारा।
तैं सब कीन्ह मोर सुखहानी, गादुर[1] भयों सूर सो रानी॥
खोजत रहेउँ मिलेहु नहि राऊ, पाएउँ आजु मिलेउ सो दाऊँ (क)।
कहाँ सो गोडिया तुच्छ तन, कहाँ किसन[2] अस राउ।
वैरी जो बस कै मिलै, लेइ सो आपन दाउ॥ २९३॥

यह कहि गहि भुज कुअर उठावा, सात समुंद्र पार लै आवा।
डारेसि लै तेहिँ खोह अँधेरा, जहँ न मिलै दिन दीपक हेरा॥
दिन न सँचार किरन रबि जहाँ, रैनि नाहिँ ससि तरई तहाँ।
अँधे ठांव अँधेरी पाई, जनहु मसि ऊपर मसि लाई।
चला तहाँ तजि कै दुखदाना, चलती बेर कहेसि एक बाता॥
बहुत कोह उपजा मन माहीँ, जीउ न मारौं जानेसि काहीँ।
जस हौं बिरह अगिनि महँ जरा, तस तू जरसि इहाँ अब परा॥
मैं तोहि डारा लै तहाँ, जहाँ न डोलै पाँखि।
जो जस करै सो पाउ तस, कुँअर देखि लै आँखि॥ २९४॥

गा उठि गुरू देखि सब चेला, भयो भंग जहँ जोगिन्ह मेला।
जत कत चले झारि मृगछाला, पंखी सबह[3] डोल जनु पाला॥

१—चमगीदड़। (क) यह उर्दू की प्रति मे नहीं है। २—कृष्ण। ३—प्रातःकाल।

उठि उठि आपन मारग गहहीँ, गुरू बाजु चेला कहँ रहहीँ।
चले पंखि उडि पीँजर टूटा, उड़सा नाच पखाउज फूटा॥
खिरिनि खोलि झरोखा बारा, देखै कहा बसंत उजारा।
ना सो फूल न सो फुलवारी, दिष्टि परी उकठी सब बारी॥
ना वह भौंर जाहि रँग राती, बिहरै[1] लाग कौल कै छाती।

विगसत कौल न बार भइ, गयो अथै जग भान।
मारेसि ईँट देखाइ गुड़, सोई भा उपखान[2]॥ २९५॥

यह कहि कौल कली कुँभिलानी, भा रवि अस्त सूखि गा पानी।
कौल देखि सब कुमुदिनि धाईँ, ससि गरास भा डरीँ तराईँ॥
कहहिँ कि यह अजुगुत[3] भा कहा, राहु न कोउ चाँद कँ गहा।
इहै घरी हम बारन[4] अहहीँ, लागी सोन कहन पुनि रहहीँ॥
आनन ढाँक देखाउ न काहु, चाँद सँपूरन लागै राहु।
लागीँ सब मिलि करै सम्हारा, पूछहिँ कस भा जीउ तुम्हारा॥
चंद बदन जो दमकत अहा, कहा मलीन रानि तब कहा।

का पूछहु किन देखहु, खोलि झरोखा बार।
फूला रहा बसंत जहँ, तहाँ उडै अब झार[5]॥ २९६॥

ऋतु विपरीत भई चहुँ ओरी, गा बसंत तब लागी होरी।
पलहीं माहँ भयो सब कहा, सोँतुक[6] हा कि सपन विधि अहा॥
धापउँ देखि रही घर की सी, गई अथै हरिचंद पुरी सी।
चेटक लाइ गयो कछु जोगी, उठिगा बैद जियै नहिँ रोगी॥
जोगिन आह छंद बहु सीखा, घर घर फिरहिँ लेत पुनि भीखा।
जे जग छार लपेटी कया, तेहि का होइ काहु की मया॥
तासौं सकति प्रीति तुम्ह लाई, जो नहिँ भयो काहु कर आई।

१—विहरना = फटना। २—उपाख्यान = कहानी। ३—सं० अयुक्ति = असंभव, अचंभा। ४—मना करती। ५—धूल। ६—जागृत अवस्था।

काज परा तेहि कठिन सौं, जे न कोइ अपनाइ ।
गयो अकारथ यह जनम, बरु न जनमती माइ ॥ २९७ ॥

जो जानत वह अस निरदई, कत हौं प्रीति करन घर गई ।
जरौं मरौं जिउ उठै परेखा, दीप पतंग भयो मोर लेखा ॥
सहस[1] पतंग जो आपु जरावा, एक न दीपक भाएँ आवा ।
हम तन इहाँ रहा अधजारा, गयो दीप घर कै अँधियारा ॥
कहाँ जाउँ तन पंख न पाऊ, मरौं खाइ विष इहै उपाऊ ।
कर हुत रतन जाइ जो खोई, भागन बहुरि पाव जग कोई ॥
आपन दोष कहौं का काऊ, गइउँ सोइ लाग्यो ससि राहू ।
सीख लेहु सखि मोहि सौं, जनि करि हठ मकु खोउ (क) ।
प्रेम पंथ चढ़ि सोउ जो, सो ऐसैं पुनि रोउ ॥ २९८ ॥

सखिन्ह कहा सुनु चित्रावली, वह सो भौंर तुम्ह पंकज कली ।
फूल फूल करि मधुकर फेरा, आइ कौंल पुनि लेइ बसेरा ॥
जौ तैं जीव ओहि पर परछेवा, उहाँ परिहि होइ घिरिनि[2] परेवा ।
पै दिन दस पुनि काढ़हु पीरा, मिलिहि आइ जौ जीउ सरीरा ॥
गुपुत रहहु कोउ लखै न पावै, प्रगट भएँ कछु हाथ न आवै ।
गुपुत रहे ते जाइ पहूँचै, परगट बीचहि गए बिगूचै ॥
रहिये गुपुत भेद नहिँ कहिये, जैसा परै तैसि अब सहिये ।
खीन मयंक जो दुइज भो, पुनि सो मयंक अकास ।
ए सब बिधिना के चरित, जनि जिय होउ निरास ॥ २९९ ॥

---

(२२) अजगर खंड ।

कुँअर अँधेरैं हा जहँ परा, बिधिना कहँ विनवै भा खरा ।

(क) सीख लेहु सखि मोहिँ सों, नगर जेकर हुत खोउ ।
प्रेम पंथ चढ़ि सोउ जो, सो पुनि यहि विधि रोउ । पाठा० ।

१—सहसा । २—घिन्नी = चक्र ।

ए गुसाँइ जग—रच्छ बिधाता, तोहि बिनु ग्रौर न दुख संघाता (क)॥
ग्रह निसि जगत कीन्ह सब तोरा, तैँ सिरजा अँधियार अँजोरा।
तहीँ सरग ससि सूर बनावा, तहीँ कीन्ह दधि ग्रंत न पावा॥
तहीँ सकल गिरि मेरु सँवारा, तैँ सब कीन्ह नदी ग्रौ नारा।
तुहीँ पताल कीन्ह बलि बासू, तैँ पति ग्रौर सबै तोर दासू॥
तुहीँ सोई जो सब जग पूजा, सुमिरौं काहि ग्रौर नहिँ दूजा।

तैँ सुखदायक दुहूँ जग, दुख भंजन जेहिँ नाउँ।
नहीँ बिछोवसि[1] दुइ मिले, तहीँ करसि एक ठाउँ॥३००॥

मैँ जबहीँ जिय सँरा तोहीँ, तहीँ मया करि काढ़े मोहीँ।
कूप माहिँ जे सुमिरन साजा, काढि किये तैँ देस के राजा॥
प्रेम बिछोह ग्रंध जेहि कीन्हे, बहुरि मिलाइ जोति तेहि दीन्हे[2]।
ग्रगिन जरत जे तहीँ सँभारा, किये ताहि फुलवारि अँगारा[3]॥
मैँ ग्रब परा ग्राइ तेहि ठाऊँ, ग्रपनो सकति निकास न पाऊँ।
मकु तैँ होइ दयाल बिधाता, तोरे निकट कहाँ यह बाता॥
मैँ जस हो तस कीन्ह गोसाईँ, ग्रब तूँ कर जस चाहसि साईँ।

हेरु गोसाईँ ग्राप कहँ, मोरे काँ जनि हेरु।
ग्रापन नाउँ दयाल गुनि, हो दयाल एहि बेरु॥ ३०१॥

जहाँ कुँग्रर नित सुमिरन ठाना, ग्रजगर एक ग्राइ नियराना।
ग्रोदर[4] खोह जाहि नहिँ ग्रंतू, लीलै हस्ति ग्रौर को जंतू॥

(क) दुख सुख दाता—पाठा०। १—बिछुड़ाता है। २—यूसुफ़ को उसके भाइयो ने कुएँ में फेंक दिया था और कह दिया था कि यूसुफ को भेड़िये खा गये। उनका बाप शोक में ग्रंधा हो गया। यूसुफ़ को कारवान ने निकाल कर मिश्र में बेचा। वह वहाँ भाग्यवश राजा हो गया। कनान में काल पड़ने से उसके भाई मिश्र गये। वहाँ यूसुफ़ ने उनकी रक्षा की। चलते समय अपना वस्त्र दिया और कहा इसे अपने बाप को देना। उन लोगों ने जब कपड़ा अपने अंधे बाप को दिया तो वह उस कपड़े को मुँह पर डालने से देखने लगा। ३—हदीस में लिखा है कि खलील पैगंबर को काफिरों ने चिता में फूंक दिया था पर खुदा ने उनके लिये चिता की आग और अंगारे को फूल कर दिया था। ४—उदर = पेट।

सिखर डाँग[1] तस आवै चला, बन बीहर सब काँ दलमला।
भौ तहँ पाइस मानुष बासा, खोह लाइ मुख पैँचिस साँसा॥
पाहन रूख डार भरमाना, साँस संग पुनि कुँअर समाना।
गयौ कुँअर पुनि साँसहि लागी, उठी खात ओहि ओदर आगी॥
परयो उलटि भा उदर दुहेला, डारिस्नि[2] उँगलि जेन हुत लीला।

भाजा अजगर जीउ लै, परा कुँअर बिसँभार।
जे तापे बिरहा अगिन, तेहिँ को निजवै[3] पार॥ ३०२॥

कुँअर सँभारि बैठु पुनि तहाँ, नैन न जोति जाइ उठि कहाँ।
टोइ टोइ तहँ ठाँव सँवारा, टारे पाहन औ द्रुम डारा॥
बनमानुष एक तेहि बन अहा, कुँअर चरित सब देखत रहा।
कहेंसि जाहि बिधि चहै न मारा, अस अहि ओदरहु ते निसारा॥
जौ जम सौं बिधि जीउ उबारा, रहे न नैन जोति बिष झारा।
कौन जिअन जो नैन न जोती, सोत न लहै पानि बिनु मोती॥
हाथ पाँव बर बुधि सब आही, एक बिनु नैन करै का काही।

मान न बातैँ इमि करै, जौलहु घट महँ पौन।
बिधिना एतना राखु थिर, नैन बैन औ सौन॥ ३०३॥

बिधि तेहि हिये दया उपजाई, नियरे होइ पुनि देखेसि आई।
देखि रूप मन किहिसि बिचारी, यह सुरपुर हुत दिये अँडारी[3]॥
जग न होइ अस कोई मानवा, निहचै यह गन गंध्रव छवा।
अब पूछौं एहि की सब बाता, कौन जाति कस कीन्ह बिधाता॥
केहि अभाग के दीन्ह सरापा, अस कारन दहुँ भौ केहि पापा।
कहेसि रे अंध बिधाताद्रोही, कहु सो सन सत पूछौं तोही॥
जो सत संग साथ लष गोती, हियेँ सत्त लोचन सिर जोती।

सती मरै जौ सत चढ़ै, सत्त सहस दस आउ॥
तन मन धन बरु जीउ किन, जाउ सत्त जनि जाउ॥ ३०४॥

१—पहाड़। २—निगलना। ३—गिरा दिया।

सत्य सपत दै पूछौं तोकाँ, का तोर जाति जन्म केहि लोकाँ।
का तोर सरग देव(क) औतारा, इंद्र सराप लहे महि डारा॥
कै रे जनम बल बासुकि देसा, कै तपि मही आइ परवेसा।
केहि गुन सकति इहाँ तैँ आवा, मानुष इहाँ न आवै पावा॥
जौ मानुष तौ गुन कहु मोहीँ, जेहि तैँ साँप न निजवै तोहीँ।
कै तैँ जनम अंध चषु पाए, कै अबहीँ भौ अहि के खाए॥
देखौं सब मानुष के भावा, कहु सत इहाँ कौन लै आवा।

देखत लोना रूप तोर, छोह उठै जिय मोहिँ।
कहेसि सत्त सत पूछौं, सपथ सिंभु दै तोहिँ॥ ३०५॥

---

(२३) बनचर खंड।

बनचर बचन कान जब परे, कुँवर रोम तन भै सभ खरे।
मानुष जानि रहस उपराजा, कहिसि किहैं मानुष विधि साजा॥
जंबूदीप देस जग जाना, धरनी धर पितु पूत सुजाना।
दच्छिन दिसा गएउँ होइ जोगी, चित्रावलि के रूप वियोगी॥
रूप नगर जहँ चित-मन-हरा, तहाँ जाइ काहु हौं छरा।
दै अंजन चषु कै अँधियारा, छिन महँ इहाँ आनि हौं डारा॥
तैँ कहु सत को हसि का नाऊँ, गाढ़े मीत भएसि एहि ठाऊँ।

कहेसि कि जस तूँ तैस हौं, कोइ बस बन कोइ देस।
हम सब सेवक ताहि के, जो जग दुहूँ नरेस॥ ३०६॥

अब चित चिंत करहु जनि भाई, कहौ मीत तौ करौं उपाई।
औषध देउँ नैन होइ जोती, अब फिरि पानि चढ़ै चख मोती॥
यह कहि बनचर बन कहँ धावा, घरी चारि बीतेँ पुनि आवा।
अंजन घसा पात पर कीयेँ, नैन्हन होइ जोत जेहि दीयेँ॥

(क) लोक—पाठा०।

कुँअर हाथ पर पात अँड़ारा, आपु ठाढ़ भा कूदि निनारा[1]।
कहेसि देहु यह अंजन आँखी, हम तुम बीच बिधाता साखी॥
कुँअर नैन लै अंजन दीन्हा, गा तम मेटि उदै रवि कीन्हा।

परा कुँअर कहँ दिष्टि जग(क), मन बच कहेसि पुकार।
वपु निरमल जग सूर हो, जो जग पर उपकार॥ ३०७॥

दिष्टि परा बनचर जो अहा, मोहि कौं देख कुँअर तब कहा।
नियरे आउ रे परउपकारी, तन मन जीउ करौं बलिहारी॥
कहसि तो हौं नियरे चलि आवों, तुव चरनन रुचि आँखें लावों।
निमिष न जाइ निखादे तोरा, तैं सहदेव धनंतर मोरा॥
कहेसि कितै केहि देसक अहई, छाँडि झूँठ कोउ साँच न कहई।
आन क दरब लेहु जिउ मारी, निसि चोराइ दिन कइ बटमारी॥
आन क मानुस आन जो होगा, कहु परतीत कौन तेहि केरा।

जौ हम जानत सत्त बिनु, असत न तहाँ समाइ।
छाड़ि देस संपति सकल, कत रहते बन आइ॥ ३०८॥

यह कहि बनचर बन कहँ चला, देखि देखि हाथ कुँअर पै मला।
रहेउ ठाढ़ सनमुख चखु लाई, जौ लहु बन मों गयो छिपाई॥
कहेसि हेतु जो इन्हके नाहीं, तौ तजि देस रहहिँ बन माहीं।
अब उठि चलौं तजौं एहि ठाऊँ, करम सँजोग पंथ मकु पाऊँ॥
चला कुँअर उठि बन खँड माहीं, संग न कोउ बाज[2] परछाहीं।
सौंरि हियँ चित्रावलि नेहाँ, नैनन्ह चुवै मघा कर मेहाँ॥
नदी नार बन चहुँ दिस फूला, भटकत फिरै कुँअर तहँ भूला।

पंथ न सूझ असूझ बन, चलत राह नहिँ पाइ।
खन बैसइ खन धावइ, खन रोवइ बिलखाई॥ ३०९॥

१—नियारे अलग। (क) दिष्टि परा जग कुँअर कहँ। पाठा०। २—मिला।

(२४) हस्ती खंड ।

बीते चलत पाख दुइ चारी, परा दिष्टि एक कुंजर भारी ।
ऊँच सीस जनु मेरु देखावा, सूँड़ जानु अजगर लरकावा[1] ॥
तरुवर जनु चबाइ दुइ दांता, डारत आउ खेह मदमाता ।
धावत जाइ पुहुमि जनु धसी, आवै पीठ सरग सों खसी ॥
भागहिँ भौंर हस्ति मद बासा, कुँअर देखि जिय भयो तरासा ।
कहेसि मीचु अब पहुँची आई, एहि आगे कहँ जाब पराई ॥
अस्त्र नाहिँ जो सम्मुख धाऊँ, मारौं एहि जैपत्र[2] जौ पावौं ।

जनम अकारथ जगत भा, गई अमिरथा आउ ।
चित्रावलि के दरस कर, रहा हियँ पछताउ ॥ ३१० ॥

अस्त्र न जो सनमुख होइ लरौं, जो निजु मरन भागि का मरौं ।
कुंजर धाइ कुअँर पर परा, रहा ठाढ़ ही नेक न डरा ॥
धाइ लपेटि सूँड़ सों लीन्हा, चाहेसि मूड़ डाढ़ तर दीन्हा ।
कुअँर हिये बिधि सँवरा तहाँ, जो बिधि केर मीचु तेहि कहाँ ॥
ततखन राज-पंछि एक आवा, परबत डोल जो डैन डोलावा ।
ओहि हस्ती पर टूटा आई, गहि ले उड़ा सरग कहँ जाई ॥
सूँड़ समेटि जो कुंजर रहा, कुअँर न छूट डरन्ह सुठि गहा ।

उड़ा जाय अंतरिख महँ, दीखै जैस पहार ।
घरी चारि महँ लै गयो, सात समुंदर पार ॥ ३११ ॥

बारिधि तीर जहाँ हुत रेतू, परा तहाँ छुटि कुअँर अचेतू ।
भरि गये सीस देह सब खेहा, जेहि तन नेहाँ गति देहि एहा ॥
जेहि के हिए बस प्रान पियारा, संतत देह चढ़ावै छारा ।
जिमि जिमि छार देह पर चढ़ा, तिमि तिमि रूप मुकुर जिमि बढ़ा ॥
छार चढ़ावैँ बहु गुनि जोगी, छार मरम का जानै भोगी ।
मानुस देह छार हुत कीन्हा, छारबुद्धि[3] जिन छार न चीन्हा ॥
कवन जनम केहि तप करतारा, मूँठी छार अमित बिस्तारा ।

१—लटकाया हुआ । २—जयपत्र । ३—बुद्धिहीन ।

देखि बड़ाई छार की, बसेउ आइ करतार।
छारहि तै कीन्हेसि सबै, अंत कीन्ह पुनि छार ॥ ३१२ ॥

पहर एक गइ उठा जो चेती, देखा परा समुँद की रेती।
ना सो हस्ति जेहि के बस अहा, ना सो पंछि जो कुंजर गहा ॥
सौंरिस हिये विधाता सोई, जेहि के करत खेल सब होई।
पै गोसाइँ तै दुहुँ जुग राजा · ए सब चरित तोहि पै छाजा ॥
जिअतेहिँ मारि मिलावसि छारा, चहसि तो देसि फेरि औतारा।
गिरि परबत कै पानि बहावसि, पानिहि साजि सुमेरु देखावसि ॥
छत्रिन अछत[1] राँक सम करई, चहइ तू छत्र राँक सिर धरई।

भंजन गठन समस्त तू, और न दूजा कोइ।
तहीं अहा अरु है तहीं, औ पुनि आगे होइ ॥ ३१३ ॥

कुअँर सवँरि चित्रावलि नेहा, उठि कै चला झारि तन खेहा।
गिरि परवत औ कानन घना, प्रेम प्रसाद न लेखे गना।
निडर जाहि तेहि बन खँड माहीँ, जम सौं बाच्र मीच अब नाहीँ ॥
बीता चलत मास एक सारा, बन औरान[2] औ भा उजियारा।
रहसा हिए देस जब पावा, दृष्टि परा एक नगर सोहावा ॥
कहेसि जाउँ अब नगर मँझारी, मकु मिलि जाय कोऊ बैपारी।
पूछि लेहुँ तेहि नगर की बाटा, चित बिकान है जेहि की हाटा ॥

देखेसि पुनि फुलवारि एक, फूले फूल अमोल।
अलि गुंजारहि जहाँ तहँ, करहिँ मजोर कलोल ॥ ३१४ ॥

देखि अपूरब ठाउँ सोहाई, कुअँर तहाँ छिनु बैठेउ जाई।
संपति कुसुम देखि चित लावा, लोचन जरे निहारि सिरावा ॥
जुही फूल दिष्टि भरि हेरा, लखै भाव चित्रावलि केरा।
देखि गुलाल अधर चित चढ़ा, दारिम दसन रहसि हिय बढ़ा ॥
चंपक माँहि सरीर की शोभा, नारँगि लखि उरोज मन लोभा।

१—अछत्र = निश्छत्र। २—समाप्त हुआ।

अली माल फूलन पर हेरी, होइ सुरति अलकावलि केरी।
गीव मजोर देखि मन आवा, लोचन खंजन आइ देखावा॥
जाहि होइ चित की लगनि, मूरख सों सो दूरि।
जान सुजान चहुँ दिसि(क), वोहि रहा भरि पूरि॥ ३१५॥

---

(२५) कौलावती खंड।

सागर-गढ़-पति सागर राजा, सागर नाउँ ओहि पै छाजा।
दारिद गहा आउ जो दुखी, एकन लहर करै पै सुखी॥
तेहि कै सुता कौंलापति[1] बारी, सखिन साथ आई फुलवारी।
सब मुगुधा[1] जोवन अँगिराना, कोइ ज्ञाता[2] कोई अज्ञाता[3]॥
काहु तन अजहु लरिकाई, काहु घेरि लीन्ह तरुनाई।
जोवन सिसुता सम तन काहु, कोउ न जान होई कस नाहु[4]॥
सबै कँवल जनु सूरन देखा, सब कुमुदिनि जनु चाँद न पेखा।
अजहूँ मनमथ उपनत[5], पेम न जानहि नाम।
अजहुँ काहु देखा नहीँ, सुरति[6] सेजसंग्राम॥ ३१६॥
कौंलावति गुन सागर रानी, पढ़ी अमर पिंगल सुर[7] ज्ञानी।
लागी तजन गात सिसुताई, आए सँचार कीन्ह तरुनाई॥
आइ जो रतिपति गात समाना, भूषन चाउ हिये अधिकाना।
घरी घरी पुनि लाज सुहाई, लोचन दसन झाँपि कै जाई॥
भौहँ धनुख उतँग होइ चढ़ी, लोचन कोर दुहूँ दिसि बढ़ी।
उर अँगिरात भाँति अति भली, कँचन बेलि कपूर की कली॥
राजत रोमावली सोहाई, कुँदन कोविदार सीं खाई।

(क) कइ सुजान सो जानइ। पाठा०।

१—मुग्धा। २—ज्ञात-यौवना। ३—अज्ञात-यौवना। ४—नाथ = पति।
५—उत्पन्न। ६—संभोग। ७—स्वर = संगीत।

सिसुताई तन कोटि गहि , रही अटक दिन चारि ।
चलि निकसि पुनि हारि कै, तरुनाई बरि आरि ॥ ३१७ ॥

कौंलावती आइ फुलवारी , फैलि गईं चहुँ दिशि सब बारी ।
देखि पुहुप चित भयो हुलासा , लागी तोरन कुसुम सुबासा ॥
गूँधहि हार गीँव लै डारहि , करहि गेँद आपुस महँ मारहिँ ।
मारन सीस केस मुकुलाई[1] , धावत उर अंचल फहराई ॥
खेलहि त्रिया सबहिँ बिलम्हाई , रति[2] के रूप रंभ[3] की जाई ।
साजि गेँद कौंलावति रानी , सखी एक कहँ मारि परानी[4] ॥
हँसति आय धाइ कै तहवाँ , कुँअर सुजान बैठ हुत जहवाँ ।

देखत रूप कुँअर कर , रही अचक होइ ठाढ़ि ।
जम होइ हिये समाइ गा , लीन्हेसि जिउ जनु काढ़ि ॥३१८॥

आनन देखि रही खिन खरी , पुनि मुरछाइ पुहमि खसि परी[5] ।
प्रान परा प्रेमानल आँचा , उड़िगा रहा हाथ पै साँचा[6] ॥
सखी सबै चहुँ दिसि तैं धाईं , देखि चरित सब रहीं ठगाईं[7] ।
करहिँ सँभार न जागै रानी , मेलहिँ दसन खोलि मुख पानी ॥
घरी एक बीते भा चेतू , आहि अचेत आउ हिय चेतू ॥
पूछहिँ बात उतर नहिँ देई , घूमत रहै सांस पै लेई ।
करहिँ बसन लै मुख पर छाहाँ . कहहिँ भयो का खेलत माहाँ ॥

पुनि जो देखिन बिरिछ तर , तपसि एक अनचीन्ह ।
कहा सबन मिलि निहचै , ए जोगी कछु कीन्ह ॥३१९॥

१—मुकुलित होता था = खुल जाता था । २—कामदेव की पत्नी । ३—रंभा, एक इंद्र लोक की अप्सरा । ४—भागी । ५—गिरि परी । ६—ढांचा = ठटरी । ७—ठकमारी = विस्मित ।

छरी[1] काहु एहि खेलत माहीँ, अब धौं इहाँ रहे भल नाहीँ।
पुनि जो एकमत होइ सब आईँ, डाँड़ि[2] घालि मंदिल लै आईँ॥
औ पुनि सबै गईँ ले तहाँ, कौँलावति की माता जहाँ।
गंगा नाउँ उदधि की जोरी, धन जननी जेहि बिमल किसोरी॥
बोलीँ सखी नैन भरि पानी, खेलत कँवल कली कुम्हिलानी।
दाडिम डार गहे हुति खरी, कै दानो कै चुरइलि छरी[3]॥
सुनतहिँ लहरि चढ़ी चित गंगा, होइ गइ बिकल भयो सुख भंगा।

देखि अवस्था धीय कै, उठी करेजे पीर।
बूड़ि गई[4] नख सिखर लैाँ, दुहुँ लोचन भरि नीर॥ ३२०॥

कंठ लाइ मुख चूमै रानी, धोवै बदन नैन के पानी।
पूछै बात प्रान कहु मोरा, काहे बूड़ि गयो जिउ[5] तोरा॥
कै तुइ तन कोउ पीर उपाई[6], कै कछु दिष्टि परा हुत आई।
कहसि बेगि जेहि औषद मागौं, प्रान होइ तौ देत न खाँगौं[7]॥
बैद बुलाइ खिआवौं बरी[8], जोगिन्ह आनि बँधावौं जरी[9]।
जोगी नाम कान जब परा, बहुरा चित जो चित हुत हरा॥
देखा नैन खोलि चहुँ ओरा, देखेसि सीस माता की कोरा।

लाज सकुच चित ऊपजी, उठी बेगि अकुलाइ।
बैठी ओढ़ि सँभारि पट, लोचन गए सुखाइ॥ ३२१॥

रहसि रानि जब देखिसि चेतू, कंठ लाइ पूछै करि हेतू।
नित गौनति खेलति फुलवारी, आजु बिकल काहेँ भइ बारी॥
कहेसि सखी सँग अपने जाई, भँवति[10] फिरत हुति बाल सुभाई।
फिरत सीस चखु भा अँधियारा, ताँवरि[11] आइ परी बिकरारा॥
तुम माता जनि बिस्मै करहु, अब जिय कुशल, हियेँ जनि डरहु।

१छली = मंत्र मारा। २—डोली। ३—आवेश किया। ४—मुरछा गई। ५—जी बूड़ना = मूर्छा आना। ६—उपाई = उत्पन्न हुई। ७—कमी करो। ८—बटिका = गोली। ९—जड़ी = औषध। १०—भ्रमित = घूमती हुई। ११—झाँई = मूर्छा।

सुनि रानी जिय भयो अनन्दू , छाड़ेउ राहु पून कर चन्दू ॥
परतिहार[1] सों कहा हकारी , अब जनि जान देहु कहुँ बारी ।
दिन भर आय यहँ छइन[2] , परी साँझ जब आइ ।
बिकल भई कौंलावती , चढ़ि धोराहर जाइ ॥ ३२२ ॥

बिकल कँवल अथएव जनु सूरा , हिरदै जमेउ बिरह अँकूरा ।
लोचन नीर सेज सब बूड़ी , कौंलहि अछज भई जर जूड़ी ॥
दहकि सरीर अगिनि जनु लाई . जहँ जहँ भीजै जाइ सुखाई ।
सायक अनिल अनल भइ ससी , साँपिनि सेज अंग अँग डसी ॥
भवन भयेउ निखंड अँधियारा . बोली चुरइलि नाहर ढारा[3] ।
कुमुदिनि नाउँ सखी एक अही , तासों बोलि बिथा सब कही ॥
सुनु कुमुदिनि तै कँवल की जोरी , संगिहु सन ना भावै चोरी ।
हम तुम्ह ठाँइ एक संग , अब प्रगटेउ सोइ नात ।
तोहि सों कहों उघारि कै, सुनै न पावै मात ॥ ३२३ ॥

तोहि सो कहैां जो मोर मन माना . परै न पाउ आन के काना ।
कालि जो गई सखी सँग बारी[4] . बीनत आहि फूल फुलवारी ॥
जोगी एक अहा तहाँ लोना . देखत जनु सिर मेलिसि टोना ।
भैांह धनुष बरुनी सर साँधा , मारेसि हियेँ बान बिष बाँधा ॥
सुधि न रही बुधि लैगा हरी , बिनु जिउ होइ पुहुमि खसि परी ।
मैं अचेत वह अहा सचेतू , गयो बिछोहि[5] हिए दै हेतू[6] ॥
नहिँ जानों दहुका भा जोगी , भई जाहि कारन हैां रोगी ।
खोजहु सखी सो जोगना , जो रे गयो मोहि मारि ।
नाहि तैा करिबों काँथरी , तन दुकूल मैं फारि ॥ ३२४ ॥

अबहीँ एही नगर महँ सोई . पावै बेगि जो खोजै कोई ।
आजु जो इहाँ खोज सो पावा , कालिह जो जाइ रहै पछतावा ॥

१—प्रतिहारी = रखवारा । २—क्षय हुआ । ३—ढहार = गर्जन ।
४—बाटिका । ५—छोह रहित = निर्मोही । ६—प्रेम ।

पंथिन्ह दया होइ सुनु थोरी, मन जहँ रमै चलै तेहि खोरी।
हौं अधीन वह अति निरदई, दहुँ केहि भाँति निबाहै दई।
पंथी पंछी थिर को राखा, छिन छिन बैठ आन तरु साखा॥
ओहि सुपंख बहु तरु वर डारा, हौ पीँजर महँ करौं पुकारा।
कौन सो हितू मिलै अब आई, व्याधा होइ फँदावै[१] जोई॥
हाथहुँ तैं जौ उड़ि गयो, पुनि कहुँ दिष्टि न आउ।
तेहि पंखी के पाछु महँ, जनि बूझि जिव घाउ[२] ॥ ३२५॥
कौंल बिथा सुनि कुमुदिनि रोई, अस दुख दुखी कहसि जग कोई।
अबहिँ न सूरज किरिन समानी, अनगुन[३] कौंल कली कुम्हिलानी॥
अबहिँ न बैठि रहस रस कीन्हा, भौंर वियोग आनि बिँधि दीन्हा।
उपजेउ प्रेम हियँ जौ आई, करु न चिंत मैं करब उपाई॥
प्रीतम नेह अगिनि जनु डरिये, एकहि बार धाइ नहिँ परिये॥
धरै धीर दुख सहै जो बारी, ताहि सो अगिनि होइ फुलवारी।
हौं कुमुदिनि पढ़ि पारथ जानौं, कहसि तो मोहि सरग ससि आनौं॥
तोर बिथा सुनि मोर हिय, जामेउ बिरह अँकूर।
अब निसि बीते कौंल कहँ, भोर देखावौं सूर॥ ३२६॥
कुमुदिनि सो मन रचा उपाई, भोर होत गंगा पहँ आई।
कहेसि राति मैं सपना दीठी, जोगी सँग जनु बार बईठी॥
तिन्ह मह एक सिद्ध जो आहा, कौंलावति कर अंचल गाहा।
हौं जनु बरबस जाइ छोड़ाई, जोगी माँगै खपर भराई॥
एको नाहिँ जौ देखौं जागी, तब ते नैन चटपटी लागी।
कस यह सपन कैस बेवहारा, तुम रानी अब करहु बिचारा॥
कालिह जो कवँल अंग भरि आवा, मकु कछु होइ देव कर भावा[४]।
बोली गंगा साँचही, महादेव कर भाव।
जोगिन्ह आनि जेवावहु, जाइ कौंल अरसाव[५] ॥ ३२७॥

१—फांदा लगा के फँसावे। २—घाला = लगाया। ३—अज्ञात।
४—भाव = आवेश। ५—बाधा।

कुमुदिनि रहसि रसोई साजी, सगरे नगर दुंदभी बाजी।
जोगी जन कोइ कतहुँ न जाई, जो आवै राखौ बिलमाई॥
आनि जेँवावै अपने दोसा[1], राजबार कर लेइ परोसा।
पाक रसोई ठाँव सँवारा, जत कत गये बुलावनहारा॥
जोगिन पाँति आनि बैसाई, कुमुदिनि कौंलावति पहँ आई।
चीन्हँहु आइ कौंल रवि मानो, जेहि बिनु रहसि रैनि कुम्हलानो॥
को अस जोगि काहि सिर जटा, जेहि के बिरह परी हिअ काँटा।

सुनि धाई कौंलावती, भा अनन्द हिय माँझ।
चितवत भई निरास जिअ, होइ गई जनु साँझ॥ ३२८॥

कहेसि कुमुदिनी यह गन तारा, वह निहँ आउ सूर उजियारा।
बेगहिँ खोजहु देवसहिँ जाई, जनि रहि जाई रैनि हिय भाँई॥
आसन आसन ढूँढ़हिँ दासा, दहु केहि आसन मिलै सो आसा।
कुँअर गवन कर साज सँवारा, तन खन आवा राज हँकारा[2]॥
कहेसि आजु है राज बुलावा, जोगिन कतहुँ जाइ नहिँ पावा।
पहिले राजपरोसा खाहू, पाछे जहँ भावे तँह जाहू॥
अग्या राज न मेटइ कोई, का जोगी का भोगी होई।

जोगिन्ह सुना अतीथ एक, आवा अग्या मानि।
बहु आदर कै लइ गए, सिंह पुरुष पहिचानि॥ ३२९॥

कुमुदिनि देखि कुँअर की ओरी, कहेसि किये अलि पंकज जोरी।
निहचै यही बिदेसी जोगी, परगट जोगि गुपुत कोउ भोगी॥
निहचै यही सूर उजियारा, जेहि बिनु कौंल आहि बिकरारा।
निहचै यही सो भौंर उदासी, जेहि बिनु जल महँ जलज पियासी॥

१—दिवस = द्योस = दिन को। २—बुलावा।

निहचै यहि पहँ पेम ठगौरी[1], जो धन[2] देखै होइ सो बौरी।
जानि बूझि कोउ जीव न देई, लोयन कोर छोरि जिउ लेई॥
धनि सो कँवल धनि यह रबि साईं, हम कुमुदिनि कहँ लखैं तराई।

गई धाइ सो देखिकै, कँवलावति के पास।
कहेसि कि मलिनाई तजो, सूर कीन्ह परगास॥ ३३०॥

सुनत सूर कौंलावति रानी, अति हुलास चखु भरि गए पानी।
तब कुमुदिनि हँसि पूछा बाता, कहु दहुँ मोहिं सूर परभाता[3]॥
जहँ हुलास तहँ हँसी बखानी, लोचन पानि भरे का जानी।
कौंलावति तब उत्तर दीन्हाँ, सुख कर ठाँव दुःख हुत कीन्हाँ॥
निसि जो अथैगा पीतम[4] सूरा, हिय सर रहा दुःख जल पूरा(क)।
अब पिउ आइ चाह तोहँ दीन्हा, सुनि सुख हंस फुरहुरी लीन्हा॥
तेहि की पाँख पानि जो अरा, सो दुहु लोचन के मगु ढरा।

दिष्टि लपेटी सुरति पिय, अब सुनि दरसन होइ।
दुहुँ लोचन के नीर सों, बेगिअ डारों धोइ॥ ३३१॥

कौंल आइ दिनकर पहिचाना, भा रतनार[5] बदन पिअराना।
दरसन देखि दंडवत करी, कहेसि कि यही अली हौं छरी॥
यही मोर जिउ लीन्ह चोराई, यही मंत्र पढ़ि हौं बौराई।
जेहि बिनु राति अही कुम्हिलानी, सो तैं सूर देखावा आनी॥
तैं बरबस हौं चेरी कीन्हा, औ बिनु दाम मोल पुनि लीन्हा।
मोहि के हेरत हिय न सेराई, नियर जाउँ करु सोइ उपाई॥
असमन आवै होउ जो होना, नियर जाइ मुख देखौं लोना।

१—ठगने की जड़ी। लोगों का विश्वास है कि साधुओं के पास कोई जड़ी होती है जिसे छुआ कर लोगों को मुग्ध कर उन्हें अपने वश कर लेते हैं फिर उनसे ठग कर जैसा चाहते हैं कराते हैं। गद्। २—सं० धन्या = स्त्री। ३—उगा। ४—प्रियतम। (क) हिय यहँ रहा दुःख कर कूरा। पाठा०। ५—लाल।

कह कुमुदिनि संसय कछु , जनि जिअ माहिँ करेहु ।
आपन हाथ परोसि कै , भोजन जोगिहिँ देहु ॥ ३३२ ॥

कौँल सोरहो साज बनाई , रहसि संभु[1] सेवा कहँ आई ।
अपने हाथ परोसा लेई , दुनौं हाथ जोगिन कहँ देई ॥
दइ भोजन बिनवै कर जोरी , मन अरु नैन कुँअर की ओरी ।
कुँअर न देखै सीस उँचाई , रहा नैन दुइ पाएन्हँ लाई ॥
कौँलावति कहँ सबै सिंगारा , अंग अंग होइ लाग अँगारा ।
जाहि लागि सब साज सो साजा , देख जो सो न आव केहि काजा ॥
बहुरि हिये महँ करै बुझाऊ , जौ न देख तौ का पछिताऊ ।

मोरे मुख सोँ सहसगुन , सुन्दरता ओहि पाउ ।
जौ दिन दीप न दीखई , यहि कर का पछताउ ॥ ३३३ ॥

पुनि रानी छर[2] एक उपावा , भोजन भीतर हार चोरावा ॥
तेहि भोजन सोँ खप्पर भरा , लै सुजान के आगे धरा ॥
औ पुनि ठाढ़ भई कर जोरी , सुनहु देव एक बिनती मोरी ।
बारी गयेउँ कालिह एक घरी , खेलत तहाँ काहु हौं छरी ॥
तेहि घरी सेती अब नाईँ , डोलै गात पात की नाईँ ।
औ जो चित्त काहु हुत हरा , अबहीँ आइ फेरि धट परा ॥
परसन होहु करौं नित पूजा , मोरे तुम बिनु और न दूजा ॥

देखु न हिये बिचारि कै , तोर सबै यह भाव ।
करु सुदिष्ट औ कृपा जेहि , जाइ मोर अरसाव ॥ ३३४ ॥

सुनि के कुँअर हिये तब जाना , चलत पंथ झाँखर[3] अरुझाना ॥
जो बरि चलौं कहैं मति छोटी , अरझत होइ बात पुनि खोटी ।
मोरे करत न एकौ होई , जो बिधि करै होए पै सोई ॥

१—शिव = योगी । २—छल = चालबाज़ी । ३—कँटीली झाड़ी ।

यह गुनि खप्पर झोली पाहा[1], उठि भा ठाढ़ कौंल नहिँ चाहा।
गुरु के उठत उठे सब चेला, कौलहिँ भा जनु निसि सौं मेला॥
पंकज सौं कुमुदिनि हँसि बोली, आजु सोह घन बेलि कि चोली।
बना अंग अँग सबै सिँगारा, पै कस गीँव न पहिरे हारा॥
सुनि कै देखेसि उरज कँह, कहेसि अबहिँ है टूटि।
इहँवहि काहु लीन्ह है, औार कहूँ नहिँ छूटि॥ ३३५॥
भा अँदोर सब काहुन जाना, कौंलावति कर हार हेराना।
ढूँढ़हिँ सखी जहाँ तहँ पूँछी, जोगिन्ह भारहिँ झोली छूछी॥
कौलें नेगिन्ह कहा हँकारी, साधु चोर कै लेहु बिचारी।
ठाढ़ होहु घेरि कै बारू, गेकहु घोंघी और सेवारू॥
एक एक सब काढ़हु हेरी, सीप सीधरी[2] केका[3] बेरी[4]।
कौतुक देखै सब संसारा, साधु चोर कर होइ बिचारा॥
आजु कसहु कंचन कै ताना, दहुँ को पीत होइ को राता।
जोगी बोले सहज सो, मुंद्रा मुकटा बार।
जाना एही पंथ अब, दै दै आपु बिचार॥ ३३६॥
नेगी ठाढ़ भए तेहि बारा, एक एक कर लेहिँ (क) बिचारा।
कंथा झारि ढूँढ़ि कै झोली, गहि भुज काढ़ि देहु भल बोली॥
चलत दिगंबर कोउ न पूछा, गहै न कोऊ देखि कै छूछा।
देखि दिगंबर सब पछताने, जोगि पंथ तब भये अचाने॥
काहे लागि समेटी झोली, तापी कस न लाए कै होली।
काहे के हम कंथा सीया, काहे लागि हम धंधा कीआ॥
भा भरि जनम काँध कर भारा, आजु सो गोंवँ केर फँसियारा।
भा गिँव कंथा काल अब, औ जम झोली काँख।
झारन अरुझा जाइ के, अपने सीगन्ह झाख॥ ३३७॥

१—डाला। २—एक मछली। ३—नीलकुमुदनी। ४—बेरी = कुई का फल। (क) लाग—पाठ०।

(२६) जोगी बंधन खंड ।

देखि देखि सब काढ़े जोगी , रहा पाछ तब बिरह बियोगी ।
कहेसि कि मह्नुँ निकसि कै जाऊँ , जोगिन साथ पंथ मकु पाऊँ ॥
अस नहिँ जानै जोगि अजाना , राज-परोसा बिष सौं साना ।
जे रुचि राज-परोसा खावा , जानि बूझि ते जोग नसावा (क) ॥
जोगिहिँ राज संग तस लागा , फूलहिँ आँजन कर जस दागा ।
निसरत अबहि बार महँ आहा , संकट कै नब नेगिन्ह गहा ॥
छोरि खोलि जब कंथा झारा , गिरा हार जग भा उजियारा ।

हार हेराना पाउ जब(ख) , चहुँ-दिसि बढ़गा सोर ।
निकसि चले जोगी सबै , कुअर धरा कै चोर ॥ ३३८ ॥

लागा छर जो कौलें साँधा , मिलि जन चार चोर कहँ बाँधा ।
कुअँर देखि मन अचक रहा , कहेसि कि बिधि यह होइगा कहा ॥
बोती आउ मीचु पुनि आई , चित्रावलि नहिँ देखै पाई ।
गा सब जनम अमिरथा मोरा , कत मैं खर कनवार बटोरा(ग) ॥
ऐ बिधना जो तोहिँ अस भावा , मह्नुँ जीव मोहि मारग लावा ।
मन बच तोहिँ सुनावउँ भाखी , अहसि तुही अब मोरी साखी ॥
जेहि कारन गिँव पहिरा कंथा , जीव देत हौं तेहि के पंथा ।

मान इहै पछताव मन , सौंरि उठै जिउ आगि ।
इतना जान न चित्रिनी , मुवा जोगी मोहिँ लागि ॥ ३३९ ॥

बाँधि चोर राजा पहँ आना , देखि रूप सब जग पछताना ।
अस रुपवंत चोर नहिँ होई , औ जो होइ मार नहिँ कोई ॥
सागर नगर इहै एक रीती , संतत यही रीति महँ बीती ।
तसकर जाको बिषै चोरावै , ता कहँ राजा पूँछि पठावै ॥

(क) जे कहु राज परोसा खावा , जानि बूझि तिन जोग नसावा । पाठा० ।
(ख) पावा हार हेरान जब । पाठा० ।
(ग) जमभा आई मोर यह झोरा । पाठा० ।

जौ सो कहै तौ सूरी देहीँ, नाहिँ तौ बाँधि डाँड़ कछु लेहीँ।
औ जो सोइ छुड़ावै आई, बिलँब न लाव देइ मकुलाई॥
आपन काँध भार महिँ लेई, तेहि की अग्याँ अग्याँ देई।

नृप कह जाकर चोर है, ताकहँ पूछहु जाइ।
नेगी आगे कौंल के (क), ठाढ़ भए सिरनाइ॥ ३४०॥

कौलै नेगिन्ह अज्ञा दीन्हा, आजु सिंभु की सेवा कीन्हा।
जोगी जेँवाएँ जो फल पाऊँ, जीउ मारि का पुन्य नसाऊँ॥
मैँ ससिरूप अहौं वह राहू, गहा रहै तौ मुसै न काहू।
राखहु बाँधि याहि बँद माँही, ऐसन चोर छुटा भल नाहीं॥
नेगिन्ह चोर बाँधि बैसारा, औ सँग दिये पाँच रखवारा।
पाँचो भूत रहैँ नित घेरे, कोह भरे चखु सौंहन हेरे॥
कै अनेक नेगी रखवारी, माँगहिँ आपनि आपनि बारी।

जोगी परा पाँच बस, तातेँ भा बिकरार।
पाँचो नाच नचावहीँ, आपनि आपनि बार॥ ३४१॥

दिन बीता निसि भई अँधेरी, कौंल हिए खरकी वह बेरी।
कुमुदिनि कहँ लै मतै बईठी कहेसि चोर पहँ जाउ बसीठी॥
कहु तैँ ऐस निछोही जोगी, जीउ लेइ कीन्हेसि हौं रोगी।
हार दिए नहिँ छूटसि चोरा, जौ लौं जीउ देसि नहि मोरा॥
जनु देखसि अपनहिँ साँकरी, तुम्हतै हौं सुठि सँकरी परी।
जौ है परी तोरे पग बेरी, मोरेँ हिए जो देखसि हेरी॥
जौ तोरे हाथन्ह है फाँसा, मोरे गिँव जेहि आव न साँसा।

पंछी पंथी बन बसै, तिन्ह क भरोस न होइ।
तबहीँ लौं ए थिर रहहिँ, रहहि जौ घेरे कोइ॥ ३४२॥

(क) आइ कौंल के आगे। पाठा०।

कहसि सत्य को हसि का नाऊँ, कौन काज आएसि एहि ठाऊँ।
अरु कहवाँ को मनसा तोरी, कहु सो जाइ जिउ संसय मोरी॥
जोगि न होइ कोउ एहि रूपा, प्रगट होसि बैरागी भूपा।
जौ हसि भूप तौ परगट होहू, होइ भरोस हिए कछु मोहू॥
जौ हसि जोगि आदि गिँव कंथा, देहु सबद लागौं तुअ पंथा।
तोरेँ पंथ पंथ हैं साईँ, दाहिन होहु देहु जनि बाईँ॥
तोरे नाव चढ़ी हौं वारा, गहि गुन खेइ लगावहु पारा।

जस तू मोरे बन्द महँ, तस हौं तोरे बन्द।
तोरे तन जो एक दुख, मोरे मन सो दंद[1] ॥ ३४३ ॥

जहाँ कुअँर बँद भीतर अहा, कुमुदिनि जाइ सँदेसा कहा।
कुअँर कौंल जस कौतुक कीन्हा, सुना सबै पै उतर न दीन्हा॥
बहुत बिनति कुमुदिनि कै हारी, देखा सौंह न नैन उघारी।
होइ निरास कुमुदिनि फिरि आई, कहेसि कँवल सौं अल निठुराई॥
सुनु पदुमिनि कुमुदिनि हौं सोहौं, बातनि रैनि नखत सम्रि मोहौं।
एह पाहन जल परै न भीजा, कहौं रोइ दुख तौ न पसीजा॥
सुनि कै कौंल लीन्ह उर साँसा, कह अब परा कठिन गिँव फासा।

बाँधी डोरी प्रेम की, बर सौं जाइ न छूट।
दीपक प्रीति पतंग ज्यौं, प्रान दिये पै छूट ॥ ३४४ ॥

पुनि आपन मन कहँ समुझावा, अबही वै मो सौं दुख पावा।
मकु बीते बासर दुइ चारा, जोगि निछोही होइ मयारा॥
कहहु जाय जे हैँ रखवारा, जोगी दुःख सहै नहिँ पारा (क)।
औ कछु तिन कहँ दहु अँकोरी[1], कहहिँ न कतहुँ कथा यह मोरी॥
भूतन्ह जबही पूजा पाई, होए गए पानी गइ कठिनाई।
लालच बाँधा सब संसारा, लालच सो मृदु होइ पहारा॥
लालच हस्ती कर बल हरा, लालच सौं हरनाकुस धरा।

१—द्वन्द। (क) जोगी दुःख न पावैवारा। १—घूस।

जो सिर होइ सरग लागा, नवै न कौनी कानि[1]।
लालच बेगि लगावै, पुहुमी सीस सो आनि ॥ ३४५ ॥

कौलैं राता चीर उतारा, यौ जत भूखन बाजनहारा।
पहिरि अपूरब सांवरि सारी, तम कहँ मिली दिये अँकवारी॥
जानहु चखु लुकअंजन दीन्हा, कोउ न देख भेष तस कीन्हा।
दूरहिँ वैसी बारि की ओरी, देखै ससि मुख होइ चकोरी॥
मनहिँ कहै औ दरसन लाहा, सुनेउँ न बात रही उतसाहा॥
इन्ह नैनन्ह दहुँ का तप कीन्हा, जासों यह सुख दरसन लीन्हा।
ए सवनन के सदा सुभागे, पिय मुख बचन सुनी अनुरागे॥

अधरन लागी चखु रहीं, अब कह अब कह बात।
तमचुर[2] पही सोच महँ, बोलि उठा परभात ॥ ३४६ ॥

तमचुर सबद सुनत सुधि आई, जनु सोवत कोउ आनि जगाई।
तमचुर बोल बान अस लागा, चहुँ दिसि उठे रोर कै कागा॥
उठत देखि रबि किरिन कि धारा, जीउ छाड़ि भागी तेहि बारा।
जेहि जन के मन प्रेम अँकूरू, ताके बैरी नमचुर सूरू॥
परी सेज पर मंदिर जाई, जिउ बिनु जानु चित्र लिखि लाई।
अहा जो अंबुज बदन बिगासा, भा कुमुदिनि रबि के परगासा॥
ज्यौं ज्यौं होइ जगत उजिआरा, त्यौं त्यौं लागै मदन लुवारा[3]।

मीत न बैरी होइ जग, होइ मीत रिपु अंत(क)।
मोहि मीत दुरजन भयो, जौ मुख फेरा कंत ॥ ३४७ ॥

कहेसि रोइ हे दिनकर देवा, मैं सन्तत कीन्ही तोर सेवा।
सरवर माहँ एक पग खरी, सिर की धूप सकल तन जरी॥
सुमिरत सब निसि रहौ मलीनी, तुमरी सेवा भइ तन छीनी।

१—खनि, बिधि। २—एक पक्षी जो प्रातःकाल में बोलता है। चुहचुहिया।
३—आग की ज्वाला। मदन दँवार। पाठा०। (क) होइ भंद रबि अंत। पाठा०।

सुख महँ सेइउँ दै दुख जीवा, गाढे आइ न छडावहु सीँवा[1] ॥
टुक दुखदिन महँ बैरी होहु, बिनु अपराध धरहु अब कोहु ।
अजहूँ सो सेवा सौँरहु नाहीँ, अथवहु वेगि धरी दुइ माहीँ ॥
एहि बिधि बिनवंत सब दिन बीता, भई रैनि भा हिवर[2] सीता ।

पहिरि चीर नव साँवरी, भेस कीन्ह अभिसार ।
देखेसि चंद चकोर ज्यों, जौ लगि लग भिनुसार ॥ ३४८ ॥

एहि विधि अहनिसि कौलहिँ जाई, कुअँर रहा चित्रिनि लव लाई ।
अस भा लीन ध्यान ओहि केरेँ, देखे ओही आन को हेरें ॥
चित्रिनि सुरति रहै चखु घेरी, सकै न दिष्टि आन मुख हेरी ।
जौ काहू पर बरबस जाई, उहै सुरति तेहि लेइ छिपाई ॥
ता तैँ सबै निअर भौ दूरी, आपुहिँ आप रहा जग पूरी ।
बिधिना दे कै सुदिष्टि दे मोहीं, लोचन सोहँ हिँ देखौं तोहीँ (क) ॥
दूजा जाइ न हिय महँ लेखा, जहँ देखों तहं एकै दीखा ।

तुही रहा सब पूरि जग, पै सुदिष्टि नहिँ मोहिँ ।
देहु सो अंजन प्रेम चखु, जेहि सब देखौं तोहि ॥ ३४९ ॥

---

(२७) सोहिल खंड ।

सोरठ[3] देस विमल विधि साजा, सोहिलसेन जहाँ हुत राजा ।
तेहि के निकट जाइ जग जाना, कौंलावति कर रूप बखाना ॥
सागर-पति सागरगढ ठाऊँ, तेहि घर धिय कौंलावति नाऊँ ।
अति सुरूप जनु पंकज कली, सुनि महि सकल भौंर होइ चली ॥
कौंल बदन जनु दिनकर दीठा, कौल नैन जनु भौंर बईठा ।
कौंल पत्र तन सोहै सारी, कौंल उरज लखि जगत भिखारी ॥
नाभी कौंल फिरैँ जेहि घेरेँ, बार न होहिँ फिरैँ नहि फेरेँ ।

१—सीमा = मर्य्यादा । २—हृदय । (क) लोचन चीन्हि बुझावहूँ तोहीँ । पाठा० । ३—स०सौराष्ट्र ।

राते अंबुज पग दोऊ , कौंल-चरन जग-मोह ।
सुनत बिकल राजा भयेउ , हिये लाग जनु लोह ॥ ३५० ॥

लागा हिये जो रति पति बाना , घूमै जनु सावज भरमाना ।
होइ बिसँभार परा भुइँ राऊ , लगे लोग सब करैं उपाऊ ॥
पुनि जो चेत चितहि भा आई , नेगिन्ह कहेसि करौ कटकाई[१] ।
सुनेउ आजु जो कँवल बखाना , जेहि ते मन होइ भौंर भुलाना ॥
माँगि बिआहों जाइ सो बारी , भा जेहि पेम हिया फुलवारी ।
सागर सदा मोर तरहेलू[२] , कौन जगत जो अस पेलू ॥
जौ हित देइ तो मया करेऊँ , नाहिँ तो हठ बरिआईँ लेऊँ ।
हित सों थापों राज फिरि , ओर देस पुनि देउँ ।
नातरु दधि सब भुज बरन , मथि के मानिक लेउँ ॥ ३५१ ॥

फिरै लाग सब नगर दोहाई , साजहु लोग भई कटकाई ।
इँहहि क साज काज पुनि आवा , नहि तो रहिय हाथ पछतावा ॥
गाठि खोलि कै लेहु बेसाहा[३] , अपनेहिँ साथ होइ निरबाहा ।
करौ निपट जेहि करना होई , उहाँ काहु की सुनै न कोई ॥
अपनहिँ सीस जो लागै धाई , आन की कौन सिरावै जाई ।
परिहै जबहि आनि सों काजू , होइहै विष यह सब सुख साजू(क) ॥
सभा सराहे होइ न सूरा , रन खंडै सो राउत[४] पूरा ।
मान कसौटी सुभट रन , कंचन सम नर गात ।
तहाँ कसे पै जानिये , कौन पीत को रात ॥ ३५२ ॥

सुनि कटकाई कटक सँभारा , घरे घरे पुनि परी पुकारा ।
साजै लाग लोग सब साजा , बाज निसान[५] गौन कर बाजा ॥
अहा सोच जेहि एहि दिन केरा , कै राखा ते साज सबेरा ।
सुनतहि अगमन उठि कै चले , सबै सराहहिँ राउत भले ॥

१—तय्यारी । चढ़ाई । २—दबायल । मातहत । ३—मोल, खरीद् ।
(क) सखराजू । पाठा० । ४—राजपुत्र = रायउत = राउत = क्षत्री, वीर । ५—डंका ।

जेहि कहँ यह दिन घरी न सूझी, रैनि नीँद सुख संपति बूझी।
अपनैँ नाहिन पावहिँ माँगा, का लै चलहिँ साथ सब खाँगा।
खेलत दिवस सोइ निसि गई, जब सिर परी सूझि तब भई॥

लाजनि गोवहिँ मुख झुरहि, कहहिँ हाथ धरि माथ।
अपने गुन पाछे परे, चला निकसि सब साथ॥ ३५३॥

सोहिलसेन साजि दल चला, कमठ कसमसा अहि खलबला।
डरे पुहुमि[1] सब राउत राना, का पर सोहिल-राउ रिसाना॥
को अस बली सौंह जो रोपा, का कहँ ऐस साजि कै कोपा।
यह अगस्त मम सूर बिसेखा, उदधि सुखाइ सोहँ जो देखा॥
हम सरिता केहि गिनती माहीँ, चलहु दंड[1] लै सेव करहीँ।
सेवा पाहन भयेउ भयागा, अचयेउ छीर जान संसारा॥
ठाकुर जाहि चहै जिउ मारा, सेव देखि पुनि होइ मयारा।

बहुरि कहै हम किंच[2] नर, इह इँदरेसर देव।
चलहु जाइ बिनती करहिँ सकब कहा कै सेव॥ ३५४॥

बाजत गाजत चला निसाना, कोस एक भा पहिल पयाना।
जीत नाउँ तहँ बिप्र सयाना, सगरे नगर रहा पुजमाना[3]॥
काँध जनेऊ सीस असीसा, गौनत राजहिँ आइ असीसा।
कहेसि कि बचन एक सुनु राजा, है तोहिँ उहाँ आन सौं काजा॥
जनि भूलहु करु आपन राजू, का कह भा जग ऐसन साजू।
को जग राज एकछत कीया, जो नहि मीचु पिआला पीआ॥
जब जम आइ सीस कच गहही, भाइ बन्धु कोइ संग न रहही।

अपनेहि माथ तहाँ परै, खोजे मिलै न साथ।
गाढ़े सोई उपकरै[4], होइ दीआ जौ हाथ॥ ३५५॥

दान कि बात सुनहु रे भाई, देहु दान नित हाथ उठाई।
हितू दान सम आन न पावा, एक जाइ दस कहँ लै आवा॥

१—कर उपहार। २—निःकिंचन = दरिद्र दीन। ३—सं० पूज्यमान।
४—(क्रि० उपकरना) काम आता है।

दान अरग होए बैरिहिँ लागै, दान पास होइ पहरु आगै।
दान दुहू जुग होइ सहाई, उहाँ मुकुति देइ इहा बड़ाई॥
दान नाव लै भार चढ़ावै, औकरिआ[1] होइ पार लगावै।
रक्षा करै दान मँझनीरा, बूड़त आनि लगावै तीरा॥
बिरिधि निमिखि दान हुत पावै, जगत जान जिउ जाइ छड़ावै।
तोरे दरब न लेख मह, हस्ति घोर पुनि साज।
गौन करहु दै दान कछु, सीद्ध होइ सब काज॥ ३५६॥
राजा कहा विप्र सन आई, दरब अकारथ दिया न जाई।
दरबहिँ तेँ यह राज पसारा, दरब लागि जग आइ जोहारा॥
जौ लहि दरब कटक सब संगा, रन जिउ देत न सँवरहिँ अंगा।
एह जग माहिँ दरब मनिआरा, दरब दिवाकर अस उजिआरा॥
दरबवंत जो तपसी भेसा, दरब रहै घर दिपै[2] बिदेसा।
प्रान देइ यह दरब बटोरा, सेतीँ दीजै कौन निहोरा॥
जग दुइ भाँति पखारिहिँ पाई, कै सुख देहिँ कि करैँ बड़ाई।
जहँ लालच तहँ कौन सुख, लोभहिँ बहुत उपाइ।
कुलपति तन दुति सो दरब, बातन्ह दियो न जाइ॥३५७॥
सोहिल चला कटक संग लीन्हे, कौल प्रेम मन मधुकर कीन्हे।
प्रेम खोर महँ अति सकराई, जतन जतन मन तहाँ समाई॥
जौ लौं मन तहँ ठाउ न पावा, तौ लहु तन तेहि वार न आवा।
तेहि कारन ए लोग सनेही, गलि गलि माँसु हाड़ रह देही॥
सुख संपति घर बार बिसारा, बावर भए फिरहि संसारा।
प्रेम मेरु अति दुर्गम ऊँचा, सहस माह कोउ एक पहूँचा॥
एह मगु देखि कटक जो फूला, अपनेहि कटक आपु सो भूला।
सोहिल ऊठा गरब कै, चला कटक लै साथ।
सिंधु मरजिया होइ धसै, रतन चढ़ै तब हाथ॥ ३५८॥

१—उपकारी। २—प्रकाशित हो, चमकै।

कटक असूझ जाइ जेहि बाटा, बन अमराइ बिहर जा पाटा।
जेहि जल तीर राति बस जाई, पानि ठाँव तहँ धूरि उड़ाई॥
अति असूझ दल अगम पहारा, कहत न बनै जेत बिस्तारा।
जेतिक राति कटक परि जाई, चलै दिवस तेहि की चौथाई॥
एहि विधि निन उठि करत पयाना, सागर नगर आइ निअराना।
गरब कहै गढ़ छेँकहु जाई, मति कह प्रथम बसीठ पठाई॥
गर्वहि मंत्रि बाद खिन आवा, मति बरिअर भौ गरव निवावा[1]।

एक बामन अरु भाट पुनि, चातुर बकता ढीठ।
ढूँढ़ि पठाओ दुइ जना, सागर पाँहि बसीठ॥ ३५९॥

सागर गढ़ बसीठ चलि आए, दर असीस राजहिँ जोहराए।
कहिन कि धनि सागर गढ़ देसा, औ धनि सोहिलसेन नरेसा॥
तैँ ससिहर वह रवि मनिआरा, तुम दुहुँ निसि वासर उजिआरा।
तैँ निसिपति वह दिनपति साईँ, तैँ ससिहर वह अग्नि सबाईँ॥
नियरहि आन न पुहमी आँटी, साँझ भोर सेवा दोउ बाँटी।
सोहिल सेन तरुन रुपवंता, छत्री छत्रपती कुलवंता॥
दुहुँ छत्री जो होइ सगाई[2], तिहुँ पुर मानहिँ अनँद बधाई।

तुम घर कौंल सो उपना, तिहु पुर पसरी घानि[3]।
सोहिल आयो भौंर होइ, लेहु जो आदर मानि॥ ३६०॥

बोला सागर सुनहु बसीठा, अस बसीठ जग काहु न दीठा।
कौन सो घर जेहि बारि न होई, सन चढ़ि माँगै नहि कोई॥
घर सौं पठवत बाभन बारी, जेहि घर धिआ सो पावै गारी।
भलेहिँ जो सोहिल राउ कुलीना, महूँ नाहिँ अपने कुल हीना॥
अस राज परछि सिर लेतेउँ, बूझि बिचारि उतर तब देतेउँ।
वै मोपर कीन्ही कटकाई, अब जो मानौं कौन बड़ाई॥
कहब जाय अब मोर सँदेसा, राजा पलटि जाहु सो देसा।

१—दबा। २—संबन्ध। ३—महँक, सुगंधि।

तेहि घर गारी दीजिये , जहाँ बारि संजोग ।
कवँल कली कौलावती , नाहिँ बिआहन जोग ॥ ३६१ ॥

बसीठैँ कहा नैन कै राता , सोहिल सेन सूर परभाता ।
रिसि औ मया दोउ तेहि पासा , जो जेहि चाहै सोइ प्रगासा ॥
मया करै तौ सीँव छड़ावै , जौ रिसि करै अगिनि बरिसावै ।
तेहि कारन जग जिउ डर होई , भोरहिँ उठि बन्दै सब कोई ॥
गादुर नैन जो जग औतारे , सूर छाड़ि ते बन्दहिँ तारे ।
उतर सँभारि देहु तुम राजा , ऐसो गरब न काहू छाजा ॥
वह अगस्त तैँ उदधि अपारा , अनरस किए परसि किमि बारा ।

जौलहु नहि सनमुख भयउ , कुसल तबहि लैा जानि ।
को सागर जग जल भरयो , जेहि न उतारेसि पानि ॥३६२॥

सुनि राजा होइ सिंह बईठा , कहेसि गरब जनि बोलु बसीठा ।
सोहिल सोँ सैना बर हेरा , मोरे बर एक बिधना केरा ॥
देखु कि बहै(क) दुहूँ दिस धारा , बिधना हाथ जीत औ हारा ।
दहुँ का कहँ हनि धूरि मेरावै , काके माथे छत्र फिरावै ॥
एहि कलि महँ औतरे जो आई , कोऊ न संतन अमर रहाई ।
बूढे कैस जिअन का हेरौं , खरग नाउँ सुनि का मुख फेरौं ॥
जेतिक जीवन जियउँ नहि तेता , राते करौं केस यह सेता ।

जाय कहहु सागर कहँ , हाथ लेइ चैागान ।
हाल आउ जो आएव , यहै गोइ[1] मैदान ॥ ३६३ ॥

आइ बसीठ कही तब बाता , सुनि सोहिल भा ज्यौं घन राता ।
कहेसि कि सागर कब अस अहा , सोहिल सैाँह खरग जो गहा ॥
निहचै ओहि मीचु निअरानी , चिउँटिहि चढ़ेउ पाँख तन आनी ।
आजु छैँकि सागर गढ़ भानौं[2] , सागर मारि कैाल घर आनौं ॥
माँगा वेगि तुरंग सवारी , सोहिल तमकि कीन्ह असवारी ।
बाजा दुंद जूझि कर बारा , जहँ तहँ पखरे[3] बीर जुझारा ॥

(क) खड्ग । पाठा० । १—[फ़ा० گوی] = गेंद । २—तोड़ों । ३—पाखर डाला ।

सूरन्ह जहँ तहँ खरग सम्हारा, कोपि चढ़ा मुख भा रतनारा।
सूरन मन उतसाह भा, हुलसहिँ मारू गाइ।
कापर जिउ संसै परा, गयो बदन पिअराइ ॥ ३६४ ॥

चली फउज अनु सावन घटा, चमकहिँ खरग सेल ज्यौं छटा।
बाज बुंद अनु घन घहराई, सेन धजा बग पाँति सोहाई॥
जहँ तहँ मारू[1] ते सुर पूरा, देखि छटा जनु कुहुक मजूरा।
हाथिन पीठि अँबारी कसी, आवहि जानु सरग सौं खसी॥
मिलि जब चलहि तुरंगम बली, पान झँकार घटा जनु चली।
चली कमानै[2] गरब गहीली, जौ जिउ हरनी तऊ रसीली॥
जिउ मानिनी गरब-जोबना, एक एक पाइ लाग सो जना।
पाएन लागे ना चले, खैंचहिँ हाथिन्ह पाँति।
गरबन तऊ न डोलैं, अस जोवन-मद-माति ॥ ३६५ ॥

बनी तुपक[3] जस बिरहिनि सती, सब तन हाड़ माँस नहि रती।
काँधे चढ़ी फिरैं जो रोगी, परगट भेख किये जनु जोगी॥
लीन्हे सँगि अगिन परगसी, बसन अरुन जनु डोरी कसी।
गुटका[4] लीलि लेइँ पुनि साँसा, भसम खाइ मुख धूम निकासा॥
जान प्रतीति सोइ पै गहई, सहज नेह छाती चढ़ि रहई।
ज्यौं ज्यौं बिरह चढ़ावै छाती, त्यौं त्यौं रिसिन्ह होइँ पुनि ताती(क)॥
जिअन न जाइ सरग की माँखी, मारहिँ आँखि जो ताकहि आँखी।
अरिगंजन ते बिधि रचा, कसे रहइँ निति लाँक।
पुहमी लावहिँ सोस तर, जौ रन मारहिँ हाँक ॥ ३६६ ॥

हाथ कमान सुन्दरी नारी, हरी लँक पातरी पिआरी।
गुनवन्ती रँग भरी सोहाई, अपने कर करतार बनाई॥
वासौं बरजि पीढ़ी सम देई, बान कटाच्छ जीउ हरि लेई।
बर सौं करै पाट बंधनी, सनमुख आइ नवै मोहनी॥

१—एक बाजा । २—तोप । ३—बंदूक । ४—गोली ।
(क) त्यौं त्यौं डसहिँ होइँ ज्यौं ताती । पाठा० ।

पिअ लगाइ देखै रँग पागी, एक अंक पै नहिँ पै लागी।
भौंहन दिए गाँठि निति रहई, देखि द्रोन यो सूरपति दहई।
पारबती जिमि पिय सँग रहई, सवन लागि गुनवंतहि कहई॥

मूढ़ न मारै गुन भरी, दुरजन देखि डेराइ।
अस धनि जेहि नर कर चढ़ै, निभरम जहँ तहँ जाइ॥३६७॥

भरे निखंग बान अनिआरे, जनु मँजोग नित पंख पसारे।
राउत सदा सीस पर बाँधे, नवैँ न काहु बीच रन काँधे॥
कर बत देइ सीस जग रहै, नैन वाजु सिर करवट सहै।
पंखी अँत्रिख भँवहिँ उदासी, नख सिख लौं सो रहै पिआसी॥
नापी बैरी तीती नाऊँ, एक सर अरथ तीनि तैहि ठाऊँ। (क)
सिम्रिरन काल-अगिनि पुनि बूझी, जेहि जस लाग ताहि तस सूझी॥
देखत सूध गाँठि हिय माहीँ, अरि भैंटत उर माँह समाहीँ॥

आप माँह पुनि हेतु वहु, एक घर सहस रहाहिँ।
अग्या कारी धनुख के, जहँ पठवै तहँ जाहिँ॥३६८॥

चमकैँ हाथ साँगि अनि पारी, लहलहाहिँ जनु साँपिनि कारी।
कंचुकि तजैँ बीसदंति कैसी, दृष्टि साथ उर चाहै पैसी॥
जौं करता दै बान बुझाई, तऊ न बूझहि रुहिर निखाई(ख)।
पौन पिए पुनि सास उभासैँ, अँत्रिख डोलहिँ रसन निकासैँ॥
परसहिँ सबै जानि कै सूधी, प्रान लेहिँ जब होहिँ बिरूधी।
सूर किरन ससि संपति लूटैँ, स्याम बरन जानहु जम छूटै॥
कर लीन्हे पैदर असवारा, जानहुँ परी पुहुमि विषधारा।

साँगि सुवंसी नागिनी, स्याम रूप रससाल।
हित जन कहँ सुख दायिका, समर चढ़े अरिकाल॥३६९॥

बाँधी कटि करवारि बिराजी, अति राजी पै नाउ न राजी।
देखत रूप पदुमिनि नागिनि, धामिनि जेउ उठि उठी लागिनि।

१—विषदन्ती = साँप।

जब लगि मांदी[1] महँ रहि गोई, तबहीँ लहु निरभै सब कोई॥
नख सिख पानी तेउ उदासी, जीभ निकासे रुहिर पिग्रासी।
सुन्दरि सदासोहागिनि नारी, जेहि कर चढ़ै ताहि की प्यारी॥
मूठिन मोरि गहै कर कोई, सान दिए पै तीखी होई।
निभरम सोवहिँ नहिँ जहँ जागी, रहै सकल निसि पाटैँ लागी॥

बाँकी बाँकी भोहँ सो, करै कटाछ कलोल।
सूधे नाहीँ जो नवै, सोई जगत अमोल॥ ३७०॥

बारह हाथ बनो पुनि फरी[2], सुंदरि नारि सदा रँगभरी।
अस बरिआरि नारि बिधि कीन्हा, पुरुषन्ह जाइ सरन जेहि लीन्हा॥
पाछे मेलि सरन जो आवा, सनमुख खाइ आपु तन घावा।
कोमल हिया कौंल जहँ रहई, गात कठोर घाव जहँ सहई॥
दरपन सम पुनि मंजुल गाता, पानी पर जनु पुरइनि पाता।
एकै बात बोलि को बुवरी, फूल बिलोकि कहै जग फरी॥
दूजी अमर बेलि जग आई, जहाँ तहाँ अँत्रिख लपटाई।

संतन पर कारन दुखी, जानत नहिँ अपकारि।
जहँ कहुँ दुइ जोधा लरहिँ, बरबस जाइ मँझारि॥३७१॥

पुनि कटि बाँधे विषम कटारा, जा कहँ आपु कहै जमधारा।
सूरा सौंह धसै रन माहीँ, दाहिन पाँव निकारै नाहीँ॥
रन अमेट हथियार मतंगा, जब तब छार चढ़ावै अंगा।
निसि दिन दिये अँधारी रहई, छुटै हस्त बिना को गहई॥
कालरूप कटकहिँ सिंगारा, साँवर लोह लियेँ मतवारा।
बाल बिलोकहिँ अंग उघारी, नाँगा देखि बजावहिँ तारी॥
बरत किये पुनि चित्त न धरई, भोग लिये बल पारन करई।
मान कटारी बुंद जल, हिये समात न बार।
महा अचज संसार मेँ, एक बुंद दुइ धार॥ ३७२॥

१—मियान। २—ढाल।

सागर जब बसीठ बहुराए[1], चारिहुँ दिस बारी[2] दैाराए।
ग्रै पुनि समाचार लिखि दीन्हा, कौल लागि सोहिल बर कीन्हा॥
हैाँ पति लागि पैज रन ठानी, तुम पुनि ग्रावहु ग्रस जिउ जानी।
जै। लहुँ सागर ग्रगम गँभीरा, तैालहुँ पूरक सरिता नीरा॥
जै। वारिध न रहै जग माही, एक छिन महँ सब नदी सुखाहीँ।
एह सुनि सरिता हिए सकानी, उतरि जाइ जनि सागर पानी॥
जो जैसेहि तैसेहि उठि धाए, सागर ढिग सब गए हेराए।

जिन जिन हिय ग्रभिमान हा, नवै न सोस नवाहिँ।
सूझि परा सागर विकट, हम नहिँ लेखे माहि॥ ३५३॥

बाज दुन्द जनु घन घहराई, राता सेन धुजा फहराई।
सागर हिये कोप सुनि बाढ़ा, घर तजि सपरि पार भा ठाढ़ा॥
देखा पाहुन ग्रानि तुलाने, ग्रादर कहँ डग चारि पयाने।
बीर ग्रगुमने[3] भुजा पसारी, दुइ दल माँह भई ग्रँकवारी॥
छूटी तुपकैँ छूटे बाना, जहँ तहँ होइ लाग घमसाना।
तरुनि भैाहँ सम धनुष बिसेखे, नाचहिँ बान कटाछ ग्रलेखे॥

कहुँ ग्ररुझे पखरैन दुइ, कहुँ गयंद चैादंत।
कहुँ ग्रखारे पुहमि महँ, जनु दुइ मान भिरंत॥ ३७४॥

जहाँ सेलि लागे उर ग्राई, मनहुँ कँवल जल धार सोहाई।
जेहि सिर परी खरग की धारा, मानहुँ बेनी कर पतसारा॥
जाके भोर होई धनुताना, निकरि जाइ सर ज्यों चखु बाना।
छूटहि चन्द्र बान उजियारे, मानहुँ नट मुख ग्रागि निकारे॥
जब ग्ररसाइ कमान जम्हाई, चुटकिहिँ हनत जीउ लै जाई।
घायल परे जहाँ तहँ हाथी, मानहुँ ग्राहि लोहार की भाथी॥
माथे छूटी सोनित धारा, भाथि फूँकि जनु ग्रागि निकारा।

१—फेरा, लैाटाया। २—एक जाति जा दास का काम करती है। ३—ग्रागे बढ़े।

कहुँ चरन तनु पग कहुँ, कहुँ गज बाज भुसुंड ।
राते लोटहि पुहुमि परि, कहुँ रुन्ड कहुँ मुंड ॥ ३७५ ॥

नैन अगस्त तेज अति जानी, गयो सूखि सागर मुख पानी ।
साथिन्ह उलटि कोट तन हेरा, खरग आँच लागे मुहँ फेरा ॥
सागर धाइ कोट तब लीन्हा, बज्र कपाट टारि कै दीन्हा ।
चढ़ि चढ़ि बीर कंगूरन लागे, हथ हथनालन्ह गोला दागे ॥
चारहुँ दिसा अगिन बरसाई, ग्रीषमऋतु भै गई सवाई ।
कटक जो आगे आवत अहा, सनमुख आगि ठटकि सब रहा ॥
जहाँ तहाँ मुरछा नेउ परी, सनमुख आइ कमानी धरी ॥

दुरुग कोट गोला लगे, जहँ जहँ कोट ढहाइ ।
तहँ तहँ सागर सजग होए, रातिहिं लेइ उँचाइ ॥ ३७६ ॥

मास चारि गढ़ छेका रहा, जानहु राहु विधुहि पै गहा ।
अन्न घटा जल कूप सुखाने, मुरछन आइ कोट नियराने ॥
भा निरास तब सागर राजा, कहसि परा अब जिय सौं काजा ।
का मैं कीन्ह जनम ले अवनी, यह दिन कारन कियेउँ सँजवनी ॥
जिन्ह सौं हितू जानि चित बाँधा, तिन्ह महँ कोउ न देखौं राधा ।
जाकर अहा नैन महँ ठाऊँ, पहिलेहि छाडि चले ते गाऊँ ॥
गरब बोलि जेहि क बर बोला, तिन सत छाडि तजा एह टोला ।

जिन्ह कहँ हुत एक छन लगी, उतकंठा दिन रैन ।
अब चित मरूँ पुकारिके, सुनहि न एकौ बेन ॥ ३७७ ॥

इत सागर रन कटक बनाई, उत सोहिल की भई अवाई ।
गा सब जनम अकारथा मोरा, कत मैं खर कतवार बटोरा ॥
कस न नाहि जिउ लापउँ धाई, गाढ़े आजु उपकरत आई ।
नैन अंध मैं सोइ न चीन्हा, पै कै सेउ न आपन कीन्हा ॥

औा पुनि जा सों आहि चिन्हारी, कान न कीन्हेंा रह्यौं पुकारी ॥
तब जो जाइ न चीन्हेउँ ओही, अब कैसहु पतिआइ न मोहीँ ।
अब तो ओहि बिनु औार न कोऊ, करौं पुकार होउ सो होऊ ॥
ऐ अबली कहँ बल देनिहारे, गरबिहिँ गरद मिलावनहारे ।
गाढ़ेँ करौं पुकार दुख, पारिध होइ बढ़ि आउ ।
बूडत हौं मजधार महँ, गहि भुज नाउ चढ़ाउ ॥ ३७८ ॥
राजैँ तब रनिवांस हँकारा, कहिसि करहु अब कुल उजियारा ।
हौं सिर सेत करत हौं राता, तुम रचि चिता जरहु परभाता ॥
जस पुहुमी दीन्हा सुख संगा, चलहु सरग तस मानौ रंगा ।
सरगपंथ अति विकट अँधेरा, जो उजियार जाइ पै हेरा ।
एह सर निमिखि एक तन ताता, पुनि संतत सीतल सुख गाता ॥
रानिन उतर कहा सुनु राजा, सौंह कहत आवत है लाजा ।
हम तुम गाँठि आदि सों जोरी, मुए जिअत जो छूट न छोरी ॥
हम इन्ह नैनन देखहीँ, तुम सिर ऊपर धाउ ।
पहिले हम सब जरि मरहि, पाछे करहु जो भाउ ॥ ३७९ ॥
कौंलावति सुनि मरन कहानी, कवँल नैन भरि आए पानी ।
हियरं आगिनि रही नहिँ गही, उठि आई जहँ कुमुदिनि रही ॥
कहिसि कि जम सँदेस पुनि आवा, जोगी नीठुर न बचन सुनावा ।
कुमुदिनि भएउँ बिरह ससि लागी, दिन मलीन ससि पलक न लागी ॥
नैन जलज नित बूड़त रही, एकहु बेरि बात नहिँ कही ।
अब पुनि जाइ कहसि दुख मोरा, कुलिस ते कठिन करेजा तोरा ॥
जो सब तजि एकै मुख हेरा, सो कैसे तासों मुख फेरा ।
दुहुँ जुग जाकर आस तैँ, तेहि कत करसि निरास ।
एक दिन तोर मोर न्याव पुनि, होइहै जाइ अकास ॥३८०॥
कुमुदिनि चलि जोगी पहँ आई, कहिसि रे मूढ़ औाधि नियराई ।
जाके हिए हनेसि चखु बाना, करिहै भोर सो सरग पयाना ॥

घायल परी पुहुमि तलफाई, प्रान रहे पुनि कंठहिँ आई।
एक बोल लगि स्रवन निरासे, अधर सूखि तुअ अधर पियासे ॥
अजहुँ न जाइ आस तेहि देहू, मरत जिआइ पहर एक लेहू।
जाहि लागि यह परलै होई, सो तोहिँ लागि मरै अस रोई ॥
अमिय बचन लागहिँ विख साँधे, भोर मरहि हत्या तुअ काँधे।

सघन तिमिरि निसि ओह लगि, जल बिनु कंटक हार।
नत रहई पछताव कर, बिथरे भसम अँगार ॥ ३८१ ॥

कहिसि जाय कहु राजकुमारी, हौं निरगुनि सुठि जोगि भिखारी।
एक तो बिधि दुखिया मोहिँ कीन्हे, तूँ पुनि बाँधि अधिक दुख दीन्हे ॥
कतहुँ प्रेम कि बाँधे होई, बरबस प्रेम करै नहिँ कोई।
सोहिल हनि हौं कटक लुटाऊँ, सागर नगरहिँ फेरि बसाऊँ ॥
ताहि मारि करि सगरहिँ राजा, अब तो आइ परेउ हम काजा।
कर गहि खरग करौं अब घाता, राखौं कटका करि आघाता ॥
जदपि सोहिल सुख जूझ सवारा, हौं सुजान सरदूल पँवारा।

परघट होउँ बचाइये, दीन्हो कर गहि खर्ग।
बचौं तो लीन्हो कमल फल, मरूँ तो जैहों सर्ग ॥ ३८२ ॥

सुनि के मया कुँअर जिय(क) भई, मैान गाँठि अधरन छुटि गई।
कहिसि जाइ कहु राजकुमारी, हौं निरघिन कोहि जोग भिखारी ॥
हौं भिखारि तुम गढ़पति राजा, राज भिखारिन नेह न छाजा।
अपनेहिँ दुःख अहौं बैाराना, आन क दुःख करौं का काना ॥
भोर निदान हाेय जो चाहा, परगट होउँ रहौं छिपि काहा।
अब जो परी सीस हम आई, जोग माँह का रहौं छिपाई ॥
भोर होत अस जल बरिसावौं, बड़वानल जो होइ बुझावौं।

कोपि चढ़ौं रन पैजि करि, मारौं सोहिल बीर।
सूर छुड़ावौं राहु हनि, कैाँल धरो मन धीर ॥ ३८३ ॥

(क) चित, पाठा०।

सुनि सँदेस कुमुदिनी सिधारी, कुअँर कहा रखवार हँकारी।
आइ जनावसि राय नरेसा, छत्री एक जोगी के भेसा॥
कहै छाडु मोहिँ राज जोहारौं, पैज बाँधि रन सोहिल मारौं।
रखवारे नृप आइ जनावा, राजै(क) सुनत जीउ अस पावा॥
हिए आगि जनु परि गा पानी, जानहुँ भइ अकास की बानी।
जन कौंलावति पाँह पठावा, जोगी चोर जो आहि बँधावा॥
छाड़ि पठावहु औ हम पासा, पूछौं बात देइ मकु आसा।

जँहवाँ लहु हम बँद हुते, ते दीन्हा सब छोरि।
तुमहु छोड़हु बन्द सब, मानहु अज्ञा मोरि॥ ३८४॥

रहसि कँवल जोगी पहँ आई, कहिसि तजहु अब अलि निठुराई।
कहु को हसि का नाउँ सोहावा, केहि कारन सिर जटा बढ़ावा॥
कौन देस ते आएउ राऊ, काके पंथ धरेहु भुइँ पाऊ।
औ लगि कहसि न आपन बाता, बन्ध न छोरौं सपथ बिधाता॥
अमिरित बचन कुँअर जब बोला, अधरन पोए रतन अमोला।
जाति कहिसि औ पिता क नाऊँ, आपन नाम जनम कर गाऊँ॥
औ जेहि कारन जटा बढ़ाई, नाम लेत चखु जल भरि आई।

कहिसि निकारहु हथकरी, खरग गहौं अब हाथ।
पल मंझे भारथ रचौं, जौ कौरौ दल साथ॥ ३८५॥

सुनि कै कौंल बिकल होइ गई, मानहुँ साँझ उदय ससि भई।
मनहि कहेसि कर रहा परेखा, भयो मोर मधुकर कर लेखा॥
मधुकर भँवै कंज बैरागा, कंज क मन सूरज सौं लागा।
सूर दरस जब कौंल बिगासा, तब पूजै मधुकर मन आसा॥
अपने करत जाइ नहिँ देऊँ, जीअत नैन न ओट करेऊँ।
एह पंछी बरु रहै पडेली, अब राखौं छल बन्धन मेली॥
एह अरजुन जेइ भारथ काँधा, अरजुन रहै बचा कर बाँधा।

(क) सागर, पाठा०।

मन, वच, क्रम अब जो रहै . सेव करूँ निसि बार ।
सेवा हुत पाहन हिया , मकु होइ जाइ मयार ॥ ३८६ ॥

कहिसि कुँअर सुनु अम्बुज बाता , तुअ मन मधुकर केतकि राता ।
का जो कौंल राख हिय लाई , अंत मौंर केतकि पहँ जाई ॥
बिनती एक करूँ करजोरी . इहै हिये अब इच्छा मोरी ।
जो तू इच्छ पुराउ गोसाईं , मोहिं जनि जाउ कंत दै बाईं ॥
जौ सँग लेहु मया चखु हेरी , रहौं होइ चित्रावलि चेरी ।
सपथ देहु जो करन पयाना , सपथ आस घट रहइ पराना ॥
ना तरु देखि बिरह दुख दाइ , होइ निरास मरिहौं बौराइ ।

आजु सपथ जो देहु पिय . बाजु कहे नहि जाहु ।
बन्द छोरि कर खरग गहि . सूर छुड़ावहु राहु ॥ ३८७ ॥

मन गुनि कुँअर कँवल मुख हेरी , कहिसि सपथ चित्रावलि केरी ।
जो एहि रन बिधना जय देई . पूजी प्रान रहे घट सेई ॥
तोहिँ दै बाचा चलौं सो देसा जेहि कारन निसरेहुँ एहि भेसा ।
सुनतहि सपथ कौंल भा राता , जनु रवि किरिनि उदै परभाता ॥
बंध छोड़न आगे अगुसरी[1] , पाय न जाय यहाँ मिसु परी ।
पायन परसि हिये सुख पावा , अति लालच बँदि छोरि सि भावा ॥
सखिन कहा चित चेतु गियाना , बिलम न लाउ भोर नियराना ।

सुनत भोर कौंलावती . भयो चेत चित आय ।
छोरि बंद मंदिर चली , परसि कुँअर के पाय ॥ ३८८ ॥

कुँअर आनि राजहिँ जोहरावा . राजै मुख देखत सुख पावा ।
आदर सहित लाइ कँठ लीन्हा , अपने पास ठाउँ तिन्ह दीन्हा ॥
कहिसि कि तुम छत्री रस-भोगी , कहहु भये केहि कारन जोगी ।
मो पुनि कत अस हार चोराए , जेहिते बंदि माँह दुख पाए ॥
कुँअर कहा जनि पूछहु राजा , करहु सोइ जो करबे काजा ।
जाकर आइ फिरी जब दसा , बाट जात लागै अपजसा ॥

---

१ अगुआई, बढ़ी ।

छत्री तबहिँ चोर पै होई, बरबस चोर करै जो कोई।
हौं नैपाल नरेस सुत, छत्री बीर पँवार।
यह सोहिल बरिआर जो, हनौं होत भिनुसार॥ ३८९॥

राजै सुनि संग्या मन बूझी, ज्ञान कि दिष्टि दूरि लौ सूझी।
कहिसि कि तजहु जोग बैरागा, पहिरहु अब छत्री कर बागा[1]॥
सिर धरि मुकुट सेल कर लेहू, सोहिल मारि मुकुट सिर देहू।
जौ जै खरग देइ करतारा, छात पाट औ राज तुम्हारा॥
पुत्री नैन कौंल पुनि मोरी, भारिहि पद पंकज कर जोरी(क)।
कुँअर कहा सुनु राज भुआरा, छात पाट मैं अपनै डारा॥
अस कैसे कहि आवै तोहीं, हौं जोगी तिय छाज न मोहीं।
क्षत्री सुनि जौ ना करै, तिय अरु गाय गोहारि।
पुहुमी कुल गारी चढ़ै, सरग होइ मुख कारि॥ ३९०॥

एहि महँ रैनि बीति सब गई, प्राची दिसा अरुन तब भई।
जहँ जहँ घुमिरे घोर निसाना, छूटै लागे दुहुँ दिसि बाना॥
कुँअर तोखार[2] साजि कै माँगा, बाँधि कटार खरग कै नाँगा।
सौंरिसि हिये बिधाता सोई, जेहि की मया सुमिरि जै होई॥
ततछन तमकि चढ़े हय पीठी, चढ़त न परा काहु की डीठी।
जबही कुँअर भयो असवारा, जै जै जै सब जगत पुकारा॥
उअअवा सूर संघ लीन्हे, छिन महँ पुहमि सहस ससि कीन्हे।
कुँअर निकसि बाहर भयो, राउ ठाढ़ करि आस।
देखहिँ धौराहर चढ़ी, सब रानी रनिवास॥ ३९१॥

कौंलावति दोउ अम्बुज हाथा, छिन छिन धरै सहस सिउ माथा।
एह जोगी पर कारन दुखी, हौं रुद्राक्ष अहौं एक मुखी॥
परसन होइ दान जै करहू, जीतपत्र एहि के सिर धरहू।
तुम तैं सबै असुरपति हारे, तुमहीं अंधक कंधक मारे।
तुमहीं दच्छ प्रजापति मारा, जीति मार तिपुरारि सँघारा।

१—पहिनावा। (क) भारी पदुम चरन रज तोरी० पाठा०। २—सफेद रंग का घोड़ा।

भरि भरि जल पुनि नैन कटोरी, लागि स्रवै माता की चोरी ॥
बिनवै पुहमि लाइ कै माथा, जोगिहिँ देहु आनि जै नाथा।

तुम हि सकल सुर देवता, जीत हार तुम्र हाथ।
एह परदेसी एकसरा, देहु मया करि साथ॥ ३९२॥

एक तो कुँअर गरब अस बाढ़ा, सागर सँपरि बार भा ठाढ़ा।
आयो सूर पैज रन ठानी, सोहिल बदन सूखि गा पानी॥
जेइ देखा तेहि इहै सुनावा, सोहिल काल सरग सों आवा।
सूर सौंह छिन आइ न हेरा, जिन मुख देखा तिन मुख फेरा॥
सोहिल देखि कटक मन ढीला, रिस सो बोला बैन कसीला।
ऐ छत्री ऐ बीर जुझारा, कहा जानि तुम पैारुख हारा॥
तुम कहँ पालेउँ दै अन पानी, काल बान कर आदि न जानी।

खरग सँभारै सूरमा, वैरी मुख समुहात।
तो लहुँ पैारुष ना तजै, जैालहुँ आव न रात॥ ३९३॥

बीर सिंह जब साहस हारा, सो नहि मारे जान सिआरा।
नृप बैासाव[1] बचन जब कहे, सुनि सब माथ औंधि कै रहे॥
सोहिल हाँकि तुरै रन चढ़ा, नख सिख लैां तन लोहे मढ़ा।
औ तेहि मारेसि साँगि पचारी, झुकि सो दिष्टि पर कुँअर उबारी॥
पुनि गहि खरग कुअँर सिर झारा, कुअँर सजग ओड़न[2] दै टारा॥
खरग टूटि रह ओडन साँथा, छूछि मूँठि सोहिल के हाथा।
तब रिसि कै कुअँरहि लपटाना, कुँअरौ पुनि सरवई[3] सु जाना॥

सोहिल बीर धरि कुँअर कटि, चाहेसि देइ गिराय।
खंभा केरा सरवइ, उपरहि गा लपटाय॥ ३९४॥

दोउ लपटाइ पुहुमि मेँ परे, जनु दुइ माल सरबइँ[4] भिरे॥
कबहुँ कुँअरहि सोहिल चाँपा, कबहुँ कुँअर तर सोहिल काँपा।

१—व्यवसाय। २—रोक। ३—लड़ते थे। ४—सरो, कसरत।

पलटेउ आनि कुँअर करि दाऊ, काढ़ि कटार कीन्ह तब घाऊ ॥
एकहिँ घाउ कीन्ह अरि घाता, रुहिर देखि सागर भा राता।
सागर लहरि पौन जिमि धाई, सोहिल कटक फाटि गौ काई।
जो जेहि गहा सो तेहि गहि चला, होइ गइ पुहुमी माहँ जनु हला ॥
काटि काटि सिर कीन्ह मुनारा[1], लूटै हय गय सोन भँडारा।

छिआ पंथ ते दरप बर, गरबि चले मुख फेरि।
ज्ञानी हिरदय सोच भा, बिधि कर कौतुक हेरि ॥ ३९५ ॥

सोहिल परा मीचु मद पीये, उपजा ज्ञान कुअँर के हीये।
का भा सो जो डोलत आहा, जेहि बिनु पुहुमी थकि सब रहा ॥
का भा सो जो गरब बर बोला, जेहि बिनु भुजा डोलाव न डोला।
का भा सो जो कटक बटोरा, सोन भँडार हस्ति औ घोरा।
अब तेहि बिनु कोउ रहा न साथी, छिन महँ होइ गए उड़ि पाथी[2] ॥
मैं का जानि सरग कर लीन्हा, यह कारन केहि कारन कीन्हा।
जोग पंथ महँ बैर न आवा, जानि बूझि मैं जोग नसावा ॥

यह गुनि हिये अगिनि बरी, चखु छूटी जल धार।
सागर फिरि फिरि रहसै, लूटै सोन भँडार ॥ ३९६ ॥

---

(२८) कँवलावती विवाह खंड।

सागर पलटि कुँअर पह आवा, हाथ चूमि गहि अंक लगावा।
कहिसि कि धनि जननी धनि पीता, धनिहीअर[3] जेहि यह रन जीता ॥
ततछन कीन्ह कुँअर असवारा, अपने हाथ चौंर सिर ढारा।
आनि फिरावा माथे छाता, जनु दूलह लै चले बराता ॥
बाजा पुनि बाजन गहगहा, पुहुमी सरग सोर होइ रहा।
जबहि भाँट बीरुद उचारा, चहुँ दिसि उठा बिरुद झनकारा ॥
पैसत राजअबास सोहाईं, मंगल गावत चेरिन आईं।

१—शिखर। मीनार। स्तूप। २—पथिक, राही। ३—हृदय, साहस।

तुरै चरन रज पूजि के, टीका लावहिँ माथ।
कहैँ कि बाहन धन्य तू, औ धनि तेरो नाथ॥ ३९७॥

पुनि जहँ हाट कपाट सँवारा, कुँअर आनि कै तहाँ उतारा।
आरति लै आईँ रनिवाँसा, जनु ससि उडगन सँग परगासा॥
पूजहिँ दोउ भुज चँदन चढ़ाई, कहैँ कि धनि तूँ धनि तुअ माई।
तैँ हनि राहु मयंक[1] छुड़ावा, तैँ तम हरि दिनकर देखरावा॥
तैँ होइ इन्द्र अमी बरसावा, छत्र अगिनि जग जरत बुझावा।
जौ न होत तैँ अस बरिआरा(क), को बहुरावत जम बरिआरा(ख)॥
मैँ बसंत किय नगरी मोरी, नाहिँ तो होत आज जरि होरी।

सरवन मों तरिवन रहा, औ पुनि सेँदुर सीस।
जो तुम इच्छा सो मिलो, जीवहु लाख बरीस॥ ३९८॥

पुनि रानी राजा सों कहा, तब जग दूसर कोउ न रहा।
मोरी कोखि सो कौंल बिगासा, चहुँ खंड पसरी जेहि की बासा॥
औ पुनि भयो आइ संजोगा, करहिँ चवाउ जहाँ तहँ लोगा।
यह कुलीन छत्री बरिआरा, एहि आंको[1] जौ होइ बिचारा॥
राय कहा का कहहुँ छिपाई, मैँ पहिलहिँ संकलपि सुनाई।
औ संख्या स्तुति सो पुनि कही, गंगा सुनि लजाइ हिए रही॥
कहिसि कि जोगी भोग न जाना, जौ बर दीजै तौ पै माना।

सो कर गहि कौंलावती, लै मेली ओहि पाउ।
यह चेरी तुअ सेव कहँ, संकलपी जो राउ॥ ३९९॥

कै मत राजा बाहर आवा, आपन कुटुँब लोग हँकरावा।
कहिसि कि मैँ अपने मुख हारी, एहि सौंपौं कौंलावती बारी॥
बरु मैँ आपु नाहिँ ओहि दीन्हा, सोहिल मारि जीति वै लीन्हा।
तुम यह बचन मानि पुनि लेहु, औ मिलि पंच बड़ाई देहु॥
कहिनि कि यह बर बिधनै गढ़ा, सोई फूल जो महेसहिँ चढ़ा।

(क) धरहरिया, पाठा०। (ख) अस बेरिया, पाठा०। १—परीक्षा करो, परखो।

हमहुँ भाउ जो तुम्ह कहँ भावा , बिलम न लावहु करहु बधावा ॥
बाजन लागे बाजन बारा , घर घर उठा मंगलाचारा ।
ततछन आए जोतिषी , गनि गुनि देखी रास ।
शुभ दिन औ शुभ मास पुनि , उत्तम लगन बिलास ॥ ४०० ॥
चहुँ दिसि बाजन बाज सोहावा , कुँअर जान यह जीत बधावा ।
अस न जान यह बाजन सोई , जेहि तें अन्त महा दुख होई ॥
गात चढ़ा जत चन्दन माला , होइहै भोर अगिन कर ज्वाला ।
औ जत जगत निछावरि सारा , होइहै भोर काँध कर भारा ॥
हाट कपाट जराव क छाता , होइहै काल होत परभाता ।
मानुस अंध जाहि नहिँ सूझा , दैव करै सब आपन बूझा ॥
होइ चेत कछु आन सु जाना , बिधना करै आन कै आना ।
आपन चिन्ता मान जौ , जगत न पावै कोइ ।
कस न सोइ चित चेतिऐ , जाकर चेता होइ ॥ ४०१ ॥
साँझ आय पुनि गाउन राना , आँगन ताने आनि बिताना ।
अनबन भाँति बिछौना कीन्हा , दै दै लाख लाख एक लीन्हा ॥
बैठे आय तहाँ सब राजा , माथें छत्र विचित्र बिराजा ।
धरे आनि चहुँ दिसि मसिआरे , पुहुमी सकल भये उजिआरे ॥
ऊपर समियाना जनु नभा , तर बैठी जनु सुरपति सभा ।
गीतन्ह आन कीन्ह झनकारा , जनु पुहुमी में अमिय सँचारा ॥
पुनि पैरिन काछें अतिलसी[1] , जनु आईं रंभा उरबसी ।
नाच कूद भा पहर दुइ , दीन दान बहुताइ ।
पुनि आए तहँ सहस एक , बाभन बँटूराइ ॥ ४०२ ॥
आयो सागर सभा मँझारी , गहे बाँह कौंलावति बारी ।
बारह सोलह साज बनाए , आठो अंग बतीसो पाए ॥
प्रगटेउ जनु मयंक मनियारा , अकसमात होइगा उजियारा ।
कुँअर पाइ तर मेलि किसोरी , आपुन ठाढ़ भए कर जोरी ॥

१—(फा० اطلسي) अतलस का बना हुआ परिधान ।

कहिसि लेहु येहि चेरी आनी, मै संकलपी दै कुश पानी।
बोलहु स्वस्ति जैस जग रीती, तैँ अपने भुज बल यह जीती॥
बरु मैँ नहिँ अपने मुख हारी, तुम जीता सोहिल संघारी(क)।

सुनि कै कुँअर अचक रहा, सीस गयो गड़ि लाज।
बकनि न कछु मुख आवै, जनहुँ परी सिर गाज॥ ४०३॥

छिन एक जिय भीतर गुनि ज्ञानी, बोलिसि स्वस्ति लीन्ह कुस पानी।
तत छन आनि कीन्ह गँठजोरा, वेद पढ़हिँ बाभन चहुँ ओरा॥
तरुनिन्ह पुनि कल कंठ सुनावा, कौलहिँ लाइ सुजानहिँ गावा।
गाँठि जोरि फेरी सतफेरी, जोगिहिँ गाँठि परी सत फेरी॥
भा बिआह बाभन जब गए, लै दूलह कहँ कोहबर गए।
उठत न भौंर चरन अति भारी, नाचत कौंल होत बलिहारी॥
कौंलावति जिअ रहस अनन्दू, डरपै कुँअर जानि दुख दंदू।

पाँलग साजि जराउ की, डासी सेज सुरंग।
कौंलहि सीतल जानु जल, कुँअरहि अगिन समंग॥ ४०४॥

दुलहिन दूलह कोहबर मेली, औ पुन बाहर भईँ सहेली।
घूँघट कै कौंलावति रही, फिरि सुजान पुनि पाटी गही॥
अंबुज मान मनावन आसा, भँवर निठुर पुनि लेइ न बासा।
कौंलावति मन कीन्ह गियाना, कौन मान जौ कंत न माना॥
मोहिँ पीतम अंतर जहँ होई, घूँघुट लाज जाउ जरि सोई।
कुलिस तैँ कठिन सो आहि करेजा, जो तिय मान न कर पिय सेजा॥
लोयन राखौं घूँघट हेरी, अंतमान[1] को राखै फेरी।

मोहिँ मूँदत चखु सकल तन, दीन्ह अगिन अनु बारि।
नहिँ जानौं पिय सेज पर, मान करहि किमि नारि॥ ४०५॥

कौंल खोलि मुख अचन हुमासा, पै दिनकर साईँ जग आसा।
अब औ जग जाना मैँ तोरी, का जिय जानि रहहु मुख मोरी।

(क) वरु मै अपने मुख यहि हारी। तुमहूँ जीते सोहिल सँघारी। १—आत्मा।

सघन तिमिरि हिय फाटै मोरा, मुख देखाउ जग होइ अँजोरा ॥
पिता सँकलप दीन्ह सजि तोहीँ, कस न मया करि हेरहु मोहीँ।
तोरे मया बनस्था मोरी, जो आदरहु तो हौं मैं तोरी ॥
पिता राज सब भयो पराघा, तोरे मया एक चित लावा ॥
मोहिँ बिनु तोरे नाहिँ कछु छूछा, तोहि बिनु मोहिँ कोउ बात न पूँछा।

सब औगुन गुन एक नहिँ, का परगासौं आनि।
मोहिँ निरगुनियहिँ मानि ले, आपु बड़ाई जानि ॥ ४०६ ॥

बिनती सुनि भा कुँअर मयारा, बिनती एक जगत निस्तारा।
बिनती सब औगुन गुन होई, सेवक बिनत[1] तजै नहिँ कोई ॥
गरब अगिन गहिरे सब जरा, बिनती ओड[2] सरग निसतरा।
रिसि वैसन्दर जहँ पर जाई, बिनती पानि परे बुझि आई ॥
जहँ सेवा तहँ बिनती जानहु, बरु दोनों कहँ एकै मानहु।
ठाकुर कबहुँ दोष जो गहई, सेवक आगे बिनती कहई ॥
तब सेवक हिय माँह समाई, जहँ लहुँ औगुन गुन होइ जाई।

आपन अवगुन सँवरि के, गरब करहु जनि मान।
जौ औगुन पति मानई, सोई गुन परिमान ॥ ४०७ ॥

कुअँर कहा सुनु राजकुमारी, हौं जोगी जस भँवर दुखारी।
खोजत अहा जो केतकि बासा, बीचहिँ अंबुज कीन्ह गरासा ॥
जौलहुँ भौंर न केतकि पावै, कौंल आस तौ लौं न पुरावै।
तजि तोरे मोहिँ बाजु न आना, महूँ तोहिँ आपन कै जाना ॥
जो सँतोख मानहु जिअ बारी, तोहि सौं भाषौं बात रसारी।
नैन कौंल तुअ नैनन लावौं, अंक मे गहि तव हिया सेरावौं ॥
मोहिँ न अपन प्रेम रस चाऊ, तोहि लागि यह करौं सुभाऊ।

हम तुम मानहिँ सबै रस, जहँ लहु प्रेम सुभाउ।
एक प्रेम रस होइ तब, जब चित्रावलि पाउ ॥ ४०८ ॥

१—विनीत, नम्र। २—रोक, ढाल,

कौलैँ रहसि कहा सुनु साईँ, चित्रावलि पावहु जब ताईँ।
हँसि बोलहु देखहु मम ओरा, जानहुँ पायो लाख करोरा॥
हौं अबही रस रीति न जानौं, चितवनि हँसनि प्रेम सुख मानौं।
तब हँसि कुअँर उलटि मुख हेरा, बरबस लाज कौल मुख फेरा॥
घूँघट ओट रही मुख गोई, नहनिन मान सुभावन होई।
पुनि गहि कुअँर लागि कँठ लाई, कौंल लागि हिय जरनि सिराई॥
अधरन लाइ अधर रस लीन्हा, एक रस छाड़ि और सब लीन्हा।

अधर रदन छद उरज नख, उधसि[1] गई पुनि माँग।
प्रथम समागम जनु कियो, सिथल भयो सब आँग॥ ४०९॥

भोर कुँअर जब बाहर आवा, देखि सखिन सब मंगल गावा।
रानी कौंलावति पहँ आई, माँग चूमि लीन्हिसि कँठ लाई॥
सभा बैठि पुनि सागर राजा, देइ लागि सब दाएज साजा।
रतन पदारथ मानिक मोती, सोन रूप ससि दिनकर जोती॥
दीन्हे हय उदन्त[2] औ दाँते, औ हस्ती पुनि निमने माते।
दीन्ह अनेक पेटारी भरी, पाटम्बर जरकस पाँवरी॥
आनि कुँअर कहँ सब देखरावा, कुँअर कहा हम काज न आवा।

हम गौनब तेहि पंथ जहँ, साबर[3] साथ न देइ।
उहवहिँ लागहि चोर संग, अस बैरी को लेइ॥ ४१०॥

राउ कहा जहँ लहु कछु मोरा, सब तोरै मोरि कौन निहोरा।
है हम सो सब थाती तोरी, जब चाहब तब लेब बटोरी॥
पुनि राजै सब कुटुँब बुलावा, जो जस हुता सो तस पहिरावा।
दै पहिराव बिदा करि आये, रहसत सब अपने घर आये॥
भा हुलास जिय गा सब दुंदू, पति परजा सब करैं अनन्दू।
परगट कुँअर कौंल मुख हेरा, हिएँ ध्यान चित्रावलि केरा॥
अस ओहि गुपुत लाइ चित रहा, कौंल कहत चित्रावलि कहा।

१—उधिर गई, उकसिगई। २—अदन्त, बेदांत वाले। ३—मृगछाला।

कुँअर जैस पीँजर सुआ, छिन छिन मन अकुलाइ।
गाढ़े बंधन बचन के, निकसि न सकै न जाइ(क) ॥ ४११ ॥

(२६) गिरिनार यात्रा खण्ड।

एहि महँ काहू आनि जनावा, गढ़ गिरिनार परब दिन आवा।
आवहिँ जोगि जती सन्यासी, तीरथ अस जस मथुरा कासी ॥
आवहिँ लोग बहुत घरबारी, बार बूढ़ तरुनी नर नारी।
एक मास लहुँ लागै हाटा, कौतुक कहि नहि पाइय बाटा ॥
ऊँच पहार सरग लहुँ बाढ़ा, एकै पैँडि[1] छोलि जनु काढ़ा।
एक दिस सीँग[2] दूरि लौँ बढ़े, अँत्रिख जानु विधाता गढ़े ॥
बीर नाउँ तेहि देवन्ह धरा, जो तहँ परै बीर सो परा।

जेहि इच्छा कछु जिय रहै, आगिल जनम विचार।
करवट लेहि पराग महँ, बीर परहि गिरनार ॥ ४१२ ॥

कुँअरहि चाउ उठा सुनि नाऊँ, कहिसि महूँ तेहि तीरथ जाऊँ ॥
मकु कोइ मिलै जोगि सन्यासी, आवै रूपनगर कर बासी।
कहै कुशल चित्रावलि करा, बूझि पंथ उठि चलौं सबेरा ॥
मँदिर जाइ कौँलावति पासा, कहिसि कि ऐ अछरी कबिलासा।
जौ दिन दस की अज्ञा पाऊँ, महूँ जाइ तीरथ कै आऊँ ॥
कौँल कहा का आज्ञा देऊँ, जियत न नैनन ओट करेऊँ।
तबहीँ लहु नीरज डहडहा, जब लहुँ सूरज सनमुख रहा ॥

जो तुम साईँ सूर जिमि, जाउ बचन मोरि पेलि।
सोइ रहब मैँ कौँल जिमि, गरल डारि मुख मेलि ॥ ४१३ ॥

जब तुम कंत पीठि मोहिँ दीन्ही, मैँ निहचै अपने जिय कीन्ही।
बिधि जौ साईँ होइ मयारा, तीरथ जाइ करूँ गिरिनारा ॥

(क) करि नहिँ सकै उपाइ—पाठा०। १—मार्ग, राह। २—शृङ्ग।

मोहूँ (क) कंत लेहु सँग लाई, सिव पूजौं गिरिनारहि जाई।
कुँअर कहा जौ निहचै होई, पुन्य काज कहँ बरज न कोई॥
तीरथ लागि सुजान पयाना, परे सहस हय पीठि पलाना।
साजे सब हस्ती सिंघली, एक तें एक छरक पै बली॥
चले कुँअर पुनि चढ़ि चँडोला, झूलहिँ मानिक रतन अमोला।

साठि सहेली कौंल सँग, एक ते एक सुरूप।
जिन देखा तिन कहा निजु, एह इंदर सुरभूप॥ ४१४॥

आइ कुँअर गिरिनारहिँ चढ़ा, देखिसि गढ़ बिधनै कर गढ़ा।
जहँ तहँ देखी अनबन हाटा, चारिहुँ ओर पटन सब पाटा॥
जुरे आइ सब जोगी जती, तीरथ कहँ आए गढ़पती।
रहा बिवेक न राजा परजा, वैरिहुँ कोऊ तहाँ न बरजा॥
पहिले गरब सीस तें डारा, पाछे नए देव के बारा।
कोइ लव लाइ बैठि एक ठाऊँ, जल थल जपै बिधाता नाऊँ (क)॥
कोउ गावै गुण कृष्ण मुरारी, कोऊ मौन होइ बैठ पहारी।

देखि परावा लोग सब, लीन्ह कुँअर उर साँस।
आपन कोऊ न तहँ मिला, बहुरा होइ निरास॥ ४१५॥

प्रेम पंथ अकसर पग दीजे, एहि जा कोऊ संग नहिँ लीजे।
एहि मारग महँ दूसर नाहीं, होय भरम देखैं परछाहीं॥
कुँअर कटक लै ढूँढ़न चाला, संग सकल माया जंजाला।
जो सेना गौनत एहि पंथा, गोपिचन्द नहिँ पहिरत कंथा॥
अगसर होइ जो परयो अधावा, कुँअरहिँ ढूँढ़ि बेगि लै आवा।
दूत जो कुँअरहिँ खोजन गये, ते हम आइ सुरत हम भये॥
जहँ तहँ ढूँढ़त फिरे उदासा, अब तिन्ह के लै परूँ* अकासा।

(क) मोहिँ पुनि। पाठा०।

(क) कोऊ बीर बरी जिव देई। कोउ कह बीर सांस उर लेई॥

जहाँ न मानुस संचरे, निरजन जान मरम्म।
जम्बुदीप के मानई, भरतखंड औगम्म ॥ ४१६ ॥

(३०) जोगी ढूँढ़न खण्ड।

चित्रावलि जब चतुर चिन्हारी, कुँअर खोज पठई जन चारी।
एहि महँ सूध पंथ जो पावै, बेगिहिँ खोजि कुँअर लै आवै॥
औभट परे जो अहै अयाने, पंथ न सूझा भवहिँ भुलाने।
जिन पच्छूँ दिस कीन्ह पयाना, पहिलहिँ गा सो देस मुलताना॥
देखेसि सिन्धी लोग सबाईँ, महिरावन सब सेवहिँ साईँ।
हेरेसि ठट्ठानगर सुहावा, बिहग हरिन सेवैँ गंजावा॥
बरन बरन सब मानुस रूचा, जान उहा लरका न बलूचा।

ढूँढ़हि बहुतै नद हटी, रनखर धक्कर जान।
पुनि पेशावरहिँ जाइ के, हेरेसि सकल जहान ॥ ४१७ ॥

काबुल हेरि मोगल कर देसा, जहाँ पुहमिपति होइ नरेसा।
बदख़सान जहँ दीन सम्हारा, ख़ुरासान महँ वाद पसारा॥
देखेसि रूम सिकंदर केरा, स्याम रहा होइ सकल अँधेरा।
देखेसि मक्का विधि अस्थाना, हीय अंध तेँ पाहन जाना॥
हाजी सँग मिलि गयो मदीना, का भा गए जो साफ़ न सीना।
गा बगदाद पीर के तीरा, जेहि निहचै तेहि संग हमीरा॥
इस्तम्बोल[1] मीसर पुनि हेरा, गा लदाख लहु कीन्हिसि फेरा।

घर घर नर नारी सकल, हेरेसि पुनि गिरि मेर।
जौ लहुँ दीप न उर बरै, तौ लहुँ जगत अँधेर ॥ ४१८ ॥

दखिन देस को जे पगु धारा, चला ताकि सो लँक पहारा।
पहिलेहि गै हेरेसि गुजराता, सुन्दर धनी लोग सुख राता॥

१—कुस्तुन्तुनिया का एक नाम।

गयो जाम जहँ कच्छी होई . लोग सुरूप सुखी सब कोई ।
पंथिन्ह मिलि पुनि गौ सैलाना , बाबा आदम कर अस्थाना ॥
सेतुबंध रामेश्वर लाँघा , जहँवा जात काँप नर जाँघा ।
देखेसि लँका कंचन केरा , सरंदीप सब घर घर हेरा ॥
सिंघलदीप दीप उजिआरा , जो देखा सो मनि मनिआरा ।
नर नारी सुन्दर सबै , बसगित जनु कबिलास ।
ऊँच नीँच घर पदुमिनी . मानहिँ भोग बिलास ॥ ४१९ ॥
बलंदीप(क) देखा अँगरेजा . जहाँ जाइ नहिँ कठिन करेजा ।
ऊँच नीच धन सम्पति हेरा , मद बराह भोजन जिन केरा ॥
जहाँ जाइ उँह बन्दर साजा . लगा संग चढ़ि गयो जहाजा ।
हेरा करनाटक नोरंगा . कुखर उड़ीसा औ तैलंगा ॥
स्याम बरन हबसा अरु जंगी . तामिल देखी जाय फिरंगी ।
देस उड़ीसा साधन धावा . हुगली बेली बंदर लावा ॥
उलटि बगार जाइ पुनि हेरा . घर घर दक्खिन कीन्हेसि फेरा ।
देखा गढ़ देवगिरि कर , पुनि आसेरहि आइ ।
ऐसा कोइ न सँग मिला , जो चितउर लै जाइ ॥ ४२० ॥
जे पूरब दिस कहँ मुहँ फेरा , पहिलेहिं आइ सो मथुरा हेरा ।
बिन्द्राबन महँ ढूँढ़े जोगी , जैसे गोपी कृष्णबियोगी ॥
दिल्ली तख़्त जो साहन केरा . सो देखा अगरा पुनि हेरा ।
आइ पयाग कीन्ह तिरबेनी . करवट देखी सरग निसेनी ॥
कासी माहिँ बिसेसर पूजा . जाहि देव सर आहि न दूजा ।
रहि दिन चारि फिरा पँचकोसी , पूछे फिरि फिरि बाभन जोसी ॥
आस न पाएसि चला निरासा , हेरेसि चढ़ि के गढ़ रोहितासा ।
पानी पूरक होइ अन , घाटिन बिकट चढ़ाउ ।
बरिस सहस जौ लागै . बरबस हाथ न आउ ॥ ४२१ ॥
मग्गह देखि फिरा सिर धुनी , तिरहुति मेँ बिद्यापति[1] सुनी ।

(क) बलदीज. पाठा० । १—एक मैथिल कवि ।

पुनि आवा जहँ गढ़ीदुआरा, एकै पंथ चलै संसारा॥
दक्खिन परबत उत्तर गंगा, सोई चलै जेहि पौरुष संगा।
पहिलहिँ जो नहिँ करै विचारा, बीचहिँ मारि लेहिँ बटमारा॥
जहाँ तहाँ देखहि परिकर डंका, राम जूधि जस रावन लंका।
जो पुहुमी बलि दरबन राता, तहाँ जात कोउ पूँछ न बाता॥
आपुहिँ आपु जनावहि जाई, जो वोहि मारग देइ बताई।

प्रविस परेवा नगर महँ, परा कुतुब के पाय।
ढूँढ़िसि भाठी माहिँ पुनि, बारी बारी जाय॥ ४२२॥

पुरुब अपूरब देस बँगाला, पुहमि हरियरी तीनिहुँ काला।
कटहर नरिअर आम सोपारी, अपनी बारी धनी बखारी॥
हरियर सदा फूल फर डारा, जनम न सुनी नाउँ पतझारा।
पाँच मास भूमि जल पूरी, धूरी नाउँ पै देखे न धूरी॥
सुखे पंथन चले बटाऊ, नाउ पाउ कै देहली पाऊ।
अन धन सुक्ख दुःख नित गाली, दया हिये पै लोग बँगाली॥
जहँ लहु हिंछा तहँ लहु मिन्ता, हौंछा मिले बिसारै चिन्ता।

सब कहँ अमिरित पाँच है, बंगाली कहँ सात।
केला काँजी पान रस, साग माछरी भात॥ ४२३॥

उतरा ब्रह्मपुत्र के पारा, पीर बँदर चढ़ि माउ पुकारा।
गयो सोनारगाँव जब जोगी, परसे पाँच पीर जनु रोगी॥
देखेसि मलुआ औ चटगाऊँ, सोनदीप[1] पुनि उत्तम ठाऊँ।
देखेसि पीगु मनीपुर राजा(क), निभरम अपने देस बिराजा।
औ पुनि हेरेसि कूँच कछारी, जहँ माटी के परबत भारी।

१—वर्म्मा। (क) देखेसिनी को औ चित राजा।

मखरहंग मौ हेरेसि आवा, आव नाउ पै कोउ न पावा ॥
देखेसि जाइ असाम कै साजा, सरग देव जहवां कर राजा ।
निसि दिन रहै मचान पर, बाहन हस्ती नाउँ ।
हारिल ज्यौं अँत्रिख बसै, पुहमी धरै न पाउँ ॥ ४२४ ॥
हेरेसि जाइ देस पुनि चीना, भँवत भँवत जोगी भा हीना ।
जो जहँ हुत सो तहँ अकुलाना, कहहिँ देस कर भयो निदाना[1] ॥
पुहुमी नाहिँ कहा अब धावहिँ, सरग जाइ हेरहिँ मकु पावहिँ ।
बीर परहिँ अब गै गिरिनारा, सग्ग निसेनी एहि संसारा ॥
तीनौं चले परब दिन जागी, हरि हरि कहैँ मीचु निअरानी ।
घाटी चढ़त तिनहुं भा मेला, जानहुँ प्रान गात मौं खेला ॥
पाउ न उठै सरग भइ घाटी, को लै कै पहुँचावै माटी ;
कहहिँ कि हम सब जग फिरे, ओहि मूरति छित नाहिँ ।
अब निहचय एहि बीर चढ़ि, चलहु सरग कहँ जाहिँ ॥४२५॥
जो जेहि आस मरन निजु कांधा, अर्वासि सोई आवै सँ राधा ।
विनु जिउ दिए न पावै कोई, के जिउ होइ कै प्रीतम होई ॥
चढ़ि गिरिनारहिँ देखहिँ कहा, लोग चहूँ दिसि धावत अहा ।
पूछहिँ कहा लोग सब धावा, कौन अपूरब कौतुक आवा ॥
कहहिँ आइ एक राजा लोना, देखत जनु सिर मेलै टोना ।
अस सुन्दर मानुष नहिँ होई, निहचै देवता आहै कोई ॥
जोगी सुनि आए पुनि तहाँ, पूरन ससि जग वन्दै जहाँ ।
मुख देखत सुखमा हिए, परा अगिनि उर पानि ।
बन्देउ पुहुमि लिलाट धरि, चतुर चिन्हि पहिचानि ॥४२६॥
पुनि जौ देखा ससि मनिआरा, धरा पुहुमि सिर दूजी बारा ।
कहहिँ कि धन बिधि धन वह राजा, जेहि कुल अस मयंक उपराजा ॥
हम रेनुक वह रबि अति ऊँचा, रबि रेनुक पुनि कहाँ पहूँचा ॥

१—अन्त ।

को अस मिलै कहै जो नाऊँ, जाति बखान जनम कर गाऊँ ॥
जेहि पूछै सो कोऊ न कहा, जगत देखि बावर होइ रहा।
एहि महँ कुअँर उतरि गढ़ आवा, लोगहिँ रहा हाथ पछतावा ॥
जत कत जगत चला उठि लोई, देवता नहिँ का पूजै कोई।
जोगी आयो उतरि गढ़, चले कटक सँग जाहिँ।
होइ हुलास अनन्द अति, कंथा महँ न समाहिँ ॥ ४२७ ॥

पंथी चलत जो भयो सँघाता, पूछो ताहि कुँअर की बाता।
तेई कीन्ह सब बात उघारी, एह राजा हुत आदि भिखारी ॥
दोष न जाने दहुँ का अहा, पाँच मांस बँद भीतर रहा।
कौंल लागि सोहिल चढ़ि आवा, सागर राय बहुत दुख पावा ॥
एह गहि खरग दीन्ह तब आसा, जग्त अगिनि राखा रनिवाँसा।
हनि मारिसि सोहिल बरिआरा, सागर लूटा सहन भँडारा ॥
अब सोई तेहि दीन्ह बिआही, किस्न सुजान कौंल जनु राही।
सुनत कथा संतोष भा, जोगिन पाई सिद्धि।
जनु बेपारी घर चले, लै लाहा[1] नव निद्धि ॥ ४२८ ॥

---

(३१) चित्रावली-बिरह खंड।

चित्रावलि चित भएउ उदासा, पिउ न गए दै अवधि की आसा।
बिरह समुँद अति अगम अपारा, बाज अधार बूड़ मँझ धारा ॥
चहुँ दिसि हेरहुँ हितु कोउ नाहीँ, बूड़त काह उँचावै बाहीँ।
निसि दिन बरै अगिन की ज्वाला, दुरगा मँदिल भयो है बाला ॥
बुझै न लूम सगर लहु बाढ़ा, पंथी गयो लाइ हिय डाढ़ा।
जोगी सुरति रहै चखु माहीँ, ज्योँ जल महँ दीपक परछाहीँ ॥
झलमल जोति होइ उजियारा, पानी पैाम बुझाव न पारा।
बिरह अगिन उर महँ बरै, एहि तन जानै सोइ।
सुलगै काठ बिलूत[2] ज्योँ, धुँआ न परगट होइ ॥ ४२९ ॥

१—लाभ। २—[अ० بلوط] एक वृक्ष।

एक दिन कहिसि कि पे रँगमाती[1] , करिया भयो रूप रँगराती ।
रूप रंग सब लै गा जोगी , लोग कुटुँब जानै यह रोगी ॥
जोगी गयो छाड़ि तजि माया , भोर कि धुईँ भइ मम काया ।
जोगी करत कहा दहुँ फेरी , आसन परी छार की ढेरी ॥
बिरह पवन जो करै झँकोरा , बिथुरे छार न कोऊ बटोरा ।
जोबन गज अपसर[2] मद कीन्हे , अब न रहै अँधियारी[3] दीन्हे ॥
निसि बासर तन कानन गाहा , जाकी साल हिये तेहि चाहा ।

जोबन सखी मतंग गज , तो लहुँ लाग गोहार ।
जैालहुँ अपसर होइ कै , सीस न डारेसि छार ॥ ४३० ॥

सुनि रँगमती कहा सुनु बारी , जोबन मैगल मद दिन चारी ।
अपसर होइ देइ नहिँ कोई , जैा तिय आपु महाउत होई ॥
अंकुस सकुच गहै कर नारी , दै आँखिन्ह घूँघुट अँधियारी ।
अै कुल-कानि महादिढ़ अंदू[4] , निसि दिन राखै मेलि कै फंदू ॥
जैा हठि कै अरि पांव निकारा , हटक बुद्धि चरचा गड़दारा ।
यह संसार रीति अस अहई , जो जेहि लाग दुःख जिय सहई ॥
जो तजि ठाउँ सकै नहि जाई , आपुहिँ तहाँ मिलै सो जाई ।

आजु बदन तोर कैाँल सम , अैारै रंग सुभाउ ।
सब तन लागै मधुप पुनि , मकु कोउ चाह सुनाउ ॥४३१॥

एहि महँ सखी एक हितकारी , आई हँसति भई रतनारी ।
कहिसि कुँअरि सुनु बचन सुहाए , गए बिदेस नपुंसक आए ॥
बदन अरुन हिय हुलसत अहहीँ , जानहुँ बचन कछुक सुभ कहहीँ ।
सुनतहिँ चली धाइ बरनारी , गिरि रही पै सखिन्ह सँभारी ॥
जोगी आइ मनावत नाथा , दरस पाइ भुइँ लायेउ माथा ।

१—एक सखी । २—मनमाना, मनजैाकी । ३—आँख ढँकने का ढोका ।
४—हाथी के पैर बांधने के लिये एक यन्त्र ।

कहिस कि हम पुहुमी सब धाए, चित्र सरूप चीन्हि अब आए॥
सुनि रहसी चित्रावलि हीया, चित्रहिँ जानु फेरि रँग दीया।

हिय हुलास बिहँसे अधार, औ कपोल रँग होइ।
पुनि उपजै उर धक धकी, होइ न औरे कोई॥ ३३२॥

पूछिसि कौन रूप सो देखा, केहि दिन कौन भाँति केहि लेखा।
जोगिन रहसि रहसि जस जानी, आदि अंत लहुँ कथा बखानी॥
सुनि चित्रावलि हिय संतोखा, निहचै जानि गयो जिय धोखा।
कहिसि कि हौं तुम्ह ऊपर वारी, मोरे दुख बहु भए दुखारी॥
अब सुख करहु बैठि एहि ठाऊँ, करिहौं सेव जगत जब ताईं।
मैं सब इच्छ तुम्हार पुराई, तुम जग इच्छा पुरवहु जाई॥
सेवक सेव तजै जनि कोई, सेवा ठाकुर आपन होई।

मान सेव सोइ कीजिए, जासौं पति पहिचानु।
ठाकुर आपन जो भयो, सब जग आपन जानु॥ ४३३॥

---

(३२) पाती खंड।

चित्रावली हँकारि परेवा, कहिसि बखानि नपुंसक सेवा।
जोगी भँवर जगत फुलवारी, भँवइ बास लागि बारी बारी॥
मालति आवै भवँर भुलाना, कँवल कोस लै रहै निदाना।
अब पुनि गवँनहु सागर देसा, कहहु जाइ यह मोर सँदेसा॥
ऐ अति निठुर निछोही पीया, मानुस होइ न पाहन हीया।
जाके सीस ठगौरी डारी, तेहि कैसे एहि भाँति बिसारी॥
जोगी भेष फिरहु संसारा, कहाँ जाइ घर बार सँवारा।

रोइ रोइ चित्रावलि कहा, जस कछु जोगी कीन्ह॥
औ जहवाँ लगि दुख सहा, सो पुनि सब लिखि दीन्ह॥ ४३४॥

पहिले लिख्यो परसि सिर पावा, तुम बिदेस दुख हम तन छावा।
बिरह अनेक कटक दल साजा, हम उर पीर आइ भा राजा॥
मदन परथ[1] ह्वै धनुख सँभारा, सुख कौरौ दल मारि निसारा।
अगिन सोंटिया चहुँ दिसि धावै, जतमुख साजि सो ढूढ़ि जरावै॥
मैन मतंग गज देइ मकलाई, तोरि तोरि तन कानन खाई।
बिछुरन साल जानु तन पूरा, हस्ती मदन हस्त कर चूरा॥
जेहि दिसि गिरि पावै नहिँ रहई, तिय तन तुछक किमि कै कहई।

दुःख दगध संताप मिलि, परा फाँद कैँ आइ।
बिरह अहेरी गुंजरत, मन कुरंग कित जाइ॥ ४३५॥

यो निहचै जानहु जिय माहीँ, दुख दिन कर कोउ साथी नाहीँ।
हित जो अहे अहित होइ गए, बिरहानल अब बैरी भए॥
सीतर हुत समीर तुम संगा, अब सो अनल होइ लागे अंगा(क)।
सेज जो आहि हेमंचल पूरी, अब सो जरै लाग जनु होरी॥
पुहुप भए कंटक अरु सूआ, देखि न जाइ हाथ को छूआ।
चन्दन जो घनसार मिलावा, जनु करवार[2] सान पर लावा॥
जो सुख देन अहे सुखदीना, सब दुख देइ लाग पिय बीना॥

हिया न उघरै नैन पट, जो चीन्हति पिय तोहिँ।
तुमहीँ सब महँ होइ कै, देन दुःख सुख मोहिँ॥ ४३६॥

किमि निरबहे दिवस पिय बीना, जुग भे पहर कलप भै दीना।
जिमि जिमि दिनकर किरन पसारा, मानहुँ बान मकरधुज[3] मारा॥
मदन भुअंग डसै निसि आई, तरनि देखि विष तन छहराई।
दूभर घरी पहर को पावै, एक पल माँह लहर दस आवै॥
दुपहर बरस अगिन की धारा, सिर की आगि सहै को पारा।
नवत बेर सब कोउ न लखाई, चढ़त बेर मोहिँ कछु न सोहाई॥
बूड़त रबि जिय बूड़ै मोरा, कंत आउ सुठि जीवन थोरा।

१—परथ = अर्जुन। (क) रहै उसन सम दाहत अंगा। २—सं० कृपाण-तलवार। ३—कामदेव।

साँझ परत तरिवर चलत , चित्त बिहंगम जीव ।
दुख सँताप बिरहा अनल , आनि बसत हम जीव ॥ ४३७ ॥

स्याम रैनि बिनु स्याम दुहेली , छिन न परै कल सेज अकेली ।
स्याम रैनि देखी जिय डरा , अँगन बिरह आगि जनु जरा ॥
लोयन सिंधु थाह को पावै , बुडिबे के डर नीँद न आवै ।
पिय बिनु पोढ़ फाट नहि छाती , तारे गनत जात सब राती ॥
चाहौं रास बरग कस बना , बैरि गगन लगन को गना ।
कबहूँ धनु देखाइ जिय हरई , कबहुँ राहु करवट सिर धरई ॥
कबहुँ बिछु होइ साजै डंका , कबहुँ सिंह ते उपजै संका ।
बुधि न रही सुधि सब गई , जीव सहै दुख केत ।
मोरे मंगलचार तब , पिउ आवै करि हेत ॥ ४३८ ॥

सहि न जाइ पुनि रैनि अँजोरी , कान मास लागै जग होरी ।
हौं तो जरौं जो कंत न आहा , ससिहर जरै कहौ गुन काहा ॥
कै बिधि जग दो ससि निरमयो , एक तातो एक सीतल भयो ।
सीतर हुत सो गा तुम्ह संगा , रहो उसन[1] मम दाहत अंगा ।
कै दधि मथा खिरिन सो आही , परेउ बिरहनल[2] तो मैं दाही ॥
कै बिसरा जु अहा अतिहिता , कै देखि कुदिन न मानै नता[3] ।
अजहूँ आइ सँभारहु नाहाँ , लेहु उबारि जरत गहि बाहाँ ।
जौ पिउ चाहसि जीउ मम , आउ तोहिँ जिउ देउँ ।
तन जरि जिमि दुरद[4] भयो , कहसि तो कर कै लेउँ ॥ ४३९ ॥

जौ न पसीजसि जिउ मोर भाखी , पूछि देखु गिरि कानन साखी ।
करैं पुकार मज़ोरन गोवा , कुहुकि कुहुकि बन कोकिल रोवा ॥
गयो सीखि पपिहा मम बोला , अजहूँ गोखन बन बन डोला ।
उड़ा परेवा[5] सुनि मम बाता , अजहूँ चरन रकत सौं राता ॥

१—उष्ण = गरम । २ बिरहानल । ३ अ० ४६८ नाता, संबन्ध ।
४—सं० द्विरद = हाथी अर्थात् काला । ५—कबूतर ।

हारिल दुख सुनि भयो बिपाऊ, अजहुँ धरती धरै न पाऊ।
गा भुजंग हाइ गृह बासा, दहि भा स्याम बिरह के उसासा॥
कियो भँकार बिरह के आँचा, बायस भस्म होत तहँ बाँचा।

कुकनूँ पंखी जहँ बसै, तहँ प्रगटी यह पीर।
उठी आगि सुनि कै हिये, लगा सँवारै चीर॥ ४४०॥

बनसपती[१] सुनि बिथा हमारी, बरहे मास होइ पतझारी।
टेसू जरि पुनि भयो अँगारा, फरहद आगि लाइ सिर जारा।
दारिम हिया फाट सुनि पीरा, पै पिय तोर न दया सरीरा॥
भीतर जस खजूर कर बीआ, रहै छिपान मोर तस हीया।
रोइ रकत घुँघुँची भइ दुखी, तजी न बेल रही करमुखी॥
भयो खीन जस चल दल पाता, पैान उसास डोल मम गाता।
जो जग सुनी बिथा यह मोरि, ते सगहि पिय छाती तोरि॥

कहत फिरत मारुत बिथा, पातन सैाँ बन माहिँ।
धुनत सीस सुनि सुनि सब, पीय दया तोहिँ नाहिँ॥ ४४१॥

एक दिन भूलि मधुप उर लागा, दहि भा स्याम तबहिँ उड़ि भागा।
गै सरवर मम दुख परगटा, कैाँलहिँ हिए परे सुनि गटा[१]॥
गयो तेज सुनि कुमुदिनि केरा, बुड़िबे के डर बाँधी बेरा।
सरवर पुनि बिरहै भकझोरा, निसि बासर नन उठै हलोरा॥
डरन मीन चखु पलक न लावा, मोति सीप दुख बिरह जरावा।
बैसंदर रज पानि समीरू, सब महँ रही ब्यापि मोर पीरू॥
जैा इन्ह माहँ होत तोर गाता, तै। तोर हिय मम पीर पिराता।

बरन बरन कहँ जानिये, जगत सिष्टि सब भारि।
कैान बरन महँ साइँ तुम्ह, जेहि नहिँ चेत हमारि॥ ४४२॥

१—बनस्पति। १—कमल के फूल के बीच का छाता जिसमें बीज होते हैं। गांठ।

चैत माहिँ जब कीन्ह बिछोई, जग एहि समय न बिछुरै कोई।
बिछुरत गयो प्रान तजि देही, पिय बिनु परी पुहुमि खसि खेही॥
बिरह जो आइ घात कहँ लागा, लागि आइ ज्यों मरघट आगा (क)।
मैन आनि कीन्हेउँ तन नासू, सब कहँ मधु हम कहँ बिख बासू[1]॥
खाइ माँसु मधु होइ निहाला, बिरह कीन्ह तन मिरिग क छाला।
नवपल्लव बन तरु अवसारे[2], कत तोरे नहिँ नेह पिआरे॥
पलहत फूलन जो बन बारी, बिरह आइ जरि मूरि उपारी।

कहाँ बसन केहि कुसुम गुन, मधुकर हिए बिचारु।
भूलि रहा कहँ कौल कहँ, मालति बेलि सँभारु॥ ४४३॥

भा बैसाख(ख) आँसु चखु दूना, भा तन जान पान कर चूना।
जँह जँह परै नैन जल धारा, तहँ हि अंक हुत उठै लुवारा[3]॥
परी बिजाग पुहुमि सब जारी, जरहि मैन जो जानि उघारी।
भा चन्दन घनसार दुहेला, जनु घृत आनि अगिनि महँ मेला॥
चीर हार तन चोली ताती, तुम बिनु कंत सिराइ न छाती।
दानव दिवस साँझ अहि भारी, रकसिनि[4] रैनि भूत भिनुसारी॥
सो तन जानु बिरह जेहि पीरा, निसि बासर छिन कल न सरीरा।

हौं जोगिन जोगी भई तो पिउ खेह अँडार।
अब तिय बिरहा जरि जरी, आनि समेटहु छार॥ ४४४॥

जेठ तपै रवि सहसन तेजा, सोइ जाने जेहि कंत न सेजा।
अस जग तपन तपै एहि मासू, पुतरिन्ह माहँ सुखावै आँसू॥
बिरह न रहै छपाए छिपा, सहस तेज होइ हम तन तपा।
पंकज दल मलेज घनसारा, लागत अंग होइ सब छारा॥
बूड़ी अमिय दिष्टि पुनि सारी, तेहितैं अमर जरी नहि जारी।
बिरह बवंडर भा बिनु नाँहा, जिमि जिउ पात फिरै तेहि माँहा॥
पौन उसास उठै जस आँधी, परगट होइ न लाज कि बाँधी।

(क) कागा-पाठा०। १—बासुकि = नाग। २—निकाले। (ख) माधव मास, पाठा०। ३—ज्वाला। ४—राक्षसी।

ब्याधा बिरह सरीर बन, दाँव दहा जिम्र मोर।
छाँह न पावै कंत बिनु, आगि बरै चहुँ ओर ॥ ४४५ ॥

मास असाढ़ गगन घहराना, बरखा रितु आगम सब जाना।
बादर सेन स्याम होइ आए, बैरी बक कै पाँति देखाए ॥
लाग लोग घर आपन छावै, पंछो बन बन गेह बनावै।
मोर कन्त जोगी बनबासी, मँदिर सँवारि करौं का हाँसी ॥
जेहि उजारि पिउ बसै हमारा, बसती सो यह सबै उजारा।
बिरहा बैठ हिए होइ थानी, अब निहचै जानेहुँ जिउ हानी ॥
गये विदेस देस कहँ आए, हम कहुँ कंत सँदेस न पाए।

गिरही एहि रितु घर तकै, साँझ परे पुनि गाउँ।
जोगिहिँ जहवहिँ साँझ भै, सोई गाँउँ सोइ ठाउँ ॥ ४४६ ॥

जो एहि मास लोग घर साजा, मोहिँ बिनु कंत न छाजन[1] छाजा।
एह दुहु मास भीजि सुठि गई, बिरहा बली निचिंत न सोई ॥
आगर दुख दूलम सरबरी, निसि दिन पंथ निहारौं खरी।
बाक न मुख कैसे दुख कहऊँ, बन्धन पास आँधि चलु रहऊँ ॥
नेकु न कोऊ बिरह घुन घूनो, भइ बिनु तेज थाकि अब थूनी।
को रि चलै लइ पिउ की ओरी, थाँमि उचाइ वाहिँ लै मोरी ॥
हौं जेहि लगि यह ठाट सँवारा, कहाँ जाइ दहुँ भयो मयारा।

अजहुँ आइ सँभारु रे, बैरी कहउँ कि मिंत।
भोगी होइ तु सँवरइ, जागिहि का की चिंत ॥ ४४७ ॥

सावन बिरह बढ़ावन आवा, उनई घटा गगन सब छावा।
बरसन लाग मेघ अतुवानी, घर आँगन सब भरि गा पानी ॥
की दुख देखि मोर अति रोवा, कै कतहुँ भा प्रेम बिछोवा।
जो न बिरह धन सम्पति लूटी, रकत रोव कत बीर बहूटी ॥
बोलहिँ बिरही बिरह कि बोली, हम तन जारि कीन्ह जेहि झोली।

---

[1]—छान = छप्पर।

दादुर शबद जाइ नाहिँ सहा, निसरत प्रान लाज गा कहा ॥
तरुनिन पूजि तीज रितु मानी, झूल हिँडोल गाय पिक बानी ॥

दुख हिँडोल मो मन चढ़ा, बिरहा दिये झुलाय ।
खन पुहुमी खन सरग कहँ, निसि दिन आवै जाय ॥ ४४८ ॥

भादों भरन भरी बिख धारा, मों कहँ भवन भयो अँधिआरा ।
अस कहि सकल तमी तम चोरा, तमचुर बोल जानु भा भोरा ॥
रबि ससि नखत सबै छिपि गए, दिन औ राति दोऊ एक भए ।
कंत न सेज अंत[1] निसि नाहीं, नागिनि भई आस्तीँ[2] बाहीँ ॥
यह अँधिआरि भयावनि राती, बिहरि न जाइ बजर की छाती ।
नैनन नीर नदी होइ गई, बूड़त सेज भई घरनई[3] ॥
नैया-डोलन उदधि गँभीरा, बिनु खेवक को लावै तीरा ।

रैनि अँधेरी भँवर जल, चहुँ दिसि लहरि झँकोर ।
बैठे तीर निचिंत सों, का जानैँ दुख मोर ॥ ४४९ ॥

आसुन मास खंज परगटा, घन छीने पुहुमी जल घटा ।
सरद समा सीतल ससि राती, घनहिँ सिरान जगत की छाती ॥
हम घट बिरह दून कै दहा, लोयन नार[4] समुँद होइ बहा ।
हम तैस निरखैँ तीरन लागा, जस बर लहरि सिवारि क धागा ॥
लोचन भए मीन तेहि माँझा, एकहु पल पल[5] लागैँ नाहीँ ।
हीआ संख भा तजि तन साथा, मकु रे चढ़ै कैसों तुअ हाथा ॥
तैँ जोगी भूला केहि नादू, ए सब खेल तोर परसादू ।

नैनन होइ सब निसि गई, पलउ न सीतल लाग ।
अजहुँ आउ रे एहि समै, कहां लगावसि आग ॥ ४५० ॥

कातिक कहँ तक रह घट सँसा, पिय न गए दै अवधि की आसा ।
देस न जानउँ दहुँ कहँ पीऊ, कहु का कहि समुझावउँ जीऊ ॥

१—स, अन्त समाप्ति । २ (फा آستین) आसतीन, बहोरा । ३—घन्नाई (सं० घट + नौ) घडों को बांध के जो बेड़ा बनाते हैं । ४—जल । ५—पलक ।

मानहिँ परब देवारी लोगू, पूजहिँ गाइ करहिँ रस भोगू।
जग सोरान एहि समय सोहाई, हम तन दीन्ह दवाँ[1] जनु लाई॥
भोरहिँ मारुत सीतल बहा, घर घर जाइ सँदेसा कहा।
लोग सुपेती साजै लागा, हम हिअ भयो दून बैरागा॥
पिउ सँदेस कोउ कहै न आई, सपनेहुँ जाहि न ठावँ सुनाई।

नीँद न अवत रैनि दिन, होइ करेजेँ छेद।
धनि सो नारि जेहि पिय गयो, सपने कहि कहि भेद॥ ४५१॥

अगहन सकल गहन की घरी, धन सीता रावन जेहिँ हरी।
बिरह असोक सोक फल फरा, तेहि की छाँहँ धूप जिउ जरा॥
राम कि हनुवँत से सुधि लीन्हा, तूँ पिय निठुर सुरत नहिँ कीन्हा।
उहो जोगि दुत जे सुधि पाई, रावन हनि सिय जाइ छोड़ाई॥
तू जोगी कस लेसि न चाही, जानि बूझि तैँ बरबस बाही।
अजहुँ आइ सँभारहु कंता, बिरहा जाड़ भए एकमन्ता[2]॥
सीव[3] सजान[4] भयो बिनु नाहाँ, दबका फिरै जीउ घट माहाँ।

बिरहा दैत कुरंग होए, चरै सकल सुख बारि।
आइ दिवस एक राम होइ, कसन जाहु पिय मारि॥ ४५२॥

पूस मास जग जाड़ा मारा, दिनकरहुँ दिसि अगिन सँभारा।
पाला परै पोन झुरकाई, जाड़न देह सून होइ जाई॥
कबहुँ जाड़ न छोड़ै छाती, बासर घरी अैार सब राती॥
जेतिक अेाढ़ोँ सँवर सपेती, हहलि हहलि उर कापैं तेती।
रे जोगी एहि दूभर मासू, जेहि पल घटा न नैना आँसू।
हम कहँ मेलि हिवंचल कूईँ, कहाँ जाइ सुलगाई धूईँ॥
का कहँ रबि होइ प्रगटेहु पीऊ, काकर जाइ छड़ायहु सीऊ।

जाड़न मरैं दुकूल मैँ, अजहुँ सवँरि पिय आउ।
तू जोगी हैाँ जोगिनी, कंथा आनि अेाढ़ाउ॥ ४५३॥

१—दावाग्नि। २—एक मत। ३—शीत। ४—सजान = चेतन, प्रबल।

दूभर माघ भयो बिनु नाहाँ, रहन न जिउ देखैां घट माहाँ।
पिय बिनु हिय घन गहवर आवा, नैनन्ह मिलि माँहट[1] बरिसावा॥
पैान उसास झँकोर झकोरा, हिया करेजा काँपै मोरा।
बाढ़ी दिवस दुक्ख तन बाढ़ा, बरबस जीउ जाइ नहिँ काढ़ा॥
सिरीपंचिमी खेलैँ लोगू, मोहिँ बिनु कंत दून भा सोगू।
तरुनी फिरहिँ सीस[2] के राता. हम तिन देखि भूलि सुधि साता॥
सखिन्ह आनि हैां भरी गुलाला, प्रगटी रोम रोम तन ज्वाला।

जैा न हसैां तैा सब हँसहिँ, हँसैां तैा हँसी न आउ।
दुहुँ दूभर हैां बिच परी, पिय तुम्ह नेह सुभाउ॥ ४५४॥

फागुन बिरह पवन अधिकाना, हम तन जस तरु पात पुराना।
सुख तरुवर सेती बरु तोरा. ता पर दुख आँधी झकझोरा॥
आसा सुख बसंत फुलवारी, तजि न सकै यह खाखरि बारी।
चातक बोल जो हम सुख मूला, दहुँ केहि नैातम मंजरि भूला॥
कहाँ जाइ इन्ह चाचरि जोरी, हम तन मैन लाइ दह होरी।
धुआँ सबै दुहुँ नैन समाना, तातैँ अहि निसि नीर बहाना॥
स्वारथ लागि के न कछु कीन्हाँ, पै बिधि लिखा न काहू चीन्हाँ।

राम हेतु जिमि जानकी. तजि कुल कीन्ह पयान।
अस न जान जो लंकपति, करहि आन की आन॥ ४५५॥

जोगी हेतु लीन्ह अस जानी, हिया होइ जस दीपक पानी।
मकु चारिहुँ दिस लागि बिजागी, जाइ छाड़ि जस धुईँ कि आगी॥
जोगी जोग पथिक कहँ बूझै, पंथ अँधेर नाहिँ कछु सूझै।
निकसे मेलि भवन अँधिआरे, दै तारा उठि जाइ सवारे॥
जोगी संग लीन्ह यहि काजा, वेदन खोवे सुख उपराजा।
मकु दै मुरी जाइ के रोगी, अैाषद आन न जानै जोगी॥
जोगी हेतु कीन्ह गुन हीए, छूटै फाँद सबद के दीए।

१—माघ की वर्षा, महावत। २—शिशिर।

नेकु धंधारी हाथ दै , जाइ फाँद अरुझाइ ।
ज्यों ज्यों कोउ सुरझावै , त्यों त्यों अधिक फँदाइ ॥ ४५६ ॥

अब जो परी फाँद पिय तोरे , कहा होइ पछताएँ मोरे ।
व्याधा जो बन बिचहिँ फँदावै , मरै न पाउ सँभारि उठावै ॥
पै तुम्ह देख निछोही व्याधा , काहे लेसि एत अपराधा ।
कै अब आइ लेहु सँग लाई , कै कटु फाँद जाहुँ मोकलाई ॥
तैँ मोहिँ देखत खन पहिचाना , मैं तोर भेद न एकौ जाना ।
आन क भेद लिए जो लेहू , आपन भेद न काहुहिँ देहू ॥
जौ मैं तब पावति तुम्र अंतू , करत सोई जेहि बिलम्हत कंतू ।

मान इहै पछताव मन , रहा जनम भरि मोहिँ ।
बूझि लिएउ मैं सो बिखै , अहा हेतु जो तोहिँ ॥ ४५७ ॥

जौ तोर पीत खपर सौं साईं , आन न देखु नारि की नाईं ।
बिरह बैठि उर(क) खपर परेवा , भीजा नैन नीर जत रोवा ॥
जौ तोर हेतु भसम सौं जोगी , आइ देखु तिय बिरह बियोगी ।
तन मन जारि भसम कै राखा , कागन आइ ठोर[1] भरि चाखा ॥
हीवर आगि लाइ सो राखी , तुम्ह नहिँ गए होए मोर साखी ।
जो चाहसि अंबर[2] रतनारा , आइ देखु मम लोचन धारा ॥
रकत सुरंग धार सब टूटा , बसन जो रंगा जनम नहिँ छूटा ।

हीवर छाला चकर चखु , पलक पाँवरी भेख ।
दहुँ सो जोगी दिष्टि भरि , काहि जानि कस देख ॥ ४५८ ॥

पाती लिखी समापति भई , चूमि परेवा के कर दई ।
किहिसि पाइ गहि बहुत बिनाती , कहिसि लेहु यह दुख की पाती ॥
बिरहिन कर लागे पिअरानी , भीजी नैन नीर के पानी ।
जतन जतन कै राखी पाती , सेँकी लाइ लाइ धन छाती ॥

(क) उर पाठा० ।   १—चोंच ।   २—वस्त्र ।

अंजन सब आखर होइ लागा, बाँचत हिए उठै बैरागा।
पाती देखि देखि उठै मरोरा, भरि भरि जनम पात बन तोरा॥
पाती चढ़िहि जाए पिय हाथा, हौं आखर होइ चली न साथा।

तन पीअर मुख साँवरा, रही तुचा[1] होइ अंग।
तिय यहि गुनि पाती भई, कसन लेहु मोहिँ संग॥ ४५९॥

चला परेवा लै दुख पाती, बिहरै सुनत बजर छाती।
पुहुमि न धरै पाँउ अनुरागी, पाती जानु पवन सँग लागी॥
थारेन्ह दिवस जाइ निआरावा, देखेसि सागर देस सुहावा।
ठाँवहि ठाँव सोहावनि बारी, सोन रूप फूली फुलवारी॥
पोखर घाट चहूँ दिसि बाँधे, कुआँ अनेक रहट पुनि साँधे।
अनबन भाँति सवाँरि कियारी, सीँचहिँ अपनी अपनी बारी॥
झुंडहिँ भरहिँ पानि अच्छरी[2], माथे सोन रूप की घरी।

नीवी छवि लटकी झबा, पाएन नेउर बाज।
ठुमुकि धरहि जब पुहुमि पगु, परै इन्द्र सिर गाज॥ ४६०॥

परगट रहट आइ यह अवनी, मूरख जन कहँ भई चेतवनी।
समुझ न कोउ अधिक दुख कहा, होइ कुरंग तन पंजर रहा॥
निसि दिन नैन ढरै जल धारा, ऊँच सबद सुनि करै पुकारा।
तबहुँ न चेत हिये के आँधे, हम इहँ बाँध घरे[3] जिमि बाँधे॥
जौलहुँ होइ न यह तन नासा, छूट न कैसेहुँ गिँव कर फाँसा।
कोउ आगे कोउ पाछे परे, एकहि ठावँ आइ सब ढरे॥
भरी ऊँच सिर कीन्हे आई, छूछी चली जाहिँ सिर नाई।

रहट बिसह[4] एह मूढ़ मन, दिएँ अँधोटा नैन।
कहा जो हाँक्यो जनम भरि, चलेहु न एकौ कैन॥ ४६१॥

१—त्वचा = खाल। २—अप्सरा, सुन्दर स्त्रियाँ। ३—घड़े। ४—बैल।

गै देखेसि पुनि सागर गाऊँ, चारिउ दिसा लगा अँबराऊ।
ऊँच कोट अति सुन्दर साजा, धन राजा जाकर उपराजा[1] ॥
नौ खिरकी तहाँ रहहिँ उघारी, लागी सोन दुआरि केवारी॥
दुइ मसिआर ऊँच कै बारा, सरग माँह चमकै जनु तारा।
राउत राजा पातिन पाँती(क), बैसे बार अपूरब भाँती॥
बाहर चित्र विचित्र बनावा, भीतर जानु अंत जिन पावा।
आठ खंड आठौ मनिआरे, ठाँव ठाँव सब मोहनहारे॥

सेव करहिँ सब देवता, अस राजा बरिआर।
अगिनि रसोइँआ जल रजक, पौन बहारै बार॥ ४६२॥

देखि परेवा देस भुलाना, इुपुमी सरग जाइ नहिँ जाना।
कहिसि कि धनि पुहमी धनि ईसा, जाकर सब कौतुक तहँ दीसा(ख)॥
लोभ चार बाझै जग पाँखी, मधि एहि देस विदेसी माखी।
निहचै जो आवै एहि गाँऊँ, आन देस कर लेइ न नाऊँ॥
इहवाँ राजकुअँर सुख भोगी, हौं परदेसी निरधिन जोगी।
राजा राउ न पावहिँ बारा, को हमार लै कहै जोहारा॥
राउत राना ठाढ़ तँवाहीँ[2], हम बपुरे केहि लेखे माहीँ।

भसम अंग गेरुआ बसन(ग), जटा धरै जनि कोइ।
मान सो आसन आन है, जातैँ दरसन होइ॥ ४६३॥

सवँरि परेवा गुरु-उपदेसा, सरवर तीर ठाँव एक लेसा।
तहँ बैस्यो गुरु आसन मारी, लाइ समाधि ब्रह्म की तारी॥
मारग बाँधि पौन परचावा, पेट खलाई पीठि सौंलावा।
उपजी अगिन तेज तन बरा, भितरहिँ भीतर मंदिर जरा॥
अमिअ कुंड कर बार उघारा, बरसाई अमिरित की धारा।

१—बनाया हुआ। (क) बत्तिस परतिहार की पाती—पाठा०। (ख) जाकर यह पुहुमी जगदीसा। पाठा०। २—प्रतीक्षा करते हैं। (ग) कथा से ली चिरकुटी—पाठा०।

हीवर सर अमिरित जल भरा , दहि दहि कँवल नाल भा हरा ॥
पौन तेज जल उठेउ हलोरा , डगमग नाल कौंल भकझकोरा ।
हंसा सकती ध्यान धरि , रँग रँग हेरै लाग ।
जो मन चाहै सो मिलै , महा सिद्ध सिर भाग ॥ ४६४ ॥

(३३) सिद्धसमागम खंड ।

भयो सोर सब नगर मँझारी , करहिँ बखान सकल नर नारी ।
सागर गाँव सिद्ध एक आवा , मुख देखत मन इच्छ पुरावा ॥
कुष्टी कया बाँझ सुत पावै , अंधहिँ चखु दै जग देखरावै ।
कहै चाह परदेसी केरी , बिछुरेहिँ आनि मिलावै फेरी ॥
सुनि के धाए सब नर नारी , बार बूढ़ तरुनी औ बारी ।
जेहि निहचै ते निधि लै आए , निहचै बिना बादि सब धाए ॥
निहचै नग जानि डारो कोई , निहचै सिद्धि परापति होई ।
निहचै इच्छा सरग हुत , आनि मिटावै दुंद ।
जैसे नैन चकोर कहँ , अमी पियावै चंद ॥ ४६५ ॥

सुना कुँअर पुनि सिद्ध बखाना , अकसमात चित रहस[१] समाना ।
कहिसि कि भाग जोर समुहाई[२] , तब अस सिद्ध मिलै कोउ आई ॥
करूँ जाइ मन बच कै सेवा , मकु तो नहिँ होइ जाइ परेवा ।
चित्रावलि कर कुसल सुनावै , रूपनगर कर पंथ दिखावै ॥
चला कुँअर निहचै यक-हाथा[३] , सेवक पाँचन न छोड़हिँ साथा ।
महत गरब दोऊ तहँ त्यागे , मन बच कर्म तिनो संग लागे ॥
सनमुख आइ दरस जब कीन्हाँ , वै ओकहँ वै ओकहँ चीन्हाँ ।
देखत दुहूँ आनन्द भा , रहसत आगैँ आय ।
परेउ परेवा कुँअर पग , कुँअर परेवा पाय ॥ ४६६ ॥

१—उत्साह । इच्छा । २—सामने आता है, उदय होता है । ३—अकेला ।

कहै कुँअर सुनु हनिवँत बीरा, लागु कंठ ज्यों सीत समीरा।
कहु कुसलात बेगि सिय केरी, निसरत प्रान राखु घट फेरी॥
हौं जिमि राम भयो बैरागी, नख सिख परी बिरह की आगी।
राम संग हुत लछिमन भाई, हौं अकेल दुख पुनि अधिकाई॥
हनिवँत कहा सीय कुसलाना, राघव बदन सुनत भा राता।
औ पुनि बिथा कहिसि ओहि केरी, जेहि दिन तै तुम ओहि छाँडेरी॥
तहँहीं दिवस देखि अकसरी, रावन बिरह नारि से हरी।

सीता रावन बस परी, करौ न कोटि उपाइ।
तौ लहुँ नाहिं उधार निजु, जौ लहुँ राम न जाइ॥ ४६७॥

पुनि दीन्हेसि चित्रावलि पाती, खोलि कुँअर लाई ले छाती।
सुलगत काठ लागु जनु लूका, दुहूँ आगि मिलि उठा भभूका॥
हिया जरत जो लिहिसि उसासा, धूम बरन होइ गयो अकासा।
अमिरित बचन भरी हुत छाती, ता सों अगिन मुख बाँची पाती॥
पाती पावस सलिता भई, दूनहुँ[1] कवँल दुःख जल मई।
आखर मगर गोह घरिआरा, अरथ भँवर परि कठिन निसारा॥
भँवर अनेक पैठि मन तरा[2], एक तैं निकसि एक महँ परा।

पाती जनु पावस नदी, मन नकि पार तराइ।
चित्रावलि दुख अगम जल, बूडि बूडि तहँ जाइ॥ ४६८॥

पाती पढ़ी समापति भई, बिरह झकोर कुँअर सुधि गई।
हीवर जिमि ग्रीषम रबि जरा, जिउ जनु पात बवंडर परा॥
बर कै उठा चला लै चाहा, पाइ फिरा जैसे उतसाहा।
पुनि जो चेत होइ देखा हेरी, पायन परी बचा की बेरी॥
कहिसि कहौं का दुःख बखानी, जनम सिराइ न कहत कहानी।
हैा पंछी भूला हुत आवा, जाल मेलि एहि गाँव फँदावा॥
चार लोभ बैसेउँ एहि आड़ा[3], अचक आइ खोंचा उर गड़ा।

पाँखन लासा प्रेम का, बाचा बंधन पाइ।
दै दै मारौं मूँड बहु, निकस न केहु उपाइ (क)॥४६९॥

१—किनारा। २—तैरा। ३—अड्डा। (क) दै दै मारौं मूँड इह निकसि न कैसहुँ जाइ।

अब तोहि मिलें भयो संतोखा, आसा मिली गयो जीउ धोखा।
करहु उपाइ गवँन जेहि होई, मैं आपन बुधि मति सब खोई॥
चोरीं चले धरम की हानी, परगट चहुँ दिसि रोकहिं रानी।
सुनि कै बिथा परेवैं कहा, अब दुख सब बीता जित अहा॥
परगट जाइ सँवारहु कंथा, अंजन लाइ गुपत चलु पंथा।
रहसि कुँअर मंदिर महँ आए, कौंलावति कहँ निअर बुलाए॥
कहेसि सुनहु अब राजदुलारी, हौं परदेसी आदि भिखारी।

आउ न हमरे काज यह, राज पाट सुख भोग।
चित्रावलि हियरे बसी, जाकर बिरह बियोग॥ ४७० ॥

अब लहुँ मिला न अगुआ कोई, जेहिं परचय मोहि दिस कै होई।
अगुआ मिला चलेउँ उठि संगा, तुम जनि करहु कौंल मन भंगा॥
जौ बिधि आस पुरावै मोरी, तो मैं चेत करब पुनि तोरी।
सुनतहिं गवँन धसकि उर गयऊ, कंचन अँग राँग पुनि भयऊ॥
कहिसि कि ऐ जग जीवन साईं, मोर जिअन तुअ दरसन ताईं।
जो तुम होब बिदेसी राजा, इहवाँ मोर कौन अब काजा॥
पाछें महा दुःख पुनि कीता, जहवाँ राम तहाँ पुनि सीता।

जैसे पनहीं पांव की, तैसे तिया सुभाउ।
पुरुष पंथ चलु आपने, पनहीं तजै न पाउ॥ ४७१ ॥

कहै सुजान सुनहु वर नारी, तुम सयानि औ बूझनिहारी।
मेहरिहिं कहैं लोग सब देहरी, धरै असन अस्थिर सोइ मेहरी॥
औ पुनि घरनि कहै सब कोई, घरहिं सँभारै घरनी सोई।
राघव जौ लाई सँग सीता, बिछुरें जनम दुःख सब बीता॥
तुम कछु चित चिंता जनि करहू, जो हम कहा सोई चित धरहू।
इतना कहि कंथा गिवँ डारा, औ पुनि अंग चढ़ाएउ छारा॥
लुकअंजन लै आँखिन दीन्हा, गा छिपाइ चटेक[1] जनु कीन्हा।

१—इंद्रजाल, दृष्टिबन्दी का खेल।

कौंला देखि अचक रही, जनु ठगलाव देखाए।
पुनि लागें बिरहा धका, गिरी पुहुमि मुरछाए॥ ४७२॥

देखि सखी सब कीन्ह अँदोरा[१], गहि उठाइ बैठीं लै कोरा।
सुनि कौंलावति मंदिर कूका[२], परी अचल गंगा जिय हूका[३]॥
राजा पुनि बिसँभर होइ धावा, नंगे पाँव तहाँ चलि आवा।
देखि अवस्था धिय कर रोवा, दुनहुँ बदन नैन जल धोवा॥
पूछहिं बिथा सुनावहिं ईठा[४], गुर गूँगा कर तीत न मीठा।
रानी पूँछि हारि जब रही, कौंल बिथा तब फूलन कही॥
प्रति उत्तर जस दुनहुँ बीता, औ सुजान चेटक पुनि कीता।
आदि अंत बहु साखिन सब, एक एक कीन्ह बखान।
सुनत आगि दुहुँ उर परी, औ औहि पारा प्रान॥ ४७३॥

राजकुँअर कर सुनत बिछोहा, धाह[५] मेलि पुनि राजा रोआ।
कौंलावति दुख दीरघ जानी, उमड़ि चली गंगा चखु पानी॥
सखी सहेली पुनि सब रोईं, समि अथई जानहुं सर कोईं।
पर आपन जन परिजन लोगा(क), सगरें नगर परा सुनि सोगा॥
नर नारी जुबती औ जरा, सब के सीस गाज जनु परा।
मलि मलि हाथ कहैं सब कोई, अस परजापति[६] आन न होई॥
पहर एक बीता होइ रोरा, कोऊ साँच कोउ झूँठ निहोरा।
छमाँ[७] कराए सब जना, पँडितन्ह ज्ञान बुझाइ।
मारे बिरह बयारि के, कौंल रही कुम्हिलाइ॥ ४७४॥

जोगी खेल जो चेटक खेला, छाड़ि मँदिल होइ चला अकेला।
आवा बार जहाँ जग रोका, भीर लागि पै काहु न टोका॥
देखि भीर जिय कौतुक होई, सब संगी पै चीन्ह न कोई।

१—शोर, चीत्कार, हल्ला, २—गूँज। ३—पीर। ४—सं० इष्ट = मित्र, हितु। ५—ढाढ, चीत्कार। (क) परे आइ जेते पुर लोगा पाठा०। ६—प्रजापति = ठाकुर। ७—शान्ति।

आदि पंथ सो आगे कीता[1] (ख), यह कौतुक जनु सपना बीता ॥
बेगिहिँ आइ परेवहिँ मिला, संगिहि देखि कौंल जनु खिला ।
पंथ चले तजि सागर गाऊँ, जपत चले चित्रावलि नाऊँ ॥
सूध पंथ अगुवा लै आवा, बेगहिँ रूपनगर निअरावा ।

कहिसि कि एही ठाँव तुम, बैठि रहहु लै लाइ ।
हैां चित्रावलि निअर होइ, चाह[2] सुनावैां जाइ ॥ ४७५ ॥

---

(३४) कथक खंड ।

जब दीन्हा सोहिल कहँ दागा[3], धुआँ तस उठा गगन कहँ लागा ।
सागर नगर जो अहै बसाए, धुआँ देखि चखु जल भरि आए ॥
कहहिँ कि जे एकछत यहि मारा, और को आहि जगत लघु तारा ।
हम हैँ सब सलिता लघु नीरा, वह निजु सागर गहिर गंभीरा ॥
देस देस सब राउ सँकाने, अहै अडंड डंड तिन्ह माने ।
भाँटन जोरि भटन्त[4] सुनावा, गुनियन उहै गीति पुनि गावा ॥
कथक देखावहिँ कथा बखानी, घर घर बालक कहैँ कहानी ।

सोहिल गरब न थिर रहा, गरब करै जनि काउ ।
निसि बासर सब देस महँ, घर घर इहै चवाउ ॥ ४७६ ॥

बीजानगर केर एक गुनी, आवा रूपनगर जस सुनी ।
धन लगि घर तजि भा परदेसी, गावै कथा देखावै भेसी ॥
गावै सत संती कर जानी, हरिचँद भरा डोम घर पानी ।
रामचन्द्र जिमि रावन हना, सीता आनि दीन्ह पुनि बना ॥
गावै पुनि किसुना औतारा, मधुपुर जेस कंसासुर मारा ।

१—किया । (ख) लीता । २—खबर, सभाचार । ३—दाह । ४—काव्य ।

भारथ आइ कोप उदगरा, जिमि पांडव कौरव कुल मारा ॥
नैातम[1] कथा जोरि पुनि गाई, सोहिल सागर भई लड़ाई ।
ऊघट घटै न ताल सुर, भाव देखावनिहारि ।
तीनैां विद्या महँ निपुन, जोग वीर सिंगार ॥ ४७७ ॥

रूपनगर चलि आवा गुनी, चित्रसेनि की कीरति सुनी ।
राजा महा सुबुध गुन ज्ञानी, पंडित गुनगाहक अरु दानी ॥
गुनि गन ज्ञान सुनत सुख पावा, वेगहिँ राजदुआरहिँ आवा ।
बीन बजाय सुनाइसि रागा, जन कत नैन टकटकी लागा ॥
मानहुँ मृगा बैन सुनि भूले, लागे बान जहाँ तहँ झूले ।
काहू जाइ नरेस जनावा, गुनी एक कतहूँ तेँ आवा ॥
बीन बजाइ चित्त हरि लेई, गावत पुनि दहुँ काह करेई ।
राजहिँ सुनि उतसाह भा, बोला गुनी रसाल ।
गुनी जनन कहँ निद्धि नैा, मूरख के उर साल ॥ ४७८ ॥

राजा निकट गुनी चलि आवा, बीनहिँ माँह असीस बजावा ।
बढ़ै प्रताप अखंडित राजू, जुग जुग रहौ पुहमि एहि साजू ॥
मनहुँ बीन रसना तेँ कहा, आनन गुनी देखि सब रहा ।
राजै कहा कहा तुम्ह जाना, आपन गुन सब करहु बखाना ॥
कहिसि प्रथम हम राग सुनावहिँ, कथा कहहिँ भैसी देखरावहिँ ।
आदि अंत लहुँ नैा औतारा, और अनेक बीर सिंगारा ॥
सोहिल जूझि कथा पुनि भई, अमिरित बात सुरस रस नई(क) ।
सुनबे को अमिरित कथा, उठी सभा हिय चाउ ।
अज्ञा भई नरेस की, नैातम कथा सुनाउ ॥ ४७९ ॥

सोहिल कथा कथक परगासी, गाए कंठ छन्द चैारासी ।
पहिलहिँ गाएसि कैाँल सिंगारा, सुनि कै भवँर भयो संसारा ॥

१—नवीन । (क) कुरस रस भई । पाठा० ।

पुनि सोहिल कर बिरह सुनावा, कटक जोरि सागर गढ़ आवा।
औ जस तेज बसीठन्ह कीन्हा, सागर सुनि उत्तर जस दीन्हा॥
सागर पुनि गढ़ बाजेउ आई, जस दूनहुँ दल भई लड़ाई।
चारि मास गढ़ घेरे रहा, सागर जौहर साजै चाहा॥
जोगी एक बन्द महँ अहा, अस न जान दहुँ कारन कहा।

पैज बाँधि गहि खरग जिमि, कीन्हेसि सोहिल हानि।
दीन्हेसि कौंल बियाहि जस, एक एक कि हिस बखानि॥४८०॥

गाइ कथक जब कथा सुनाई, रही सभा ठगलाडु[1] खाई।
अरथ भाव सब काहू बूझा, जेहि जस भाउ ताहि तस सूझा॥
काहू हिए भाउ सिंगारा, काहू बीर चाउ हथियारा।
काहू जोग सुनत रस हीए, उपजी जोति ज्ञान के दीये॥
चित्रसेन चित चेत जनावा, दीनेहुँ दान गुनी बहुरावा।
कहिसि कि जौ घर धिय औतरी, तौ एह कथा जगत परचरी॥
अकसमात विधि भयो मयारा, तौ मारा सोहिल बरिआरा।

नाहिँ त को सनमुख लरत, चितवत नेकु नरेस।
सिंधु सूखि रज होति छिति, सकुचि जात पुनि सेस॥ ४८१॥

का सवँरहु बैरी जग माहीँ, दुहिता सम बैरी जग नाहीँ।
गरबि सीस जो नवत न नावा, जनमत आइ सीस भुइँ लावा॥
जाही दीन जनमी घर बारी, माथे आनि चढ़ाई गारी।
लाज नैन तजि मारग गहई, ना लजाइ चढ़ि छाती रहई॥
जौ सुबंस(क) राखै कुल कानी[1], तबहीँ रहै पिता मुख पानी।
नातरु कुकरम कै अपकारी, मातु पिता मुख लावै कारी॥
सिद्ध बचन सुनि भयो सँतोखा, अपुत न उपजै धरमी कोखा।

१—वह लड्डू जिसके खाने से खानेवाला खिलानेवाले के वश में हो जाता है। इसे खिला कर ठग यात्रियों को ठगा करते हैं।

(क) सुबंशि। पाठा०। १—मर्य्यादा।

तजहु पुरुष परतिय रवन, सुपुरुष बाचासार।
तुम घर रच्छा सो करै, जो जग राखनिहार॥ ४८२॥

राजैं मन महँ कहा बिचारी, हमहूँ घर सँजोग पुनि बारी।
पुहुमी दुंद न एकै बाजा, एक ते एक कीन्ह बड़ राजा॥
मकु कोइ सुनि हठि माँगै आई, तब न मरन बिनु आन उपाई।
अबहीं खोजौं कोऊ कुलीना, जेहि तें आगिल[1] परै नहि हीना॥
यह मन गुनि उठि मँदिर सिधारा, झलमल दुति माथा मनिआरा।
चित न ठाउँ मन धूमिल जानी, पूँछि नीअर होइ हीरा रानी॥
तुम पुहुमीपति चहुँदिसि नाऊँ, कारन कौन जो चित्त न ठाऊँ।
राजैं सरब कथा कही, सोहिल सागर जूझि[2]।
औ पुनि उपजी चेत कछु, हिए परा जनु बूझि[3]॥ ४८३॥

रानी कहा सुनहु नरनाहाँ, मोहिं पुनि खरक[4] उठी जिय माहाँ।
चित्रावलि संयोग सयानी, कीजै सोई रहै कुल पानी॥
खोजिअ कतहूँ एहि लगि जोरा, जेहि दीपक कुल होइ अँजोरा।
यहि पुहमी बहु राजा राना, बिप्र पठाइय जहँ मन माना॥
कोउ कुलीन क्षत्री सहसी[5] का, सुंदर देखि चढ़ा बहु टीका[6]।
यहि जग जियन भरोसा नाहीं, आन क तान होइ पल माहीं॥
भागवंत जग सोई कहाई, संतति तीर घाट जिन लाई।
संतति बिलँब न कीजिए, जियन भरोसा काहि।
थोरा बहुता लाइ कै, दुहिता देहु बिआहि॥ ४८४॥

राय कहा यह सोइ बिसाहा, फिरै न फेरे घट औ लाहा।
जो पहिलेहिं न बिसाह बिचारी, तेहि हँसि लोग बजावैं तारी॥
दिन दस और न चरचा करहू, यह बिचार अपने चित धरहू।
राज लागि मोहिं आगम सूझा, निअरे आपन बैरी बूझा॥

१—भविष्य। २—युद्ध = संग्राम। ३—बुद्धि। ४—चिन्ता।
५—साहसी। ६—तिलक।

दुर जानि एह पुहुमी केरे, पठयों चारहुँ ओर चितेरे।
राजा राजकुँअर जहँ पावहिँ, चित्र उरेहि आनि देखरावहिँ॥
ते दिन दस महँ आवनिहारा, चित्र देखि तब करब बिचारा।

पूँछब सब एक एक कै, जाति पाँति बेवहार।
सामुन्द्रिक मत हेरि कै, लच्छन करब बिचार॥ ४८५॥

महा गरंथ सोइ जग माहीँ, सामुन्द्रिक सब जानहिँ नाहीँ।
जेरे पढ़ा ते लक्खन[1] जाना, चित्र देखि सब कीन्ह बखाना॥
जाति पाँति गुन औगुन बूझा, जैसे मुकुर माहँ मुख सूझा।
पुहमीपति दुइ रतन बटोरा, सामुन्द्रिक औ रँगधर[2] जोरा॥
यह दुहुँ मता जो मुकुर समाना, गुन औगुन पुहुमी कर जाना।
पहिलहिँ चित्र हाथ जो कीन्हाँ, नौसाईँ इस कंदर चीन्हाँ॥
बाउर लोग चतुर सेँ करहीँ, सिरजनिहार नाउँ तेहि धरहीँ।

जौ लहु गुरु जग बिधि करैं, सब कर कीन्ह बखान।
मानुष औंधी खोपरी, बूझै आन की आन॥ ४८६॥

कै बिचार हीरा उठि आई, चित्रावलि के मँदिल सिधाई।
देखि साज चित्रावलि केरा, रानी उलटि सखिन्ह मुख हेरा॥
तुम सब मिलि एह काह सिखाई, केहि कारन अस मैलि रहाई।
आजु मोहिँ ढँग नीक न लागा, एहि कर चित देखौं बैरागा[3]॥
सखिन्ह देखि रानी कहँ रूखी, जो जैसहिँ तैसहिँ सो सूखी।
चित्रावलि तब कहा बुझाई, हम चित चढ़ी आजु लरिकाई॥
गयो हसन खेलन सुख भोगा, ताहि सँवरि जिअ मानौं सोगा।

कहाँ सरोवर कहँ कुसुम, कहँ चितसारी रंग।
सँवरि मरोहा[4] हिय उठै, होइ सकल सुख भंग॥ ४८७॥

१—लक्षण। २—चितेरा। ३—विराग युक्त। विरक्त। ४—मसोस।

(३५) परेवा-बंधन खंड।

चेरी एक अहिन जो आही, ते छिपाइ हीरा सों कही।
एक दिन देखत अहेउँ छिपानो, चित्रावलि निकसी कुम्हिलानी॥
रोइ परेवा सों कछु कहा, पाती दीन्ह पावँ पुनि गहा।
गयो परेवा लै कहुँ चीठी, तेहि दिन सों पुनि परा न डीठी।
पेम बाउ[1] जो बाउर[2] करही, सेवक पाय[3] तबहि पति धरही।
देखा अहा कहा मैं सोई, अब तुम करहु जो करबें होई॥
सुनि कै हीरा हिएँ सँकानी, धसकि गयो हिय अजुगुति[4] जानी।

केहि अधरम केहि पाप बिधि, हंस कीन्हि भा काग।
अपने जान न बिसतुरेउँ[5] नित्र परेउ कहँ दाग॥ ४८८॥

पुनि मन कछु गियान उपराजा, जाँघ उघारें मरिये लाजा।
अधिक उदगरी[6] काठी अगी, राखौं आगि मेलि सिर धूरी॥
बाट बाट सब लाई भूता, रोकहिं राह परेवा दूना।
आवइ कहुँ पूछे बिनु नाहीं, आनि बाँधि राखहु बँद माहीं॥
जो जहं तहां रोकि मगु रहा, आवत पंथ परेवा गहा।
बाँधि आनिकै बँद महँ राखा, अचक रहा कछु आव न भाखा॥
मन महँ कहिसि रहा पछतावा, कुअँर क आवन कहन न पावा।

वह पुनि रहिहै रैनि दिन, मारग लाएँ आँखि।
वह परदेसी बापुरा, मरिहि अकेला भाँखि[7]॥ ४८९॥

रहा सुजान नैन मगु लाई, का दहुँ कहै परेवा आई।
सो पुनि अछा काह करेई, कौन भाँति दरसन पुनि देई॥
सगर दिवस यहि सोच गँवावा, साँझ परी न परेवा आवा।
ज्यों ज्यों छिन छिन रैनि बिहाई, त्यों त्यों बिरह आगि अधिकाई॥

१—वायु। २—उन्मत्त। ३—पैर। ४—अयुक्ति।
५—अलग किया। ६—प्रज्वलित। ७—रोकर।

लोयन दोऊ रहे मगु लागे , आहट कहँ सरवन पुनि जागे ।
सकल रैनि पुनि ऐसेहिँ बीती , जानु कँवल जिय भानु कि पीती[1] ॥
दिनकर उठत उठै हिय आगी , बिरह बयारि सरग गै लागी ।

कहिसि कि प्रीतम हिया सर , सूखि गयो जल नेह ।

फाट न हिया तड़ाक जेउँ , हंस चलेउ तजि देह ॥ ४९० ॥

जैा वै मो सैाँ निज मुख फेरा , तैा काया परान केहि केरा ।
जीउ लेइ जो जम बरिआरा , छुटै प्रान यह दुःख अपारा ॥
जैा अब मरैाँ होइ अपघाती , जगत नसाइ जनम भैा जाती ।
मैँ बिरही मोहिँ नाँच नचावा , अंत सो यह कैातुक देखरावा ॥
अब नाचैाँ किन परगट होई , मोहि के पंथ लै मारै कोई ।
निसरा कुँअर डारि सिर छारा , चित्रावलि चितरवलि पुकारा ॥
कोऊ आहि अस पर-उपकारी , आनि देखावै राजकुँआरी ।

खनक देखाउ सरूप मुख , लिहिसि चोर जिय मोर ।

यह राजा हत्यार बड़ , घर महँ राखै चोर ॥ ४९१ ॥

सुनि कै लोग अचंभैा रहा , जोई सुना सोई मुख गहा ।
बिरह उसास अगिन कर ज्वाला , लागत परै हाथ महँ छाला(क) ॥
दूरहिँ हटकि रहे सब कोई , कोउ मुख मूँदै नियरे होई ।
होइ गा सगरे नगर चवावा , रूपनगर एक बाउर आवा ॥
कहै सोई जो कहा न जाई , मरै लागि यह बुद्धि उपाई ।
राजसभा सब काहू सुना , सुननहि चित्रसेन सिर धुना ॥
बदन सुखान अंग दुति छाड़ी , लाजन सीस पुहुमि गा गाड़ी ।

कहिसि कि जाकहँ जिय डरत , सँवरि सुहात न राज ।

सोई आनि हम सिर परी , अचक कहूँ हुत गाज ॥ ४९२ ॥

१—प्रीति ।   (क) अरु लाला—पाठा० ।

(३६) दलगंजन खंड ।

पुनि सँभारि कै बैसेउ राजा, कहिसि कि भल नाहीँ यह काजा।
किन भिखारि घर कीन्ह अगासा, जिन अस बचन असुभ परगासा॥
काढ़ि जीभि जिय मारहु सोई, जो अस सुनै कहै नहिँ कोई।
राजनीति एक मंत्री अहा, तिन उठि सीस नाइ के कहा॥
यहि संसार बेद अनुमाना, बाउर बचन न कोऊ माना।
जाकर बचन नाहिँ परतीता, ताके मारे होइ अनीता॥
लाज लाग जो मारै कोई, अस मारेँ भल कहै न कोई।

गहि जो भीखारी मारई, दुइ घट यहि जग होइ।
एक हत्या काँधे चढ़ै, पुनि भल कहै न कोइ॥ ४९३ ॥

यह चरचा पुनि मंदिर भई रानी सुनत सूखि जिय गई।
कहिसि कि मुई न पेसन बारी, जे अपने कुल लाइसि गारी॥
अपने जानि बिसारेउँ नाहीँ, पान न पाउ छुवै परछाहीँ।
एहि क रूप कहँ काहु न देखा, मिटा न सीस करम की रेखा॥
मकु यह भेद परेवा जाना, पूछहुँ बोलि कहै अनुमाना।
बहुरि कहिसि यह पावक जरई, ज्यों ज्यों खुदी त्यों उदगरई॥
बाहर नगर परा जन-कूका, कहुँ घर लागि जाइ जनि लूका।

तब कछु हाथ न आवई, होइ आन की आन।
ततेँ बरजे सकल जन, परै न चित्रिनि कान॥ ४९४॥

राजै मते महाउत लावा, पान दीन्ह औ कहि समुझावा।
जहाँ कहूँ वह बाउर होई, अस जस दूसर जान न कोई॥
अपसर गज दलगंजन नाऊ, छलि मकुलाइ[१] देहि तेहि ठाऊँ।
मकु गज धाइ हनै सो जोगी, बिनु औषद जिय होइ निरोगी॥
लै सो पान महाउत आवा, मूरी दइ गज अतिहि मतावा।

१—खोल के।

खोलि गयंद ओहि दिसु चला, कोऊ न जान गुपुत की कला ॥
जहँ बाउर सिर डारत छारा, उतरि महाउत भयो निनारा।

छूटि चला मैमंत गज, चहुँ दिसि परी पुकार।
जग लै भाजो जीउ सब, छूटा जम बरिआर ॥ ४९५ ॥

भा अँदोर मैगल[1] मकुलाना, सुनि चारिहुँ दिस परा बखाना।
देखि देखि लोग हीय सब कूटा, भा अजुगुत दलगंजन छूटा ॥
एहि सों जिअत बँचा जो आजू, ताकर नवा जनम कर साजू।
आपु आपु कहँ परजा राजा, जहँइ सुना सो जिउ लै भाजा ॥
पूतहिँ बाप सँभारै नाहीँ, कुटुँब लोग केहि लेखेँ माहीँ।
जेहि सँग अहा कटक हय हाथी, अकसर जाइ न कोऊ साथी ॥
जाकर अंग न छुअन समीरा, गहै आनि अनचीन्ह सरीरा ॥

जेहि तन लागै रैनि दिन, चोआ चन्दनसार।
तिन्ह तन बन महँ संग बिनु, निभरम लागै छार ॥ ४९६ ॥

चले छाड़ि बनियाँ बेपारी, रही जहाँ तहँ हाट पसारी।
छाड़ि चले जत मंदिर लोना, जहवाँ लाग रूप औ सोना ॥
छाड़ि तिया जासोँ रँग कीन्हा, चले जाहिँ जानहुँ अनचीन्हा।
छाड़हिँ अन धन घोर घोरसारा, छाड़हिँ दरब झूठ संसारा ॥
छाड़हिँ अगर कुमुकुमा चोवा, छाड़हिँ रतन जो माल परोवा।
छाड़हिँ कस्तूरी घनसारा, अंत आइ तन लागी छारा ॥
सगरे जनम सैांति[2] दुख पावा, छिन एक महँ सब भयउ परवा।

यहि बिचार कै मान कवि, महा पुरुष जग माहिँ।
तासोँ जीउ न लवहीँ, अंत जो साथी नाहीँ ॥ ४९७ ॥

कुँअर देखि हस्ती मतवारा, मरन जानि जिय कीन्ह बिचारा।
जा कह अंत मरन जिय माहीँ, मीचु देखि सो भागै नाहीँ ॥

१—पागल = मदमत्त। २—एकट्ठा करके।

मोहिँ एहि मारग निजु जो मरना, भागि रहौं लै का की सरना।
बिनु साहस जो तजउँ सरीरा, कोउ न कहै यह छत्री बीरा॥
बाजौं आजु भीम की नाईं, मारौं जो जय देइ गोसाईं।
मरौं तौ लोग कहै यहि देसा, छत्री अहा जोगि के भेसा॥
पुनि चित्रावलि सुनु यह बाता, जूझि मुवा जोगी रँगराता।
बाँधि काछ दृढ़ होइ रहा, मन महँ मरन बिचारि।
जेहि जिय डाँड़ा पेम कर, सब जग जीनति हार॥ ४९८॥

आवत हस्ति चुवत मदगंधा, तौरत तरुवर धावत कंधा।
गज बाजी कहँ परलै[1] रोपा, अंगद पाँव पुहुमि जस रोपा॥
कुँअरहिँ देखि धाइ अस परा, बीर पँवार न पाछे टरा।
कंधा डारि गयंद झुकावा, आपु सजग होइ पाछूँ आवा।
गहि कै पूँछि गयंद घुमाइसि, येहि भाँति धरी एक लाइसि॥
जनु चकई गहि डोर फिराई, पुहुमि परा गज ताँवरि खाई(क)।
मस्तक आइ मूँक नव मारा, सीस फोरि गजमोति निकारा॥
पुहुमी परा गयंद ढहि, जानहुँ परा पहार।
देखि अचंभित[2] जग भवो, चहुँदिस परी पुकार॥ ४९९॥

कहै लोग यह को बरिआरा, जिन गयंद दलगंजन मारा।
वह राजा कर हस्ती सोई, जेहि तै बली आन नहिँ होई॥
यह जोगी भल कीन्ह न काजा, परलै करहि आजु सुनि राजा।
राज दुआरे भई पुकारा, जोगि बली दलगंजन मारा॥
एहि जोगी कहँ सिव परसना, नाहिँ तौ अस परबल को हना।
मानुष अस बल करै न पारा, निज यह पुहुमि भीम औतारा॥
औरौ हस्ति सँभारहु नाहीं, मति कहँ भटकी सिर कहँ जाहीँ।
सुनि कै राजा थकि रहा, रुहिर सुखि गा गात।
हिएँ थरथरी पेट डर, मुख नहिँ आवै बात॥ ५००॥

१—प्रलय। (क) आई, पाठा०। प.वरी = पैर। २—विस्मित।

(३७) सुजान-बंधन खंड ।

पुनि सँभारि के बोला राजा, साजहु बेगि जूझि कर साजा ।
हनुमत जस लंका हुत आवा, तस छलि कै यहि काहु पठावा ॥
काहु केर पठावन होई, जिअत न जाइ करहु अब सोई ।
बाजन बार जूझि कर बाजा, जानहुँ सरग मेघ दल गाजा ॥
साजे हस्ती सिंघलदीपी, चीता[1] माथ छीट जनु छीपी ।
साजे तुरै समुँद[2] जलगाहा[3], पखरै राउत पहिरि सिनाहा ॥
राजा सपरि भयो असवारा, चले बीर चढ़ि तुरी तुखारा[4] ।

बाजे बाजन जूझि के, धुका[5] दमामा भेरि ।
छेँका जोगी कटक लै, मंडल चहुँ दिस फेरि ॥ ५०१ ॥

जुझि साज जौ कुअँरहि सूझा, कै बिचार अपने मन बूझा ।
जाकर दोस करै जो कोई, का बसाइ जो मारै सोई ॥
मोहिँ नहिँ इहाँ जुझि सोँ काजा, मारैं लै पुहमीपति राजा ।
एह गुन बैस्यो आसन मारी, जैसे निरगुन जोगि भिखारी ॥
सीस नाइ पुहमी तिन हेरा, कटक आउ सब करत करेरा ।
मंत्री राज-बाग तब गही, सीस नाइ कै बिनती कही ॥
जूझि कर जग अस बेवहारा, मारिय सोइ जो गहै हथिआरा ।

जोगी बाँधिय जिअत गहि, मारि न करी अनीत ।
पूँछि भेद पुनि लीजिए, को बैरी को मीत ॥ ५०२ ॥

घेरत घेरत आए राँधा[6], पाँच जने मिलि जोगी बाँधा ।
अस कै ढोल दीन्ह दुइ बाहीँ, जानहुँ एक रती बल नाहीँ ॥
राजा सनमुख जोगी आना, देखि रूप सब कटक भुलाना ।
पूछै को हसि कहँ तेँ आवा, केहि कारन केहि केर पठावा ॥

१—रंगा, छापा । २—घोड़ा । ३—दरियाई । ४—स्वेत = उज्ज्वल घोड़ा ।
५—बजा । ६—समीप ।

कुँअर न बोल मौन मुख गहा, सीस नवाइ आँधि चखु रहा।
एहि अंतर एक चतुर चितेरा, सागर नगर कीन्ह जे फेरा॥
कुँअर चित्र लिखि अति मतिमाना, सोहिल जूझि भेद पुनि जाना।

आइ पहुँचा राज ढिग, देखि नवाइसि माथ।
लीन्हे चित्र अनेक जे, देस देस के नाथ॥ ५०३॥

वै कुँअरहिँ देखा पहिचाना, कहिसि कि यह जस कुँअर सुजाना।
वह उहवाँ पुहमीपति भारी, राज छाड़ि कन होत भिखारी॥
पुनि वह अस कुकरम कत करई, जेहि कोइ बाँधि चोर कै धरई।
चित्र काढ़ि जो पटतर[1] देखा, सोई कुँअर सुजान सरेखा॥
कहिसि कि यह पुहुमीपति राजा, पुहुमी रहो सदा ओहि साजा।
यह पवाँर छत्री बरिआरा, यही हाँकि रन सोहिल मारा॥
यह पुहुमी पति देस क राजा, अचरज मोहिँ देखि यह साजा।

कुँअर चित्र लै कर दिहिसि, कहिसि कि अचरज हीय।
बाँधा सिंह सिआर ज्यों, का कौतुक बिधि कीय॥ ५०४॥

इहाँ नरेस जूझि कहँ आवा, रानी उहाँ अँदोर बढ़ावा।
जे मारा दलगंजन सोई, तेहि के जूझि आजु कस होई॥
हिए सोच करि हीरा रानी, पूँछौं बोलि परेवा ज्ञानी।
वह पंडित औ चतुर परेवा, आमग[2] न चलै जानि पति सेवा॥
जिन मारा दलगंजन हाथी, मकु वह होइ परेवा साथी।
खोलि मँगावा सीध परेवा, आइ देखाइसि कन्तहिँ सेवा।
होइ अकसर लै मंत बईठी, कहिसि कहाँ लै गवनेहु चीठी॥

बिनु पूछे किछु ना कहै, तैँ पंडित सहदेव।
को जन यह हस्ती हना, कछु जानसि यह भेव॥ ५०५॥

कहिसि कि सदा-सोहागिनि रानी, तुम सयान पंडित औ ज्ञानी।
मैं यह सुफल सुआ सो खोजा, चीन्हहु होइ सो राजा भोजा॥

१—सामने। २—कुराह, कुमार्ग।

आकहँ भोर सदा सिर नाई, चहै मारि तौ कहा बसाई।
कथा कहत लागिहि बड़ि बारा, उहाँ न होइ जाइ संघारा॥
थोर कहौं जौ बिलँब न होई, सोहिल जिन मारा वह सोई।
धरनीधर नैपाल भुआरा, यह सुबंस औ बीर पवाँरा॥
चित्र माहँ चित्रावलि जानी, भा जोगी सुनि रूप-कहानी।

एहि सो रतन जेहि कीजिये, कुन्दन घालि जराउ।
जनि गहि डारहु समुँद महँ, नतु रहिहै पछताउ॥ ५०६॥

रानी कहा वेगि चलि जाहू, लगै न पाउ मयंकहि राहू।
जाइ जनाउ नरेस रिसाना, जौ लहुँ छुटै पाव नहिँ बाना॥
दसरथ धोखे सरवन मारा, पाइ सराप भयो हत्यारा।
आज्ञा मिली परेवा धावा, निमिख माँह राजा पहँ आवा॥
देखिसि राजहिँ रिसि मन नाहीँ, हाथ चित्र चित चिन्ता माहीँ।
औ पुनि कुँअर बाँधि कै आना, कीन्ही जल चखु जानि सुजाना॥
आइ नवाइस पनि कहँ माथा, कहिसि हे पुहमीपति नाथा।

यह सोइ जिन बैरी हना, सोहिल अस बारि आर।
जंबूदीप नरेस सोइ, निरमल जाति पँवार॥५०७॥

यह जस बिक्रम राजा भोजा, मैँ चित्रावलि कहँ बर खोजा।
चित्रावलि कर रूप सुनाई, कै जोगी आनेउँ बौराई॥
मैँ राजा सों कहै न पावा, बीचहिँ बैरी मोहिँ बँधावा।
तौ यह कौतुक सब बिधि कीन्हा, रतन खेह महँ काहु न चीन्हा॥
राजा हिय सुनि कुँअर बखाना, तजि चिंता चित रहस समाना॥
जो जहँ चित्र मूँदि वै राखी, तब भा आनि परेवा साखी।
यह पंडित औ बिधि सो डरई, पंडित काज बूझि कै करई॥

छोरे बन्धन दुःख के, महाबीर पहिचानि।
राजा उतरि तुखार सों, अंक मिलायो आनि॥ ५०८॥

ततखन तहां कुँअर अन्हवावा, राज साज सब आनि पन्हावा।
औ पुनि लीन्ह चढ़ाइ अँबारी, दूलह जानि बरात सँवारी॥
रहसत चला तुरै चढ़ि राजा, बाजत अनँद बधावा बाजा।
एकै बाजन जेहि जग जाना, आवत आन जात भा आना॥
गहगह बाजन बाजत आवा, नगर लोग सब देखै धावा।
जिन देखा तिन धनि धनि कहा, रूप निहारि चित्र होइ रहा॥
धनि सो चित्र धनि सोई चितेरा, कहहिँ जोर चित्रावलि केरा।

निकसा हाट मँझार होइ, चहुँदिसि रहस अनन्द।
देखै आईं उतरि जनु, सूर नराईं चन्द॥ ५०९॥

चढ़ि अँटारि देखहिँ रनिवासा, जनु ससि नखत सरग परगासा।
देखि कुँअर मुख हेरा रानी, हिए अनन्द अधर बिहसानी॥
कहिसि कि जानु आहि यह सोई, जेहिक चित्र चितसारि धोई।
पुनि तिन्ह साथिन्ह आनि देखावा, जे अपने कर चित्र नसावा॥
जिन देखा तिन मुख अनुसारा, यह सोई गंध्रब औतारा।
जब तैं हम वह चित्र नसाई, नैन हिए जानहुँ लिखि लाई॥
धनि यह दिन धनि घरी सरेखा, हिया इंछ इन्ह नैनन्ह देखा।

मान न मन्त निसारहिँ, सिँह पुरुष मुख बैन।
जो मूरति हिअरे बसी, सो निजु देखी नैन॥ ५१०॥

रानिहिँ यह सुनि भयो अनन्दा, सीस पुहमि धरि बिधना बन्दा।
जिन्ह काहू यह भेद न जाना, सो बिधि कौतुक देखि भुलाना॥
कहै कि यह कस बैरी होई, आदर चाह करैं सब कोई।
सखी एक चित्रावलि केरी, चढ़ि मंदिर पुनि देखिसि हेरी॥
कौतुक लखि चित कीन्ह हुलासा, गई धाइ चित्रावलि पासा।
कहिसि कि ए कुल मनि मनिआरी, तोरी जोति पुहुमि उजिआरी॥
फिरेउ जीति संग्राम भुआरा, गहि आना बैरी बरिआरा।

देखौं सोइ हस्ती चढ़ा, नहिँ जानौं केहि काज।
पुहुमी आवै इंद्र जनु, तजि इंद्रासन राज ॥ ५११ ॥

मेहरिन्ह महँ पुनि चरचा होई, चित्र जो भेटा जनु यह सोई।
सुनतहि चित्र चाउ चित बाढ़ी, होइ व्याकुल धौराहर ठाढ़ी ॥
देखत मुख सुधि बुधि सब हरी, होय अचेत पुहुमी खसि परी।
सखी सो हाथन हाथ उतारी, सेज सुवाइ ओढ़ाइन्ह सारी ॥
डरहिँ कहैँ बिधि का भा आई, भीर माँह काहू डिठि लाई।
सुनै पाउ जनि राजा रानी, हम जिय करहिँ घरी महँ हानी ॥
ततखन मँदिर परेवा आवा, सखियन्ह कहँ सब भेद सुनावा।

कहिसि कि ऐ पति कलप जुग, हम माथे तुम छाँह।
अब किमि जरिए धूप दुख, छत्र आउ घर माँह ॥ ५१२ ॥

सुनत बैन चित्रावलि जागी, देखि परेवा के पौं लागी।
कहिसि कि ऐ हीरामन[१] सुआ, रतन लागि कस कौतुक हुआ ॥
कैसे जाइ भोरापहु[२] साईँ, कैसे आनेहु इहवाँ ताईँ।
का कहि चित्रसेन समुझावा, काहि लागि मंदिर लै आवा ॥
बैसि परेवा प्रेम-कहानी, आदि अंत लौं कहिसि बखानी।
चित्रावलि चित भयो सँतोषा, गा सो सोच अहा जो धोखा ॥
बर बिआह सुनि मनहिँ लजानी, घूँघुट ओट दिये मुसुकानी।

कहिसि परेवा सुमति तैँ, पूरन सेवा कीय।
जो चित भावै सोइ करु, मैँ तुअ आज्ञा दीय ॥ ५१३ ॥

१—देखो पद्मावति-हीरामन सुआ राजा रत्नसेन को पद्मावती के लिए चितौर से सिंहलद्वीप ले गया और वहां उसे पद्मावती से मिलाया। २—भुलवाया वशीभूत किया।

(३८) चित्रावली-विवाह खण्ड ।

मँदिर आनि ले कुँअर उतारा . लै कलधौत पाट बैसारा ।
बैठेउ कुँअर सिंह-आसना , कह नर अहै पाकसासना[1] ॥
वह मघवा[2] परतच्छ देखावा , तजि सुरभौन छरै कहँ आवा ।
जो देखै सो रहै लुभाई , अति लालच घर जाइ न जाई ॥
चित्रसेन औ हीरा रानी . तीसर बोलि परेवा आनी ।
राज नीति मंत्री हँकरावा , आदि अंत लहुँ भेद सुनावा ॥
एकमत होइ कै कीन्ह बिचारा , बिलँब न करिय धरम बेवहारा ॥

तनखन आये जोतषी , रास बरग गनि लेखि ।
बदि बैसाखी पंचमी . मीन लगन सुभ देखि ॥ ५१४ ॥

मीन लगन ससि बार सरेखा . नवएँ दिष्टि बृहस्पति देखा ।
महागनक पंडित गन भले . थापि बिआह लगन लै चले ॥
आखत दूब भरा चकमका , रूप क थार सोन कर ढका ।
महता राय सो बिनती कीन्हा . मोरि सम्पति तुम्हरी दीन्हा ॥
पै बिधि दीन्ह न संतति बाँटा , जेहि निसरै मोरे हिअ काँटा ।
आज्ञा देहु तो हिया सुधारौं , कुँअरहि लै बरिआत सँवारौं ॥
सुनि के हरषे राजा रानी . धरम बात हमहूँ मन-मानी ।

जब ते दुहिता ऊपनी , सतत हिये उतपात ।
निकसै काँटा तबहिँ , जब , आँगन आउ बरात ॥ ५१५ ॥

राजनीति रहसत घर आवा , कुटुम लोग कहँ भेद सुनावा ।
सुनि कै रहसे सब नर नारी , अनँद बधावा बाजहिँ बारी ॥
नेगिन्ह दीन्ह भँडार कि कूँजी , धोख न लाउ लगावत पूँजी ।
आपन जानि दरब मैं जोरा , अब जो निसरै सोई मोरा ॥
अबहीँ लेहु बेसाहु सो जाई , जेहि बिनु तेहि दिन मुँह न गोआई ।

१—पाकाशासन = इन्द्र । २—इन्द्र ।

नियरेहि आहि सो दिन हम आगे, काज सवाँरहु सब जिउ त्यागे ॥
पुहुमीपति घर जाइ बखानी, सोई करब रहै मुख पानी।
सजि काज पुनि नेवत ले, चहुँ दिस पठए बारि।
ततखन पहुँचे आइ सब, लोग कुटुँब सब भारि ॥ ५१६ ॥
सोधि सुघरी महूरति पला, साजि बराति महत लै चला।
चढ़ि चंडोल कुँअर अभिलाखा, माथँ मुकुट जराउ क राखा ॥
चमकहिँ चुन्नी कुंदन रली, झूलहिँ झालर मुकुताहली।
पुनि नैनन महँ काजर कीन्हा, दिग्रिनेवार चौखंडा[1] दीन्हा ॥
हार हमेल फूल पहिराए, औ मुख पान कपूर खवाए।
ढारहिँ चौँर चार जन लोने, कनक खंभ मानहुँ चहुँ कोने ॥
चढा तुरंग चपल एक सरा, चोवा चन्दन कुमुकुम भरा।
ढका[2] दमामा कान्हरा, सहनाई औ भेर।
पुहुमी रहेउ अकून होइ, सात कोस के फेर ॥ ५१७ ॥
यह कौतुक के रूप पराजे, कागद पान लाह फर साजे।
सुभग डारि फर फूल बनाई, ठावँ ठावँ पंछी बैसाई ॥
देखत तन बेसक कछु नाहीं, जनु सजीव पंछी भरकाहीँ।
अरुन बसन मधि नाव बनायें, सुंदर बीरन थान चढ़ायेँ ॥
बाट जात पुनि कहेँ बटाऊ, सूखेँ चली दान की नाऊ।
सरस कंठ सब गावत चलीँ, चन्दन बदन संग घर अलीँ ॥
कथक कलावन गावत चले, भाँट पढ़हिँ गरजहिँ घन कले।
फूले साँझ सुभग समो, गगन बरन पुनि रात।
चित्रसेन के बार लहि, पहुँची आनि बरात ॥ ५१८ ॥
कनक कलस जल भरि दुइ जनीँ, आईँ जानु अपछरा बनीँ।
नैन मीन मुख दधि सब सारा, कुँअरहि सबहिँ सगुन बैसारा ॥

१—काली बिंदु जो बच्चों के शिर में इस लिए स्त्रियां लगाती हैं कि उन्हें नजर न लगै। डीठा। अग्वा। २—सं० ढक्का = डंका।

पुनि आदर कहँ आये लोगा, आछु कुटुम्ब जो आदर जोगा।
गारी दै दै गावहिँ चेरी, जाहिँ लजाइ कुँअर मुख हेरी॥
राजनीति पुनि अपनी बारी, समधी नाइँ पावै गारी।
ससुर की रीति अहै सो लेहीँ, सहस लरैँ न्योछावरि देहीँ॥
पुनि जस नेग अहा जेहि केरा, राजनीति दै दै सब फेरा।

पुन अगुवानहिँ ले चल्यो, जहँ साजा जनवाँस।
नियरहिँ अगुआ बाहिरैँ, जानहुँ कोस पचास॥ ५१९॥

जनवाँसे कहँ चली बराना, बाजन बाजे उठेउ अघाना।
सहस चारि एक दीपक बारे, निभरम चले पंथ उजिआरे॥
हिया अंध कहँ जग अँधियारा, सो ससि सूर न करै उजारा।
जोई रँग दै तेल मँगावा, सोई बरन जोति देखरावा॥
जौलहुँ तेल खरी[1] सँग होई, तौलहुँ देइ लेउ रँग कोई।
तेल खरी जौ भई निनारी[2], रंग न चढ़ै न बास बसारी॥
बरबस कोऊ जा रंग चढ़ावै, बास करै तन काम न आवै।

मान तेल मन तन तिली, जौ लहुँ नहिँ बिगराइ।
तौलहुँ गुरुमुख फूल ले, लेहु सो बास बसाइ॥ ५२०॥

अगिनचक्र[3] बहु कीन्ह फेरा, पूरन ससि जनु बिरहिन केरा।
अतिहि रहस तहँ चली हवाई[4], रतन पदारथ डारन जाई।
ठावँ ठावँ भुइँ चंपा[5] गाड़ा, नत मुख जनु बैसन्दर[6] छाड़ा॥
छाड़त सेत अरुन अति जूहा[7], नरम फूल बैसन्दर फूहा।
चन्द्रजोति[8] कीन्ही उजिआरा, उयो जानु दिनकर मनिआरा॥
फूली माहताब[9] बहु साखा, चारिहुँ दिसि वसंत कै राखा।
फूटहिँ लौकी उड़गन भरी, चारहुँ ओर छुटैं फुलझरी[10]॥

१—खली। २—अलग। ३—एकतमाशा = चरखी। ४—एक तमाशा। ५—एक तमाशा। ६—आग। ७—एक तमाशा। ८—एक तमाशा। दुपहरिआ। ९—एक तमाशा। महताबी। १०—एक तमाशा।

झरी अगिन भुइचक[1] हुते, नील बरन सुख मूल।
फूलि रहे जनु पुहुमि महँ, चहुँ दिसि तीसी फूल॥ ५२१॥

जनवासे बरात बैसारी, मंदिर माहँ रसोईं सारी।
चौका दै आँगन भरि बेदी, लीपा चन्दन कुमकुम मेदी॥
सोन रूप के थार बनाए, दोना पतरी बारी[2] लाए।
जूडें जल जेहि लाग पिआसा, मेलि कपूर कुमकुमा बासा॥
औ जत सोंध जगत महँ आए, सब पकवान साथ लगवाए (क)।
झारी गडुआ लोग सँभारी, लै जल पहिले पावँ पखारी।
बैसि गए सब पातिन्ह पाँती, साथ साथ सब अपने जाती॥

पहिले डारी पातरीं, तो पुनि राखे थार।
लगे परोसन सहस जन, भाँति भाँति परकार॥ ५२२॥

गोहूँ प्रथम दूध सों धोए, खीरि खाँड़ मिलि माँड़ा पोए।
चउर अति सुगन्ध महँकाए, कौलन माहँ भौंर अकुलाए॥
मूँग चना कै बहु परकारा, लेत न बनै नाउँ बिस्तारा।
डुहुका छीमी औ खँडबरा, अमिरितबरी फुलौरा बरा॥
दूध जमाइ दहेँड़ी आनी, भाजन छूट न तबउ नसानी।
लपसी कर का कहौं मिठाई, मुख न फेर जो मन भरि खाई॥
अमरस अंनबन भाँति अँचारा, कहत न बनै जेत परकारा।

लोन समोसा मीठ मधु, खार खाँड़ बहुताइ।
जो सवाद नहिँ जानई, पहिलेहिँ खाना खाइ॥ ५२३॥

बाँटि सगौती बहु फर साजे, पान फूल तेहि संग बिराजे।
खात सवाद सोई पहिचानी, मानहुँ चाखि डार हुत आनी॥
औ बिपरीत स्वाद बहुताई, आंब माहँ कटहर कि मिठाई।
नेबू खात दाख जनु खाहीं, खात खजूर बदाम चबाहीं॥

१—एक तमाशा। २—एक शूद्र जाति जो पत्तल बनाते हैं और खाने पर जूठी पत्तल उठाते हैं। (क) पुनि जेवन कह पाहुन आये। गगा तजि धोती पहिराये—पाठा०।

पुनि सवाद मिसरित बहु कीन्हें , खात सो जानहिं जाहिं नहिं चीन्हे ।
कोऊ एक मुख मेलि जो खाहीं , घरी एक दुइ समुझत जाहीं ॥
सुनि कै फिरि जेवनार उसारी , पतरी जूठ समैटै बारी ।

अरुन कौंल नीलोतपल , फूलि रहे सब बार ।
बन्दनवारन तें निकसि , भौंर करहिं गुंजार ॥ ५२४ ॥

भरि भरि थार मिठाई आनी · भाँति भाँति आव अन पानी ।
लडुआ कर का करौं बखाना , हाथ खाँड़ मुँह महँ खँड़वाना ॥
खाजा[1] कैसेहुँ खाइ न जाई , सांस पौन सों उड़ि उड़ि जाई ।
फेनि[2] पातरि मुँह न समाई , टाँक दो एक जोखँह लुआई ॥
सीँक समान जिलेबी काढ़ी , रस रस भीजि अधिक रस बाढ़ी ।
एहि मिठास जनि भूलहु लोई , घी मधु एक ठाँव बिष होई ॥
तो लहुँ मीठ जौ लाँघ न घाटी , घाटी उतरि होइ पुनि(क) माटी ।

मान न जातो आन बिनु , खीर खाँड़ तन पोख ।
नहिँ जानो परलोक तुअ , होइहै केहि बिधि मोख[3] ॥ ५२५ ॥

अँचै उठे खरिका कर लिन्हे , हाथ धोआइ पान पुनि दीन्हे ।
चित्रसेन बागा मँगवाये , बड़ औ छोट सबै पहिराये ॥
चोवा चन्दन कुमकुम लावा , इंद्रहिँ देखि चाउ हिय आवा ।
नृप कर जोरे बिनती करई , फिरि फिरि महत पाउँ लै परई ॥
तुम सब आपनि जानि बड़ाई , मों औगुन सब लेब छिपाई ।
जेँइ भोज जनवाँस सिधाए , चित्रसेन तब बिप्र पठाए ॥
बहु आदर कै कुँअर बुलावा , आनि सो माँड़ो तर बैसावा ।

माँड़ो देखत ही बनै , रसना कहा न जाय ।
कै जो ब्याहा जान सो , कै जो बरातहिँ जाइ ॥ ५२६ ॥

१—एक मिठाई । २—एक मिठाई । (क) मत्र—पाठा० ।
३—मि० विष्' सः केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।

अतिहिँ अपूरब माँड़ो छावा, जरकसि पाट पटंबर लावा।
कनक खंभ जनु बीच सुमेरा, चौंधी दिष्टि ताहि जो हेरा॥
आँब पात दल अंबुज केरा, बन्दनवार कीन्ह चहुँ फेरा।
मंडल के दीपक पुनि बारे, छिटकि रहे मानहुँ ससि तारे॥
दिष्टि फिराइ देखि जो लेहीँ, नखत सुमेर पदच्छिन[१] देहीँ।
कलस बनाइ खम्भ तर धारा, तेहि पर चौमुख दीपक बारा॥
चारिहुँ दिस दीपक जग भाई, एही सगुन दुहूँ जिय पाई।

धरेउ जराऊ बेदि लै, चहुँ दिस अंतरधानि[२]।
बहु आदर सौं कुँअर कहँ, तहँ बैसारेउ आनि॥ ५२७॥

चित्रसेन परिवार कि बारी, जनु बिधने अछरी औतारी।
काँधा बाहीँ सब एक दाईँ, मिलि कै कुँअरहिँ देखन आईँ॥
मंडल कै दुहुँ दिस ते गोरी, भईँ ठाढ़ि मुख सौं मुख जोरी।
कलपबृक्ष जनु कुँअरहिँ चीन्हा, सब के बारि देवतन्ह कीन्हा।
अमिरित अधर तहाँ लै सींचा, देखत निथर न आवै मीचा॥
लोयन कोर कोर पुनि मेले, चोरी चोरी खंजन खेले(क)।
देव कँवल जब पुहुप ऊनारा, दूसर बन्दनवार सँवारा॥

करनफूल गज मुकुता, सोभत कानन जोर।
कंज सेत जनु बिकसि कै, मोति भरैं चहुँ ओर॥ ५२८॥

जुरे आनि बाभन बेदुआई, होम जाप कहँ अगिन जराई।
कुँअर नैन दोउ चकित चकोरा, पून इन्दु ऊवै केहि ओरा॥
जेउँ जेउँ पला जाइ निसि बासी, मंदिल होइ कुँअर कहँ फाँसी।
सुभग मुहूरत आइ तुलानो, नौ सत कै चित्रावलि आनो॥
दिनकर उदै मेटि तम गयऊ, ससि मंडल तारा गन भयऊ।

१—सं० प्रदच्छिणा। २—अंतरवट = वह बिछावन जो चांदनी के नीचे बिछाया जाय। (क) जोरी जोरी खंजन खेले। पाठा०।

पढ़ी बेद बाभन बेदुआई , चित्रावली सुजानहिँ लाई ॥
ततखन आन कीन्ह गँठ जोरा , बन्धन सो जो छूट न छोरा ।

जेउँ जेउँ फेरी देहिँ दिज , होइ अधिक अरुझेरि ।
दिढ़ बंधन निज एक है , और अमिरथा फेरि ॥ ५२९ ॥

पुनि चित्रावलि चौसर हारा , सकुचन कुँअर गीँव लै डारा ।
कुँअरहि लै पुनि हार सुहावा , चित्रावलि के गिँव पहिरावा ॥
प्रेम खेल खेलत दिन बीते , दोऊ खेलार हार दै जीते ।
चित्रसेन पुनि लै कुस पानी , संकलपी धिय सब जग जानी ॥
कुँअर बोलि पुनि स्वस्ति सुनाए , तीनि लोक भये अनँद बधाए ।
कोहबर सेज सुरँग पुनि डासी , सुखसाला कबिलास बिलासी ॥
कुँअरहिँ तहाँ सखी लै गईँ , हँसतहिँ हँसत अनंदित भईँ ।

कहहिँ कि बैसहु सेज चढ़ि , छिन एक रहहु अकेल ।
हम आनी चित्रावली , करहु रहस सुख केल ॥ ५३० ॥

कुँअरहि सेज सुरँग बैसाई , चित्रावलि पहँ गईँ सबाई ।
आस पास सब घेरेँ अलीँ , सुँदरि कहँ कोहबर लै चलीँ ॥
प्रथम समागम बाला डरई , कैसहुँ आगे पाव न धरई ।
चित्रावलि जनु गज मतवारी , छुद्रावली घंट झनकारी ॥
आँदू[1] सकुचि पाव दुहुँ धरा , परगहिँ परग होइ अरगरा[2] ।
छलि आँखिन्ह अँधिआरी[3] मेली , धकारहिँ गड़दार सहेली ॥
कल बल गई सेज जहँ अही , पाटी तीर ठाढ़ होइ रही ।

चित बहलावहिँ निज सखी , औ समुझावहिँ साथ ।
सेज सुरँग जहँ नदि बहै , त्रिनि छुवै न हाथ ॥ ५३१ ॥

१—एक काठ का बना हुआ हाथी का बंधन जिसमें काँटियां लगी रहती है । इससे मतवाला हाथी बांधा जाता है । यहां मत्तहाथी । २—रुकावट ।
३—आंख बन्द करने का आवरण । ढोका ।

पुनि सखियाँ सब एकमत भईं, लै बैसाय सेज पर गईं।
चित्रावलि पुनि जी हठ ऐसी, पीठ दिये घूँघट कै बैसी॥
कुँअर कहा हे परम सेनेही, केहि कारन घूँघट अब देई।
मुख देखाउ कहु बतियाँ मीठी, काहे करेसि हिया जस सीठी॥
जेहिँ लगि कइउ(क) जनम दुख सही, सो कैसे निठराई गही।
जाहि लागि काया नित नई, सो दुखरे दुखदायक भई॥
जो अस कठिन हिया भा तोरा, तो अस भयो हाल सब मोरा।

डारेउँ प्रेम अँदोर जग, तोर मया के काज।
जो तोर हिया दया बिना, जनम अमिरथा आज॥ ५३२॥

यह बिनती कै रहेउ सुजाना, चित्रिनि कही न एको माना।
तब उठि कुँअर भुजा कर गहा, झिझकि हाथ चित्रावलि कहा॥
गहु न हाथ रे बावर जोगी, तासों लागु होइ तोरे जोगी।
जाके छाँह छुए नहिँ पावसि, एकहिँ बार हाथ किमि लावसि॥
कस चकोर अस करै ढिठाई, बिहँसै सरग सेज ससि जाई।
तू भिखारि हौं राजा बारी, राज भिखारिहिँ कौन चिन्हारी॥
जो कै कीन्ह भँवर कै माना, वह परगट यह अँतर सयाना।

बारी बारी दोऊ भनेउ, अस्थिर हियेँ न प्रीति।
जोगी भौंरा के जुगुति, केहि सों कवन परतीति॥ ५३३॥

जो मधुकर अंबुज रस पीए, मालति नेह न राखै हीए।
जूठ अधर औ कपटी हीआ, नागेसर रस चाहै पीआ॥
कपट रूप गुंजार सुनाई, जोगहि प्रेम सो नहिँ पतियाई।
जोगी सोउ जो सेज अनूपा, जोगी नाहिँ आहि बहुरूपा॥
जोगी जो घर घर परसादी, जोगी नाहिँ आहि रसबादी।
जोगी जो घरबारि होई, जोगी नाहीँ कुटीचर सोई॥
तोर मन भौंरा अंबुज हीए, लोक छरसि अंधारि दीए।

(क) कोऊ-पाठा०।

तुअ सँग सुन्दरि नारि एक , परगट सूझै मोहिँ ।
रूप सलोना आपना , काह देखवौं तोहि ॥ ५३४ ॥

कुँअर कहा सुनु राजकुमारी , हौं राजा तोहिँ लागि भीखारी ।
मैँ खप्पर लै तोरे बारा , आसन दरसन भीखि अधारा ॥
तैँसो बिख खप्पर लै आवहि , आपन बार की साध नसावहि(क) ।
हिय चखु रूप रसन तुअ नाऊँ , आन समाइ कहै केहि ठाऊँ ॥
बाँधि जो लेइ काम कर खोजू , जो मन होइ तो पाउँ मनोजू ।
मन राखे तैँ अपने बारा , छूँछो कया फिरै संसारा ॥
देखहु पैठि ढूँढ़ि मोर हीया , सूरज आगे जोति न दीया ।

आहि अनूपम काम बन , छुइ न सकौं तुअ माथ ।
हिरदय पर परतछ सिव , कहु तो राखौं हाथ ॥ ५३५ ॥

कुँअर सपत कामिनि मन माना , सिंभु सपति बाचा परमाना ।
रही अंक हेवर समुझाई , लै सुजान तब अंक मेँ लाई ॥
घूँघुट खोलि रूप अस देखा , सो देखा जेहि सीस सुरेखा ।
अधर घूँट सो अमिरित पीआ , जेहि के पिअत अमर भा हीया ॥
राहु गरास कलानिधि काँपा , लोयन पल आनन पट झाँपा ।
पुनि मनमथ रति फागु सँवारी , खोलि अछूत कनक पिचकारी ॥
रंग गुलाल दोऊ लै भरे , रोम रोम तन मोती झरे ।

सेद[1] थंभ[2] रोमंच तन , आसु पतन सुरभंग ।
प्रथम समागम जो कियो , सितल भा सब अंग ॥ ५३६ ॥

दिन कर उदय होत परभाता , आयो कुँअर जहाँ बरिआता ।
सुखसाला सखिआँ मिलि गईं , सेज बिलोकि अनंदित भईँ ॥
चित्रावलि करि पाउँ अडारी , परी बिसुध जानहु मतवारी ।

(क) तै सो बिध खापर लै आई । आन बार की साध नचाई । पाठा० ।

१—स्वेद ।   २—स्तंभ ।

उघसि माँग अलकावलि छूटी, बेनी खुली बली कर फूटी ॥
सखी एक हीरा पहँ आई, बिकसे अधर दसन चमकाई।
कहिसि कि आइ देखु धिय साजा, मोहिँ कहत आवै मुख लाजा ॥
रानी आइ देखि मुसुकाई, माँग चूमि चित्रिनी जगाई।

कहिसि कि धन दिन धन घरी, धनि माथा धनि भाग।
नैन सिराने निरखि कै, चित्रावलि के भाग ॥ ५३७ ॥

लै सखियन बाला अन्हवाई, चित्र फेरि नौ सात बनाई।
चित्रसेन पुनि सभा बईठा, लिखै लाग दायज कर चीठा ॥
हाथी घोड़ हिरा नग जोती, रतन पदारथ मानिक मोती।
पाटम्बर जरकसी पाँवरी, खाँड़ा मूँठि जराऊ जरी ॥
हंडा गगरा थार अपारा, सोन रूप के गेँडुआ थारा।
जो देखी सो अगिनित दीन्हा, धनि सो पिता जिन यह जस लीन्हा ॥
राजनीति कर चीठी दीन्ही, औ गहि पाँय बीनती कीन्ही।

राज पाट धन देस सब, मोर कुँअर कर जान।
तासों कहा विवेक[1] कछु, जा कहँ दीन्ह परान ॥ ५३८ ॥

---

(३६) कुटी-चर-दहन खंड।

महत चला लै दायज साजा, चहुं दिस दुंद[2] दान कर बाजा।
भाँट कलावत सब पहिराए, दान देइ कर बिदा कराए ॥
निगुनी गुनी भिखारी नेगी, दै दै सब पहिराए बेगी।
बाजत गाजत घर लै आवा, आँगन गै पुनि नाच बधावा ॥
नाच कूद पुनि मेहरिन कीन्हा, जेहि जस लाग ताहि तस दीन्हा।
उहाँ महत घर होइ बधाई, इहाँ सखिन्ह चित्रिनी बनाई ॥
उँच धुराहर जनु कबिलासा, तहाँ कुँअर कहँ दीन्ह निवासा।

१—भेद। २—दुदुर्मा।

राम समौ अभिराम सुख , छलि कै गईं लेवाइ ।
रति बामा चित्रावली , देखत सेज डेराइ ॥ ५३९ ॥
गहि कै कुँअरि सेज बैसाई , अति बिहबल कै अंक मैं लाई ।
तिया बिचित्र सँकानी चीन्ही , सुख हो सुख मेराइ मन लीन्ही ॥
तब चित्रावलि बचन उभासा , पै साईं दुहुँ जग तुअ आसा ॥
कहहु मोहिं अब बात सुहाई , केहि अौगुन मोहिं कीन्ह अदाई[1] ।
कौन रूप मोर अौगुन हेरा , जेहिं देखत तुम खन मुँह फेरा ॥
मोरे नैन मेघ भरि लावा , तुम दहुँ कहाँ जाइ घर छावा ।
हौं अकसर जाड़ा तन काँपी , तुम दहुँ कौन नारि उर चाँपी ॥
हौं बिरहिन रबि तेज जरि , कोइला भई अुराइ ।
तुम कहुँ सुंदरि बेलि गहि , परबत भूले जाइ ॥ ५४० ॥
सुनि कै कुँअर साँस उर काढ़ी , कहिसि कि ऐ सुन्दरि दुख-डाढ़ी ।
जो हम करत जीउ तन सूना , तू जानति हम प्रेम बिहूना ॥
तुम्हरे गाँव काहु बैागावा , नैन खोइ दधि पार अड़ावा ।
कहिसि कि तुम्ह कारन हम आँखी , भई सूर लगि गादुर पाँखी ॥
पिरम बैरि जिउ मारिसि नाहीं , बिरह खोह डारिसि गहि बाहीं ।
साँप लीलि हौं उगलि अँडारा , रच्छक प्रेम निजहिं को मारा ।
जो तुअ रूप रहा चखु माहीं , पायौं नैन जोति पुनि ताहीं ॥
राजपंखि कुंजल कथा , सागर गढ़ क बयान[2] ।
बर बिआह पुनि कौल कर , एक एक कीन्ह बखान ॥५४१॥
चित्रावलि चित उपजी दाया , सुनि दुख अगसाईं भइ काया ।
मनहिं कहिसि यह बैरी कोई , बिना कुटीचर आन न होई ॥
जो अस कौल प्रेम उरुझेरा , अंत भौंर कै लेइ बसेरा ।
अब सो करौं जेहि भौंर लोभाई , मालति छाड़ि न सरवर जाई ॥
कहिसि कि जो अस दुख चित सहई , सोइ कबिलास राज लै रहई(क) ।

१—अनाथ । २—वर्णन । (क) करइ । पाठा० ।

मों उर निकट बैठि अब साईं , भूजहु[1] राज इन्द्र की नाईं ॥
नैन कुरङ्ग गौन गज साजा , दल कटाच्छ एहि भाँति बिराजा ।
नौबति कटि छुद्रावली , धुज अंचल फहराइ ।
पूरन सेवा जो करै , सो अस राज कराइ ॥ ५४२ ॥
भोरहिं चित्रनि जन दौरावा , कुटिल कुटीचर बाँधि मँगावा ।
आज्ञा चेरिन आनि सुनाई , अगिनकुंड लै डारहु जाई ॥
परम दोष जासों कछु होई , ताहि कुंड लै डारहिं सोई ।
निसि दिन उठै अगिन की कला , घोर अगिन जेहि आगे जला[2] ॥
बाँधि कुटीचर तहँ लै डारा , पाप मूल सों भूमि उबारा ।
देखै लोग कुटीचर जरई , अंत पाप माथे अस परई ॥
जे देखा तिन चखु पल झाँपी , परम पाप बैसन्दर काँपी ।
मान अजहुँ तजु ज्ञान कै , पाप जो बन्ध विचारि ।
नहिं तो बहुरि विचार नहिं , घोर अगिन के बारि ॥ ५४३ ॥
बैरिहिं अगिनकुंड महँ मेली , कराहँ दोउ निसि दिन सुख केली ।
कुँअरि पाइ धनि मलय सरीरा , लइ लइ छाती करै समीरा ॥
कौलहि जानि भौंर सँग लटा , चित्रावलि जिम्र खरके कँटा ।
बरजी सखी सहेली सोई , सेज कौल दरसो जनि कोई ॥
औ पुनि कहहिं जो मोरे गाऊँ , रहै न सरवर कौल क नाऊँ ।
औ जो कौल कहै मुँह भाखी , आपन नाउँ सो मिरतक राखी ॥
रस पंडित मुख नाउँ जो लेई , अँबुज निरज बारिज कहि देई ।
कौंल चितेरा जो लिखे , ततखन कलंपो[3] हत्थ ।
मुख परगासे नाउँ जो , रसना खोउ अकत्थ ॥ ५४४ ॥
पंथ पंथ पुनि जन बैसावा , सागर नगर जो जन कोऊ आवा ।
छोरि छीनि कागद सब लेहीं , तबहिं देस पैसारी देहीं ॥

१—भोगा । २—ज्वाला । ३—कलम करा, काटो ।

एहि बिधि रोकि पंथ सब राखा, सरवर रहेउ न अँबुज साखा।
चित्रावलि चिन कै चतुराई, सौति डाह हिय हु तैँ मिटाई॥
जेते सुख पुहुमी बिधि दीन्हेँ, तैते दुहूँ बिलसि जिअ लीन्हे।
रंगनाथ पाँड़े मति बढ़ी, चित्रावलि के पाठ संग पढ़ी॥
संतति[1] संग कुँअर के रहई, तरक बात रस कथा जो कहई।
कुँअरहि भूला ग्रोर सब, रहा दुई संधान।
चित्रावलि कर प्रेम हिय, रंगनाथ की बात॥ ५४५॥

---

(४०) हंस खगड।

कौंलावती नारि पर घटा, बाढ़ी अगिन ओस जनु जटा।
दिवस उसास पवन अधिकावै, रैनि कलानिधि घिउ बरसावै॥
ता ऊपर पुनि मनमथ दानो[2], अति जिअ त्रास रहै केहि पानी।
बचन एक कहि गयो जो पीऊ, ताहि अधार रहै घट जीऊ॥
डरै अकेली मंदिल सूना, सब जग सूना एक बिहूना[3]।
बिरह समुंद्र अथाह देखावा, ग्रोधि तीर कहुँ दिष्टि न आवा॥
सुरति समीरन लहरैँ लेई, बूड़त कोऊ न धीरज देई।
साईँ सविता बाहरैँ, रहेउ कौंल कुम्हिलाइ।
भोर भौंर तन प्रान भा, निकसै कहँ अकुलाइ॥ ५४६॥
रूप नगर कर एक बनिजारा, सागर नगर बनिज लै ढारा।
कौंलावति सुनि व्याकुल भई, भेस फेरि के पूँछन गई॥
कहिसि कि हौं कौंलावति दासी, पिय गौने दहुँ कौंल कलासी।
पूछे समाचार तेहि केरा, मोरे भौंर जेहि लीन्ह बसेरा॥
कुँअर जो गयो एक होइ जोगी, चित्रसेन प्रिय बिरह बियोगी।
कसा कि नाहिँ कसौटी सोना, भा बिआह की अबहीँ होना॥
सुनि बनजारै कथा सोहाई(क), आदि अंत लहु बकति[4] सुनाई।

१—स,तत = निरन्तर। २—दुःख दिया। ३—बिना। (क) सबाई। पाठा०। ४—उक्ति, कथा।

जैसे दलगंजन हना, औ पुनि भयो बियाह।
औ मानहिँ सुख केलि जिमि, खोइ दुंद औ दाह॥ ५४७॥

कौंल दाह जिमि चित्रिनि नारी, कौंल बेलि जरि मूरि उपारी।
कहै न कोऊ कौंल मुख भाखी, औ जिमि बाट रोकि कै राखी॥
सो वै सब पुनि कहिसि बखानी, कौंल नैन आए भरि पानी।
मन महँ कहिसि कठिन भा काजा, बैरिन सौति कुफुन[1] उपराजा॥
तहँ राखिस पिअ मोर छिपाई, जहाँ सँदेस न पहुँचै जाई।
मन्दिर उठि आई दुख-दही, सबै कथा साथिन सों कही॥
को अस मया-मरोही अहई, छलि कै बिथा मोर लै कहई(क)।
हौं निज बिसरी कंत कहँ, तो छाड़ी सब भीर।
एक बार बिधि चित चढ़ौं, जेहि व्यापै मम पीर॥ ५४८॥

हंस मिसिर गुन केर निधाना, चौदह बिद्या पढ़े सुजाना।
रसबिद्या कहँ और न पावा, कौंलावति कै बिरह सँतावा॥
कहिसि कि हे सुन्दरि दुखियारी, तोरे दुख जिय भयों दुखारी।
पैज बाँधि गौनों वहि देसा, लै पहुचावों तोर सँदेसा॥
औ जोगी कुँअरहिँ लै आऊँ, हंस मिसिर तो नाउँ कहाऊँ।
सुनि कै कौंल पाउँ लै परी, कहिसि कि अब जनि बिलँबहु घरी॥
हिअ गह-बरै कहत नहि आवै, सो कहिए जो तुमहिँ जिय भावै।
जहँ उनई सावन घटा, जाइ चाह सो लेइ।
हंस चला तजि मानसर, कौलहिँ धीरज देइ॥ ५४९॥

रूपनगर गै हंस पहुँचा, देखेसि राज इन्द्र हुत ऊँचा।
एकसर भँवै न कोऊ साथी, खोजै बिद्या बिद्याराथी॥
पँडितन पास जाइ लै बानी, बिद्या देखि होइँ सो पानी।

[1]—फा० कोफ्त = मानसिक पीड़ा, जलन।

(क) कोउ नाहीँ अस बन्धू मोहीँ, कहि दुख कथा सुनावे वोहीँ। पाठा०।

दिन दुइ माहँ अँदोर बढ़ावा, रूपनगर एक पंडित आवा ॥
विद्या जान जहाँ लगि अहई, काम-सासतर कंठे कहई ।
पंडित बात कुँअर पुनि सुनी, बाभन एक आउ बहुगुनी ॥
ततखन पंडित निअर बुलावा, तरुनन काम सासतर भावा ।

आयो पंडित रहसि सों, देखेसि बदन अनूप ।
मन महँ कहिसि कि आह एह, निजु मकरद्धुज[1] भूप ॥ ५५० ॥

---

(४१) काम शास्त्र खराड ।

पंडित बैठा देइ असीसा, रस रस पूँछै विद्या ईसा ।
काम-सासतर तुम्ह जो जाना, हम आगे सब करहु बखाना ॥
पंडित बैठेउ आप सँभारी, कहिसि कुँअर सुनु बात हमारी ।
जबलगि सुरति नारि नहिँ होई, तब लगि रस परगास न होई ॥
रसविद्या मकरद्धज बाना, पाँच होइ सो सुनो सुजाना ।
जे यह बान सौंह होइ खावा, एहि जग जिअन अमर पद पावा ॥
धनि सो धन धनि पुरुष सुजाना, धनि विद्या धनि धनि सो बाना ।

सुनहु कुँअर चित कान दै, रस-कंथा अभिराम ।
पहिले बरनौ चारि तिय, ता पाछे रति काम ॥ ५५१ ॥

काम भेद जो जानै कोई, दंपति सेज महा सुख होई ।
रंग अनेक(क) जान जो पीऊ, तिय तन कहाँ समर[2] लै जीऊ ॥
काम भेउ बिनु माँगै रंगा, जस पसु करै पसु सो संगा ।
एहि जग माहँ एक रस सारा, रस बिनु छूछ सकल संसारा ॥
रस बिनु आम न पंछी खाई, रस बिनु ऊखहिँ देहिँ जराई ।

१—कामदेव । २—स्मर = कामदेव । (क) अग अनग, पाठा० ।

रस कहँ भौंरा भँवै भुलाना, बिनु रस दादुर कौंल न जाना ॥
बिनु रस अवनि जनम जे पावा, सूने घर जस पाहुन आवा ।

मान जाय सोइ प्रेम रस, जो बस नैन पसार ।
नेह निहारै जगत महँ, केलि कुरंगिनि सार ॥ ५५२ ॥

सुनहु पदुमिनी केर बखाना, आनन पूरन इन्दु समाना ।
हेम कँवल तन सुन्दरताई, फूल सरिख गात कुँवराई[1] ॥
चित्रा[2] सारँग सावक नैनी, सुक नासिक मराल सुभ गैनी ।
कुच उतंग मांसल[3] बरनारी, पिक-बैनी लंबी लहकारी ॥
पुहुप सरोज बास तन बामा, लज्जावति मानति बिसरामा ।
तीनि रेख कटि त्रिबली बनी, हंसमुखी औ अलपासनी[4] ॥
बाम नाभि रस मन मथ चाला, सेत बसन रुचि सुन्दर काला ।

देव पुजन की रुचि हिए, औ सब उत्तिम बान ।
उत्तिम नारिन्ह माहँ पुनि, सो पदुमिनी बखान ॥ ५५३ ॥

नैन चपल पुनि चित्रिनि नारी, पातर मुख औ अलप-अहारी ।
मोट न पातरि बीचहिँ (क) बनी, जेहि घर होइ पुरुख सो धनी ॥
अति कटि छीन मृदुल पुनि होई, सबद मँजोर कंठ सुर होई ।
सुभग नितंब पयोहर[5] खीना, कमिनि सुघर बजावै बीना ॥
चित्र लिखै चतुराई करई, सुन्दर बचन सेज मन हरई ।
छोट बड़े सौं मया जनावै, स्याम चिहुर[6] सिर भौंर न पावै ॥
अलप काम जल मद की बासा, अलप रोम तन काम निवासा ।

सुंदर जंघा पातरी, अछवाई पुनि चाउ ।
अंग बास पै अधिक हैं, चित्रिनि माहँ सुभाउ ॥ ५५४ ॥

कहौं संखिनी कै गुन राऊ, दिरघ बाँह औ दीरघ पाऊँ ।
कुटिल नैन तन बरन मँजारि, तरहुँड[7] किए रहै सिर नारी ॥

१—कोमलाइ = कोमलता । २—चित्रमाग मृग । ३—गुदार — मोटा । ४—कम खाने वाली । (क) मटहिँ = मोटा । ५—पयोधर = स्तन । ६—चमकीला । ७—नीचे ।

सीस न घने न बिड़रे[1] बारा, चलै उतावलि बहुत अहारा।
अरुन बसन रुचि औ कँठ माला, संतत बरै देह जनु ज्वाला॥
चंचलि व्याकुलि काम सँतावै, चढ़त सेज नख छाती लावै।
कुच छोटे कटि मोटी नारी, कपटी क्रोधी लावै जारी॥
अति बिगंध जल काम बसाई, खर खर महा बचन करुआई।

दयाहीन हिय कठिन अति, काम करै पुनि रोइ।
जेहि घर ऐसी नारि होइ, कंत दुखित नित होइ॥ ५५५॥

नारि हस्तिनी जानहु सोई, हस्तिनि के गुन जा महँ होई।
मोटि देह कुंतल पिअराई, हस्ती-मद जल काम बसाई॥
कुरांगी पुनि कपट लबेढ़ी[2], पाँउँ न सुन्दर आँगुरि टेढ़ी।
मंद गौन चखु लाज न गहई, काँध नवाए निसि दिन रँहई॥
बहु भोजन औ बहु जल कामा, गटपट मिलै सेज पर बामा।
अधर थूल[3] औ गद्‌गद्‌ भाषा, अंकुस दिये रहै सो राखा॥
जस कछु अहै बेद अनुमाना, चारि नारि गुन कहेउँ सुजाना।

बरतमान अब जगत महँ, मिस्रित गुन रसवन्त।
बरनत बहु बिस्तार होइ, चीन्हि लेहिँ बुधिवन्त॥ ५५६॥

सुनहु कहौं अब तिथि परमाना, जेहि ते सेज रवन सुख माना।
परिवा दुइजि चौथि तिथि पाई, पदुमिनि कह पंचमि सुखदाई॥
अंत पहर रजनी पिउ रावै[4], पदुमिनि सेज महा सुख पावै।
छठि अठईँ द्वादसि औ दसा, चित्रिनि के चित ए तिथि बसा॥
प्रथमे पहर जो पिउ रति करई, सेज समय चित्रिनि चित हरई।
सपत चतुरदस एकादसी, तीनौं तिथि संखिनि उर बसी॥
तीसर पहर रैनि रति माना, करै बसन[5] जो होइ सुजाना।

१—स० विरल। २—लपेटी। ३—स्थूल = मोटा।
४—रमै। ५—व्यसन, सभोग।

नवमी तीजि तिरोदसी , पंद्रह तिथि सुख पाउ ।
मदन आउ दोपहर दिन , हस्तिनि कहँ रति चाउ ॥ ५५७ ॥

अब सुनु कहौं जोग नर नारी , रसिक जानु यह बात रसारी ।
जोगहिँ जोग मिलै जो आई , अति आनन्द महा सुखदाई ॥
मेहरिन मदन ठाँउ क्रम होई , बिनु रति जोग कुठाहर[1] सोई ।
जोग न मिलै होइ सुख हानी , अंत कंत कहँ तजै परानी ॥
जो कुलीन होइ हेतु[2] न राखै , नाहिँ तो जाइ आन फर चाखै ।
तीनि जाति बिधि तिया सँवारी , हरिनी[3] असुनी[4] करिनी[5] नारी ॥
तीनि भाँति बिधि नर उपराजा , ससा बृषभ औ तुरँ[6] बिराजा ।

पहिले एक एक कर कहौं , जाति पाँति बेवहार ।
ता पाछे कहि देउँ सभ , जोग बियोग बिचार ॥ ५५८ ॥

ससा सरूप सुनहु नरनाहाँ , उत्तिम जाति सो पुरुषन्ह माँहाँ ।
मुख पातर तन सुन्दरताई , दसन छोट पुनि कछुक मेटाई ॥
कोमल चिहुर सीस नहि घने , हाथ पाउँ जंघा सब बने ।
दीरघ चखु सूछम करिधनी[7] , अलपरती औ अलपासनी ॥
अति गंभीर महा सुखदाई , बैठन उठन अधिक गरुआई ।
बास सुगंध मदनजल[8] आवै , मृग नैनी तेहि सँग सुख पावै ॥
भोजन अधिक दूध रुचि होई , दस महँ पुरुष एक अस होई ।

मदनांकुस[9] रसबेद[10] मन , षट अंगुल परिमान ।
इह परकीरति[11] जो पुरुष , सोई ससा बखान ॥ ५५९ ॥

लच्छन बिरिष कहौं सुनु राऊ , थोर लाँब भुज बल ब्यवसाऊ ।
दीरघ लोयन कोरैँ राते , बरन असेत जनहुँ मदमाते ॥

१—कुठौर, कुठाव । २—हिताह, प्रेम । ३—मृगी । ४—वडवा ।
५—हस्तिनी । ६—अश्व । दे० वात्स्यायनकृत कामशास्त्र । ७—कमर ।
८—वीर्य । ९—लिंग १०—कामशास्त्र । ११—प्रकृति, स्वभाव, लक्षण ।

मन्द गँवन अस्थिर नन राऊ, जहँ बैठे तहँ उठै न भाऊ।
अरुन हथौरिनि[1] पीत गरेरा, सेज मान जो नखछत केरा॥
एहि गुन पुरुख रूप पहिचाना, नव अंगुल अंकुस[2] परिमाना।
मध्यम बिरिख पुरुख जग होई, उत्तम सोई जो चीन्हे कोई॥
औ उत्तम जो कहि समुझावे, उत्तम रसिक सतन सुख पावै।

अस्थिर लोयन कोरन, अश्वी सों रति चाव।
अब आगे सुनि कान दे, गुन तुरंग के भाव॥ ५६० ॥

गुन तुरंग सब कहौं सुजाना, लिंग अदिन अंगुल परिमाना।
दीरघ अंगुल दीरघ बाहीँ, दीरघ दसन तुरे मुख माहीँ॥
लाँब मौलि सिर केस सुहाये, सदन नैन बिसम्हारि पियाये।
टेढ़ जंघ नख करबुद[3] टेढ़ा, सीस पाय लहुँ क्रोध लबेढ़ा॥
पातुर लोभी अधिक ढिठाई, मन्मथजल[4] बिरगिन्ध[5] बसाई।
नीँद अधिक चंचल गति पावे, इस्त्री रति लालस दहकावै॥
लाँब गीवँ अरु अस्थुल नेता, बदन लाँब लज्जा हत-हेता।

पुरुख जात पहचान यह, एहि गुन भाव बिचारि।
अब निरवल[6] के बरनबउँ, तीनि भाँति पर नारि॥ ५६१ ॥

अब सुनु हरिनी केर बखाना, मन-चित-हरिनी सोई सुजाना।
कुटिल केस सीस सम घने, ननर्या[7] कुच अनंग उर बने॥
अंबुज नयन भँवर हिय मोहा, नासिक अल्प छिद्र मुख सोहा।
चंचल भुजा बैन पिक कहै, सेज समय नहिँ इस्थिर रहै॥
अधर अरुन जनु पुंज निवारी, गज गवनी अपुरुब बर नारी।
मदन-जला जनु कँवल बसाई, अलप-असन नितंब समताई॥
सुघर पाय औ कर सुकुमारी, कोमल नवै तेज जेउनारी।

१—गदोरी, हथेली। २—मदनाकुश = लिंग। ३—नखमंडल।
४—वीर्य। ५—दुर्गंधि। ६—विवरण, व्यवरा। ७—छोटी।

कामागार गरन्थ मत . रस अंगुल परमान ।
यह परकीरति बैठि गुनु . हरिनी जानु सुजान ॥ ५६२ ॥

दूजे कहौं अस्वनी नारी . बिरिख पुरुष की नारि पियारी ।
घने बार सिर डीठि नरोंही , पलक मोंट पुनि बरन हथौंहीं ॥
नील कँवल सम लोचन छाता , अरु न कँवल जिनु करबुद राता ।
लांब बदन औ कोमल देहा , सभर[1] नितम्ब पयोहर जेहा ॥
लांबी गोवँ भुजन सहराये . सुभगवती हिरदै डर खाये ।
यह केहरि किरोधती नारी . खीर खांड रुचि नींद पियारी ॥
कांख रोम बहु औ मद-जला . करैं रोज चितुराई कला ।

नव अंगुल परमान पुनि , मकरध्वज-भंडार ।
एहि परकीरति जानहीं , असुनी के बेवहार ॥ ५६३ ॥

हस्तिनि के गुन कहौं सबाई . बहु भोजन मन पाप बसाई ।
थूल हाथ औ दोऊ बाहीं . सील लाज नहिं आँखिन माहीं ॥
ओंठ लांब औ तीछन दांती . संतति रहै काम मदमाती ।
सबल देखि नैन पिअराई , मद गयंद जल काम बसाई ॥
सुर गँभीर सोहिनि उर लांबा . राते देह जनहुँ दुति तांबा ।
कण्ठहिं होइ सेज रति दानी , मदन-भँडार बहै नित पानी ॥
कामगार मिति अंगुल भाना . हस्तिनि के गुन सुनहु सुजाना ।

जाति भाँति सब मैं कही . जेहि जस आह सुभाउ ।
अब जासों सुख सेज रति . सोऊ कहौं सुनु राउ ॥ ५६४ ॥

पांच भाँति रति जोग सुजाना , ऊँच नीच सम जोग बखाना ।
औ अति ऊँच नीच अति होई[2] , बिनु रस रसिक न जानै कोई ॥
जहँ सम जोग तहाँ हित प्रीता . संतत जनम हेत महँ बीता ।
ऊँच नीच दोउ एक सम भांती , एक जिअ दुखी एक नहिं सांती ॥

१—भारी ।   २—रति संयोग के पांच भेद ऊंच, नीच, सम, अति उच, अति नीच ।

जहँ अति ऊँच कि अति होइ नीचा, संग न सहै सहै बरु मीचा[१]।
कंनहिँ तिय तिल-अंजुलि देई, जाइ ढूँढ़ि सम जोगिहिँ लेई॥
एहि कारन जग महँ अति पापा, कामदेव सोइ दीन्ह सरापा।

अब लहुँ मैं संज्ञा कही, सब कहँ बूझि न जाइ।
सुनहु रसिक रस कान दै, कहौं सबै बिलगाइ[२]॥ ५६५॥

हरनी ससा जोग सम अहहीं, दंपति सदा सेज सुख लहहीं।
असुनी वृषभ जोग सम आवा, एहि दोउ मिलि संतत सुख पावा॥
सम जोगा हस्तिनी तुरंगा, दोऊ सेज चढ़ि मानहिँ रंगा।
हरनी वृषहिँ ऊँच रति होई, असुनी अस्व ऊँच पुनि सोई॥
असुनी ससा नीच कै जानहु, हस्तिनि वृषहिँ नीच रति मानहु।
अतिहिँ उँच तुर हरिनी ससा, अतिहिँ नीच हस्तिनि औ ससा॥
ऊँच नीच लगि बुद्धि बिचारी, जेहि तें होवै बस बरनारी। (क)।

काम गौन जेहि बिधि करै, नर नारी के गात।
सो सब कहौं बखानि कै, सुनहु रसिक यह बात॥ ५६६॥

चढ़ै काम नर दाहिन अंगा, बाएँ अंग नारि पर संगा।
सुकुल पछ परिवा जब आवा, आवै काम अँगूठा पावा॥
परिवा दुइजि तीजि बस फीली, गहै चौथि कै जाँघ रसीली।
पँचमी बसै मदन की ठाऊँ, षष्ठी बसै नितँब जेहि नाऊँ॥
नाभी रहै सत्तमी मदना, अठएँ बसै आइ उर सदना।
नौमी बसै मैन कुच माहीँ, दसमी आवै काँख तराहीँ॥
एकादसी गाल महँ आवै, द्वादसि काम कपोल समावै।

तेरसि आवै अधर पर, बसै चतुरदसि नैन।
जेहि दिन पूरन चन्द्रमा, रहै माँग चढ़ि मैन॥ ५६७॥

१—मृत्यु। २—पृथक पृथक विवरण करके।

(क) अब मनु राजा कहा हमारा। निहचै कहा बचन जो सारा। अधिक।

कृष्ण पच्छ परिवा रह माँगा, पुनि उतरे होइ दाहिन आँगा।
जैसे बाएँ चढ़े अनंगा, तैसेँ उतरै दाहिन अंगा॥
जौ लहुँ योनि खलित नहिँ होई, तौ लहुँ हिअ संतोष न सोई।
माँग नखच्छत चूमिय नैना, खेदन अधर बिभेदन मैना॥
रसिक कपोल कपोलहिँ घसई, जब कपोल मकरद्धुज बसई।
केलि काँख अँगुरी लिखि लेई, गहि कुच कठिन नखच्छत देई॥
उर सहराइ देइ नख नाहाँ, उलटि हाथ हन नाभी माहाँ।

और सबै चुटकी गहै, बसै अंग जेहि काम।
निहचै मैन न थिर रहै, होइ बस्य[1] पुनि बाम॥ ५६८॥

आदि सुरति जनि काम सतावहु, अंत करहु जातेँ सुख पावहु।
पहिलहि जाइ काम तजि अंगा, काकर सुख का कर रति रंगा॥
मूरख सौँ हम भेद छिपावैँ, रसिक जानि रस बात सुनावैँ।
काम भेद कहि हंस बताना[2], नायक औ नायका बखाना॥
नौ रस के पुनि भेद सुनाए, अभिनव भाव सबै समुझाए।
सोरह हाउ भाव पंचासा, जेहि औलंबन माहँ नेवासा॥
जो यह भेद कहौँ कमुझाई, आन कथा एक लिखौँ बनाई।

कहौँ थोर जेहि भाव बहु, बूझहिँ बूझनहार।
कहँ लगि बरनौँ नायका, नायक गुन बिस्तार॥ ५६९॥

---

(४१) चित्रावली गवन खंड।

हंस मिसिर अस गुन परगसा, कुँअर हिए भीतर होए बसा।
रंगनाथ औ हंस गियानी, जनु गुरु सुक्र दोउ गुन ज्ञानी॥
कुँअर पास नित बैसे रहहीँ, उत्तम उकुति तरक पुनि कहहीँ।

१—वशीभूत। २—कहा।

एक दिन एक मधुप उड़ि आवा, कुँअर कान गुंजार सुनावा ॥
कुँअर कहा जो अलि गुंजारा, ताकर पुहुमी कहा बिचारा।
कहहिँ कि अलि गुंजार नरेसा, आनि सुनाउ कहूँ क संदेसा ॥
कुँअर कहा तुम पंडित दोऊ, पूछौं कहौ समुझि जिअ दोऊ।

मधुप पिये मकरंद रस, निसि दिन कुसुम निवास।
केहि कारन एह स्याम तन, संतत भँवै उदास ॥ ५७० ॥

रंगनाथ पाँड़े सुनि बोला, सुनहु कुँअर एह भेद अमोला।
भौंर बिबेकी हेत न होए, मुहँ रस पिए कपट मन कीए ॥
पीपे एक पुहुप जो रसा, दूसर फूल रहै मन बसा।
बारी बारी भँवै अधीरा, तेहि औगुन भा स्याम सरीरा ॥
चंदहि जो चकोर मन लावा, एक हेत भा रंग सुहावा।
तब उठि हंस कहा सुनु राऊ, भौंर स्याम गुन कहौं सुभाऊ।
सूर बिरह जो अंबुज दही, मधुकर तहाँ राति एक रही। (क)

पुहुप हेत मकरंद गुन, अहा सेत अभिराम।
बिरह अगिन जरि कै तहाँ(ख), भौंर भयो तन स्याम ॥५७१॥

कुँअरहिँ सुनत तरकि जिय लागी, औ सुनि सभा सकल अनुरागी।
कहिसि कि धनि सरवर धनि हंसा, धनि गुरु धनि कुल धनि अहि बंसा ॥
जेहि अस बुद्धि होइ हिय माँही, कस न पुहुमिपति लाल कराहीँ[१]।
बुद्धि दीप जाके हिय बरई, पुहुमी सरग उजेरा करई ॥
तेहि अँजोर जो करै पयाना, हेरि लेइ सब जोई हेराना।
एक दीप बिनु जग अँधिआरा, बादि[२] सूर ससि कर उजिआरा ॥
निअरीह रतन न चीन्हे नैना, धावै दूर दूर सुनि बैना।

(क) सूर बिरह जब कौलहि देइ, मधुकर निकसि निवास करेई। पाठा०।

(ख) नीरज भौंर अगिन जरी। पाठा०।

१—लाल करना – खुश करना। २—अतिरिक्त।

कया भवन महँ बहइ नित, पाँच झकोरा बाउ।
एहि बिधि किरपा ओट कै, दीपक बुद्धि बचाउ ॥ ५७२ ॥

हंस बचन सुनि कुँअर सँचेना[1], चढ़ेउ आइ हिय अंबुज हेना।
ततखन हिए अगिन उदगरी, मया पौन परि छाती जरी ॥
मन महँ कहिसि नियाउ न होई, वह मोरी मैं वह क न कोई।
औरहिं प्रेम भयो मैं अंधा, हौं सो दूर वह मोरे रंधा[2] ॥
वह मो कहँ राखै चित माहीँ, मोरे ओहि की चरचा नाहीँ।
अब कै लेहुँ चाह तेहि केरी, जो हौं जीउ उठे ओड़ेरी[3] ॥
चलौं बिदा होइ अपने देसा, मकु भेटै जो जियत नरेसा।

यह मन गुनि आयो कुँअर, उठि चित्रावलि पास।
मुख मलीन ज्यों निसि कँवल, चितवति भयो उदास ॥ ५७३ ॥

चकित भइ मुख देखि चकोरी, के मयंक दुति लीन्ह अँजोरी।
के सनमुख भाषा कछु हीना, जेहि उदास भा मुखर मलीना ॥
मोरे मँदिर पौन नहिँ आवे, दीप जोति किमि छीन देखावै।
को होइ दूत नगर महँ आवा, सौति केर जिन बिरह सुनावा ॥
नाहिँ तो जहाँ समीर न चाला, बिनु मधुकर पंकज नहि हाला।
पूछौं रसहिं पैठि हिय माहीँ, बिनु कारन यह कारन[4] नाही ॥
कहिसि कि ऐ साईं सुखदाई, कारन कौन बदन मलिनाई।

तैं दिन मन सोइ जगत महँ, जेहि अँजोर संसार।
काहे बदन मलीन कै, करसि जगत अँधिआर ॥ ५७४ ॥

कुँअर कहा सुनु प्रानपियारी, हम चित आनि चढ़ेउ दुख भारी।
मैं अपने कुल सरवन अहऊँ, अंधी अंधा काँवरि बहऊँ।
तोरे पेम पिआस सँतावा, बाट छाँड़ि एहि सरवर आवा ॥
जस दसरथ आहै सर लाँना, मकु बोलत मारै बिख बाना।

१—स्मरण किया अथवा बुद्धिमान। २—रंध = समीप। ३—उद्गार।
४—क्रिया, चेष्टा।

इहवाँ लागि जाइ जम बाना, अंधा अंधी तजहिँ पराना॥
उन कहँ अंकन कौन दुहेला, अंध लकुटिआ महीँ अकेला।
जौ एहि भेस जाइ सुधि लेहूँ, मुए जिअत दूनहुँ गति देहूँ॥

जब ते यह चिंता भई, भाउ न एकौ काज।
अब गौनब निज देस कहँ, साजहु गौन क साज॥ ५७५॥

चित्रावलि सुनि त्रिंता गही, सीस नवाइ औंधि होइ रही।
दोउ दूभर मिलि दुख उपराजा, इत प्रीतम उत कुटुम कि लाजा।
काहु जाइ मंदिल महँ कहा, आजु सुजान कहत अस अहा॥
हीरा बदन सूखि सुनि गयऊ, बरमा बेध हिये महँ भयेऊ।
सुनि कै गई जहाँ हुत राजा, कहिसि कि परी अचक सिरगाजा॥
अब सुजान निज देस सँभारा, करत आह घर गौन बिचारा।
राजा हिएँ अग्नि पुनि बरी, तरहुँड माथ रहेउ एक घरी॥

नैन नीर भरि कहिसि नृप, कछु न हमार बसाइ[1]।
को जग ताकर कर गहै, जो आपन ले जाइ॥ ५७६॥

हम जबतेँ ओकहँ जिउ दीन्हा, आपन सुख न्योछावरि कीन्हा।
अब जामहँ सुख पावै राऊ, करहु सोइ नहिँ आन उपाऊ॥
ओकहँ आन कहहिँ हम आना, जनम हेतु कर होइ निदाना।
जो वह करै होइ सब सोई, कीन्ह हमार अमिरथा होई॥
कस न करै सब ताकर कहा, जाकर कहा होत सभ अहा।
पै जौ लहुँ धिय गौन न होई, लोग कुटुँब भल कहै न कोई॥
जौ लहुँ धिय ससुरैँ नहिँ जाई, तौ लहुँ नहिँ छूटै लरिकाई।

नैहर महँ सब केलि सुख, निमिखि न आगे सूझ।
परै जाइ ससुरारि महँ, पर आपन सब बूझ॥ ५७७॥

1—व्यवसव।

रानी राउ बचन जब सुनी, भा चिंता चितही महँ गुनी (क)।
कहिसि कि भला कहै नर लोई, मेहरिन्ह जगत नेक[1] बुधि होई॥
दुहिता सोन अगिनि ससुरारा, सासु सँडासी कंत सोनारा।
दै सोहाग सब निसि दिन केली, ग्रौटै सदन घरी[2] महँ मेली॥
ननँद नाल फूँकत नित रहई, सुलगि हिया कोइला जिमि दहई।
घाउ बोल घन[3] छिन छिन खाई, ठाउँ न छाड़ जानि निहाई॥
नव तिरिया कुन्दन की नाईं, मेटै ग्रंक मेँ भरि नग साईं।

नैहर जानि न जाइ कछु, गुन ग्रौगुन एक मान।
सोई सोहागिनि भामिनी, जाकर ससुरे मान॥ ५७८॥

पुनि राजैँ सुजान हँकरावा, बदन हेरि हिय गहबरि आवा।
अति बिहबल मधु-बचन उभासा, कहिसि कहा चित कीन्ह उदास॥
आइउ सूर निअर भा मोरा, एह सब राज पाट धन तोरा।
का बिचारि छाड़हु एह राजू, बिलसहु बैठि इन्द्र कर साजू॥
कहा सुजान पुहुमि धै माथा, दीन्ह न जाइ निमिषि तुअ साथा।
हौं निरिघिनि भिखारि हुत आवा, तुम राजा मोहिँ राज करावा॥
हौं परदेसी अहा अनाथा, तुम किरपा करि कीन्ह सनाथ।

मैं तुमरे परसाद सब, सुख अनेक जग कीय।
पिता राज अब चित चढ़े, धसकि उठै मम हीय॥ ५७९॥

पिता राज यहि जग महँ मूला, मूल छाड़ि पल्लौ को भूला।
जौ अपने देसहिँ निजु जाना, कस न अबहिँ फिरि करौं पयाना॥
पलटी दिष्टि फिरै नहिँ फेरेँ, मन पुनि परा दिग्र के घेरेँ।
जेहि जेहि पंथ चला हौं आवा, लोयन माँह अहै सब छावा॥
अज्ञा देहु तो साजौं साजू, इहवाँ नहिँ हमार अब काजू।

(क) भा चित चेत हिये महँ गुनी। पाठा०। १—तनिक = थोरि। २—घरिया। जिसमे सोना आदि धातु गलाते हैं। ३—हथौड़े की चोट।

सुनि कै उतर राउ गहबरा[1], उमड़ी नैन दुहुँ जल धरा ॥
कहिसि कि जौ तुम जिय अस भावा, करहु सोइ जो जिय महँ आवा ।

जाकर चित चलन बसा, को न राखै ढील ।
कहा जो राखे दिवस दस, अंत चले तजि साल ॥ ५८० ॥

रानी सुनि धिअ गौन बिचारा, बिसुधि गिरी भुइँ खाइ पछारा ।
चूल[2] तोरि मोती छितराई, लोचन मोती माल पुराई ॥
जन परिजन सब भा बिकरारा, ज्यों तन बिछुरे प्रानपिआरा ।
सुनि चित्रावलि गौन क नाऊँ, घर घर बिसमादा[3] सब गाऊँ ॥
राज मँदिल जो रार[4] बढ़ावा, राजनीत मंत्री चलि आवा ।
देखेसि आइ बूढ़ आ बारा, आपु आपु कहँ सब बिकरारा ॥
कहिसि कि जो कोइ आपन थाती[5], लेइ तो कहा बिदारिय[6] छाती ।

करहु चेत नित रोग तजि, साजहु गौन क चार ।
दूनहुँ जग महँ होइ जेहि, तुम्हरो मुहँ उजियार ॥ ५८१ ॥

महत बचन सुनि चेतो राजा, साजे लाग गौन कर साजा ।
चन्दन चीर कीन्ह चंडोला, चहुँ दिसि लाए रतन अमोला ॥
अपुरब एक ओहार सुहावा, बिबिधि भाँति कै आनि ओढ़ावा ।
झूलहिँ चहुँ दिसि झालरि मोती, छिटकि रही जग जगमग जोती ॥
कुसुम गूँधि बहु हार बनाये, ठाँव ठाँव पुनि आनि लगाये ।
अगर मेद मलयज घनसारा, बास सुगंध कीन्ह महँकारा ॥
आँगन कै राखेउ चंडोला, दायज कर भंडार पुनि खोला ॥

सोन रूप मनि मोति नग, हाथि घोर बहुताइ ।
पाटम्बर जरि पाँवरीँ, दीन्ह अनेक लदाइ ॥ ५८२ ॥

१—विकल हुआ, घबराया । २—चूडा = जूडा, सिर का बंधा हुआ बाल ।
३—दुःखी हुआ । ४—शोर । ५—धरोहर । ६—फाड़िये ।

छोह भरी रानी पुनि आई, चित्रावलि लै अंक में लाई।
कहिसि दोऊ लोचन भरि नीरा, मुख छबि पर बलिहारी हीरा॥
अब तुम्ह करब तहाँ कर गौना, जहँक संदेस न पावहिँ सौना।
पिउ बरिआर[1] बिबस लै जाई, हम देखहिँ पै कछु न बसाई॥
सकल जनम नैहर सुख सारा, अब तुम चलहु जहाँ ससुरारा।
कठिन आहि ससुरारि कि रीती, सोई जान जाहि सिर बीती॥
नैहर महँ जिन गुन औरावा[2], ससुरे जाइ सोइ सुख पावा।

अब जो धरि दुइ माँह पिउ, लै गौनहिँ गहि बाँहि।
बचन दो एक उपदेस हित, कहौं धरब हिय माँहि॥ ५८३॥

सजग रहब गवने ससुरारा, अहित अलेखित हिन दुइ चारा।
पर आपन जौ लहुँ न चिन्हाई, सब सों राखब बदन छिपाई॥
ओबरी[3] माँह रहब दिन गोई, आँगन होब रात जब होई।
बैसब सदा बार दै पीठी, परै न सौंह आन की डीठी॥
संतति रहहि मुकुर कर माहीँ, चीन्हब पर आपन परछाहीँ।
पुनि डर मानब गुरुजन केरी, सनमुख काहु न देखब हेरी॥
उतर न देब कहँ जौ कोई, लाजन रहब चरन तर जोई।

ननदी औघर[4] जो कहै, रिसि राखब जिय मारि।
परिछि सीस पर लेब नित, सामिनि देइ जो गारि॥ ५८४॥

औ चित लाइ करब पिउ सेवा, एक पीउ दोउ जग सुख देवा।
मंत्र जंत्र साधब जनि कोई, सेवा एक पीउ बस होई॥
जौ बस होइ तौ गरब न करिए, आपु अधीन होइ मन हरिए।
औ काहु सों भेद न कहिये, धन ज्यों करैँ छपाए रहिये॥
लोगन आगे रहब लजाई, चोरीँ चढ़ब सेज पिय जाई।

१—बरियार = बलवान। २—(सं० ऊरीकरण) संग्रह किया, सीखा।
३—कोठरी, घर। ४—औघट = कटुवचन।

जिउ दुख दै सेवब सुख त्यागी, सगरी रैनि गँवावब जागी ॥
सौतिन्ह कर इरखा[1] नहिँ करना, साईँ संग सदा जिय डरना।

अलप मान सेवा अधिक, रिसि राखब जिउ मारि।
जेहि धन महँ ये तीन गुन, सोई सोहागिनि नारि ॥५८५॥

सुनि उपदेस नारि गहबरी, रोइ जननि के पायन परी।
रानी पुनि लै अंक मे लाई, तजि न जाइ अति हियेँ छोहाई ॥
उन्ह दूनहुँ के मया निहोरा, होइगा सगरे नगर अँदोरा।
जहँ लहु सखी सहेली चेरी, रोवहिँ चित्रावलि मुख हेरी ॥
राजा सुनि अँदोर पुनि आवा, देखि अवस्था दुःख जनावा।
चित्रावलि तजि जननि कि छाती, पिता के पाउँ परी बिलखाती ॥
राजै पुनि उठाइ गिँव लाई, नैन नीर पुत्री अन्हवाई।

पिता कंठ धिय गहि रही, छोहन छाड़ि न जाइ।
ज्यौँ ज्यौँ जननि छुड़ावइ, त्यौँ त्यौँ गहि लपटाइ ॥५८६॥

रानी बर कै धिय बिलगाई, राजैँ बहुत प्रबोधि बुझाई।
जनि जानसि हौं दूरि अडारी, जात रहहिँ हौं बाभन बारी ॥
समाचार इहवाँ कर मोरा, कहि सँदेस लै आइहहिँ तोरा।
औ पुनि कटक मोर सँग जाइहि, नाव चढ़ाइ बिदा होइ आइहि ॥
कै परबोध नरेस बिनानी, समदि[2] चल्यौ धिय चखु भरि पानी।
चित्रावलि कहँ होइ बिकरारा, कंठ लाए समदैँ परिवारा ॥
समदैँ सखिआ लै लै फेरी, पायन परि परि समदहिँ चेरी।

कोई रोवै कंठ गहि, कोई पायन्हि लागि।
सँवरि सँवरि सब संग सुख, उठै करेजैँ आगि ॥ ५८७ ॥

एहि महँ आवा कन्त बुलावा, चित्रिन कुछ नहि समदै पावा ॥
जहाँ तहाँ सब देखहिँ नारी, चढ़ी जाय चंडोल सवारी।

१—ईर्षा। २—मिलकर।

छाड़ेउ सकल फूल फुलवारी, छाड़ेउ सुख सरवर चितसारी ॥
छाड़ेउ अगर चँदन सुखदाई, छाड़ेउ पालक[1] सेज सुहाई।
छाड़ेउ पिता राज नवरंगा[2], छाड़ेउ बाल-सँघाती संगा ॥
छाड़ेउ हीरा अरथ भँडारा, छाड़ेउ पाट नैन भिनु सारा।
ठाढी देखहिँ सखी सहेली, अन्त छाड़ि सब चली अकेली ॥

हसन खेल औ कूद सुख, बालापन के रंग।
चली सोहागिन छाड़ि सब, गुन औगुन लै संग ॥५८८॥

चढि चंडोल चली बर नारी, संग साथ घर बार बिसारी ॥
चारि कँहार बाँस धरि काँधा, ऊपर डारि जायँ भारांधा।
आवहि ऊभ साँस उर लेई, फिरि के काहु न धीरज देई ॥
सगर नगर पुनि देखी धावा, मलि मलि हाथ करैं पछनावा।
दायज पुनि सब लादि चलावा, कुँअर सुजान बिदा कहँ आवा ॥
बिनती करैं राउ औ रानी, बरखहिँ नैन सेवाती पानी।
चित्रावलि अब अगसर जाई, तुम जानहु औ कुल कि बड़ाई ॥

जान अहौ तुम्ह सग लै, हम दुहुँ घट कर प्रान।
आपु बड़ाई हरि के, राखब एहि करिमान ॥ ५८९ ॥

चढ़ि जो तुरंग सुजान पयाना, सहस पखरिआ संग पलाना ॥
लाख सहस दासी जो दीन्हे, बिबि दस दुरद छोरि सँग कीन्हे(क)
साजि कटक लै चल्यो सुजाना, बिबिधि भाँति नहि जाई बखाना।
हंस मिसिर कीन्हेउँ अगुआई, पाछैँ लागि कटक सब जाई ॥
सूध पंथ सागर गढ़ ताका, पौन डोर कहँ मन रथ हाँका।
जाइ तुलाने सागर गाऊँ, कुँअर देखि चीन्हा अँबराऊँ ॥
कहिसि हंस हम अनतहिँ जाहीँ, इहाँ हमार परोजन नाहीँ।

१—सं० स्फलक = पलंग। २—(फा० اورنگ) औरंग = राजसिंहासन।

(क) जे दल साथ सहस दस कीन्हे, तब सब लोग बडाई कीन्हेँ। पाठा०।

आजु लेब हम कटक सँग, एहि अँबराउ सुबास।
होइहै कोऊ हमार जौ, सुनि आइहि हम पास ॥ ५९० ॥

(४२) कौलाँवती-गवन खंड।

देखि कटक जिमि बादल छाहाँ, परी हूल सागर गढ़ माहाँ ॥
यह अब को जस सोहिल राऊ, कटक साजि भुइँ चापे आऊ ॥
वह हुत कौलावति अनुरागी, एह अब दहुँ आवै केहि लागी।
औ कहँ हुत सुजान संघारा, अब कहँ पाउब तस बरिआरा ॥
सागर मन पुनि चिंता भई, साहस बाँधि मीचु पुनि भई।
जहँ तहँ सजग बीर हित बासे, सूर बदन जनु कौल बिगासे ॥
एहि महँ हंस पहुँचा आई, कहिसि करहु अब अनँद बधाई।
जो जोगी सोहिल हना, औ राखा तुअ प्रान।
आयो बहुरि नरेस होइ, चलहु करहु सनमान ॥ ५९१ ॥

हंस बचन जब सागर सुना, भा जिअ सोच हिया महँ गुना।
अब लहु कौल आस जल अहा, अब जो राखिय कारन कहा ॥
लोग कुटुम मिलि कै मत ठाना, कौल न काज आउ बिनु भाना।
जस बर कै मोहि दीन्ह बिआही, अब बर कै पुनि सौंपहु ताही ॥
दुहिता केर कठिन है भारा, तबहीं पति[1] जो जाइ ससुरारा।
जनम पिता माता घर लेई, दुख सुख माथे बिधि लिखि देई ॥
यह बिचारि कै डाँड़ी फाँदी, गौन जान कौलावति साँदी[2]।
समदी गंगा गोद गहि, औ कुमुदिनि कँठ लाइ।
पुनि समदेउ परिवार सब, लोगन आँगन आइ ॥ ५९२ ॥

कौलावति चढ़ि चली बिमाना, जेहि अँबराउ सुरेस सुजाना।
सागर साजि कटक पुनि चला, कौल गौन-दुख जग कलमला ॥

१—मर्य्यादा। २—समदी = मिली। काँदी, पाठा०।

औ जहँ लहु हुत दायज दीन्हा, सो सब लाइ पुरोहित लीन्हा।
सागर आइ सुजानहिँ भेँटा, मुख देखत सब दुख गा मेँटा॥
कंठ लाय हिय सीतल कीन्हाँ, भुजा जोरि अँकवारी दीन्हाँ।
औ जहँ लहु पर आपन अहे, छुइ छुइ पाँउ दुरि तकि रहे॥
सागर तब बिनती औधारी[1], कस घर तजि के उतरेउ बारी।

जो राखहु नीरज चरन, सोभ पाउ हम माथ।
चलउ आप घर जानि कै, कीजै हमहिँ सनाथ॥ ५९३॥

तब सुजान बोला सुनु राऊ, एहि मारग हम लोग बटाऊ।
पथिक पंथ जौ छाड़ै कोई, भूलै अंत महा दुख होई॥
सूध पंथ तजि उत्तर केरा, कौल[2] बचा आएउँ एहि फेरा।
कौलावति कर बिदा करीजै, अगुआ एक संग पुनि दीजै॥
तुम परसाद जाउँ अब देसा, मकु भेटउँ कै जियत नरेसा।
राय कहा कछु आहि न खाँगा[3], को राखै जो आपन माँगा॥
सूख पंथ बहु दुख जगजाना, पानी पानी बहुत मिलाना।

अज्ञा देहु तो जाइ घर, साजौं बोहित साज।
लीजै सभै लदाय जो, आउ तुम्हारे काज(क)॥ ५९४॥

कुअँर गहे सागर के चरना, कहिसि बेगि कीजै जो करना।
सागर राउ पलटि घर आवा, चित्रावलि पहँ कुअँर सिधावा॥
कहिसि कि सुन्दरि प्रान पियारी, तोहि बिनु प्रान होइ घट भारी।
एही नगर जहवाँ हौं कहा, पाँच मास पग साँकर रहा॥
एही नगर हम कहँ दुख बीता, इहाँ हाँकि सोहिल रन जीता।
एही गाँव सागर गढ़ आही, कौलावति जहाँ दीन्ह ब्याही॥
मो कहँ तुम्ह बिनु आन न भावा, वै मोहिँ बिरह बहुत दुख पावा।

१—किया। २—(अ० قول) वादा। ३—सं० पंग = रुकावट। अड़चन।
(क) दीजै सबै जराइ जो आउ न तुम्हरे काज। पाठा०।

ओहि के दूसर आन नहिँ , ओहिँ बिनु एहि संसार ।
तजि आपन घर बार सब , आई कै अभिसार ॥ ५९५ ॥

अब लहुँ रही इहाँ औडेरी , आजु अवधि पूजी ओहि केरी ।
जो जेहि कारन तन मन जरई , सो पुनि ताकर चिंता करई ॥
सौति जानि जनि होहु दुखारी , वह तुम्हारि जस आज्ञाकारी ।
सुनि चित्रावलि हिए सँताई , नैन दुराइ कहिसि बिलखाई ॥
तुम साईँ अपने सुख राजा , तिरियहि नाउँ सौति सिर गाजा ।
जौ बिधि ससी करावत[1] देई(क) , सहैं न तो अब काह करेई ॥
निसि आयो तहं कुँअर सुजाना , कौंला जहाँ कीन्ह अस्थना ।

कंत बचा परतीति पर , सोरह साजि सिँगार ।
बासक-सेजा[2] होइ रही , लाइ नैन दुइ बार[3] ॥ ५९६ ॥

पदुम कोस अलि लीन्ह बसेरा , हिए सोच भइ मालति केरा ।
नीरज लोयन रूप अतिसाए , दिन कर देखि नीर भरि आए ॥
बिहँसि कंत कामिनि कँठ लाई , बिरह दगधि उर लाइ बुझाई ।
मनमथ दाब जाँघ पुनि काँपी , रावन बार लंक गहि चाँपी ॥
दोन्हीँ चार नखच्छत छाती , फूट सिँधोर[4] सेज भइ राती ।
होइगा अंग भंग नव साता , अति परसेद[5] सिथल भइ गाता ॥
भयो प्रभात गयो उठि साईँ , कौंल पास कुईँ[6] चलि आईँ ।

हँसि हँसि पूछहिँ रैनि सुख , रहसि करहिँ परिहास ।
लाजन गोवै कौंल मुख , सखियन अधर बिगास ॥ ५९७ ॥

१—कलावत = कला कला घटना बढ़ना ।

(क) जो करता सिर गिरिवर देई । पाठा० ।

२—वासकसय्या । ३—वारि जल, अथवा बार = द्वार ४—सिंधोरा = सिंदूर रखने की डबिया । ५—प्रस्वेद = पसीना । ६—कुमुदनी ।

चित्रावलि कहँ बिनु ससि साईं , गई रैनि सब गनत तराईं ।
सैाति संग साले जनु काँटा , अंग अंग लागै जनु चाँटा ॥
सुलगी उरध आगि सन सेजा , अैाटि होइ जल रकत करेजा ।
करम करम कै सो निसि गई , पिअ देखत तिअ खंडित भई ॥
रही सोइ मिसि बदन छिपाई , नायक सकुचत आनि जगाई ।
परी चैांकि लागै कर सीरा , दच्छिन नाहिँ नायका धीरा ॥
कहिसि अहिउँ सुख सपने माहीँ , कहा जगाइ लीन्ह गहि बाहीँ (क) ।

अहिउँ महा सुख सपन महँ , तुम कर लागे अंग ।
गए नैन पट उघरि कै , भयो सकल सुख भंग ॥ ५९८ ॥

जानहुँ तुम एक सुन्दरि संगा , मानत अहे केलि रति रंगा ।
मोहिँ देखि नो सात बनाए , तजि सो नारि आनि कँठ लाए ॥
हिये लागि हिय मोर सिराना , पाएउँ अधर अमिय कै पाना ।
अैार सकल सुख कहे न जाहीँ , उठै आगि सँवरत मन माहीँ ॥
भई दोहागिन[1] बिकल सरीरा , जनु गिरि गयो हाथ तें हीरा ।
वह रोवै परि सेज अकेली , हैाँ हँसि हँसि मानैाँ रस केली ॥
मोरे छुअैँ कुसुम जनु गाथा , वह लगि रहै हाथ सोँ माथा ।

सेज अकेली रैनि सब , सहेउ सकल उतपात ।
चतुर नारि चित्रावली , रस काढ़ै रस बात ॥ ५९९ ॥

---

(४३) बोहित खंड ।

उहवाँ सागर बोहित साजा , इहवाँ दुंद गैान कर बाजा ।
पखरे घोर पलाने हाथी , सँभरि चले पुनि अंत के साथी ॥

(क) सपना देखि अखंडित जाहीं । सैाति क डाह हिए दुःख नाहीं । अधिक पाठ ।

१—दूसरी स्त्री = सवति ।

चली दोऊ धनि करत कलोला, अपने अपने चढ़ि चंडोला।
एक बाएँ एक दहिने जाई, एकहिं एक न पास सुहाई॥
कुँअर साजि पुनि कटक सुहावा, रहसत साज समुंद लहु आवा।
बोहित साज देखि मन भावा, चित्रिनि कर चंडोल चढ़ावा॥
पुनि कौंलावनि समदि भुआरा, चढ़ी जाइ तजि सब परिवारा।

अगिनित दायज दरब जेहि, देखि हिया हरखंत।
एक एक सबै चढ़ाइ कै, कुंअर चढ़ा पुनि अंत॥ ६००॥

बोहिते चढ़ेउ कुँअर लै भारा, समदि चले पहुँचावनहारा।
समदे लोग कुटुंब हय हाथी, सोई साथ अंत जो साथी॥
लोकाचार तीर लहु आए, नाव चढ़े सब भए पराए।
पीठ देत ही मिंत बिसारा, सब काहु घर बार सँभारा॥
कुँअर पेलि बोहित लै चला, भार देखि केवट कलमला[१]।
कहिसि कीन्ह तुम दूर पयाना, बोहित नाहिं भार अनुमाना॥
बोहित चढ़े बहुत उनपाथा[२], ऊँचे भौंर ऊठहिं पुनि साथा।

भौंर फेर जलजंतु डर, तेहि पर आंधी आउ (क)।
जिउ आवै तब पेट महँ, तीर लाग जब नाउ॥ ६०१॥

सोन रूप तुम कहा बटोरा, भार बहुत देखत पुनि थोरा।
गाढ़ परे पुनि होइहि भारी, अबहीं कस नहिं देहु अडारी[३]॥
कुँअर कहा सुनु बोहित-पती, दरब न डारि जाय एक रती।
बोहित साजा दरब हि लागी, का लै जाब संग यहि त्यागी।।
जो मानै जिय अस डर भारी, चढ़ै न कोऊ नाव नवारी[४]।
तुम खेवहु जनि मानहु संका, मेटि न जाइ सीस कर अंका॥
हँसि कै बोहित केवट पेला, चला जाइ जल माहँ अकेला।

१—बिकल हुआ। २—उतपात। (क) मिरचढि आंधी बाउ।
३—फेंकना। ४—नाव पर चढ़ने वाला।

देखत बारिधि अगम जल, प्रान न धीर धराइ।
सोई चलै निचिंत होइ, जो कोउ आवै जाइ॥ ६०२॥

रैनि एक बादर जुरि आए, दुहुँ दिसि होइ रिखि सात[1] छपाए।
मारग भूला केवट डरा, बोहित जाइ भौंर बिच परा॥
भँवै लाग तहँ बोहित भारी, कुँअर कहा कछु देहु अडारी।
जाके अहा संग कछु भारा, पहिलहिं तैं सब रूप अडारा॥
हरुआ होइ बोहित अगुसरा, दूजे भौंर जाइ कै परा।
जहँ लहु अहा सोन कर नाऊँ, सो सब डारि दीन्ह तेहि ठाऊँ॥
तीजे भौंर जहाँ नग हीरा, चौथे अन जाकर नर कीरा॥

पँचयेँ भौंर भयो सेस नर, अंत जानि पुनि मीच।
कुँअर जिअन जिअ सौंरि कै, परे कूदि जल बीच॥ ६०३॥

छठएँ भौंर मरन निज हेरी, साहस बाँधि गिरीँ सब चेरी।
सतएँ भौंर जो आइ तुलाना, कौंलावति कर जिउ अकुलाना॥
कहिसि कि हौं बलि देउँ सरीरा, मकु ये दोउ लगि लागैं तीरा।
पुनि मन कहिसी रहा पछितावा, चित्रिनि रूप न देखै पावा॥
मरन बेरि मुख देखौं जाई, मकु अजहूँ तजि कोह छोहाई।
चित्रिनि पहँ आई गुन-भरी, बदन बिलोकि पाउँ लै परी॥
कहिसि कि हौं अपराधिनि तोरी, करहु छोह सुनि बिनती मोरी।

रहै सदा तुअ सीस पर, सेंदुर भाग सोहाग।
हौं समदति हौं चरन गहि, इहै मोर अनुराग॥ ६०४॥

चित्रावलि सुनि हिए छोहाई, कौंलावति कह कंठ लगाई!
कहिसि कि तजहु सौति कर नाता, मोरि तोरि एकै जनु माता॥
हौं जिउ देउँ रहउ तुम्ह दोऊ, मोरे मुए होउ सो होऊ।
मरन लागि दुहुँ बाद पसारा, सुनि सुजान धायो बिकरारा॥

१—अ० रकसात (رقصات) आसमान; अथवा ऋषि सात = सप्तर्षि मंडल।

कहिसि कि मेहरिन्ह बुद्धि न रती , हौं अब मरौं होहु तुम्ह सती ।
तीनिहुँ गही मरन की टेका , मरन न पाउ एक तें एका ॥
देवता सरग जो देखत अहे , इन्ह कर प्रेम देखि थकि रहे ।

ससि सूरज कुज दोउ गुरु , राहु बुद्ध सनि केतु ।
कहहिँ कि अब लहुँ भूमि महँ , अस न कीन्ह कोउ हेतु ॥६०५॥

---

(४४) जगन्नाथ खंड ।

तब अगस्त सों कहिन हँकारी . मरै न पावहिँ लेहु उबारी ।(क)
कोपि अगस्त भुजा देखराई , समुँद लहरि तब गयउ बुताई[1] (ख) ॥
तनिक अगस्त दिष्टि किय तेजा . थर थर काँपेउ समुँद करेजा ।
एकहि लहरि सोइ अस जागा , बोहित निकसि तीर गै लागा ।
कुसल देखि सब कीन्ह अनन्दा , आपु आपु कहँ बिधिना बन्दा ॥
ऐ दयाल सुख दुख के दाता . तोहिँ बिनु दूसर नाहिँ बिधाता ।
संकट देसि तो कौन छुड़ावै . मुकुति देसि तौ कौन फँदावै ॥

देसि भिखारी राज जो . लिये न काहू साथ ।
राजहिँ करसि भिखारि तो . कौन गहै तुअ हाथ ॥६०६॥

आदित उगवत बोलत कागा , बोहित आइ तीर पहँ लागा ।
बाभन एक करत अस्नाना , देखि कुँअर चित रहस[2] समाना ॥
पुनि पुकारि कै पूँछिसि राई , बोलहु कौन नगर यह भाई ।
कहिसि कि कस आँखिन अँधियारा , जगन्नाथ जेहि जग उजियारा ॥
पुहुमि सकल जेहि सेवा करई . पग परसत दुख पातक हरई ।
कुँअर कहा तुम दोऊ पियारी , एहि झलफलें[3] रैनि अँधियारी ॥
जौ लहुँ कोऊ मिलै न दूजा , तौ लहुँ जाइ लेहु कै पूजा ।

(क) सँभारी-पाठा० । (ख) मुरवाई, पाठा० १—बुताना, निवृत्त होना ।
२—हर्ष, आनंद । ३—उषाकाल ।

कहाँ राज सुख साज सब , कहँ वह सरग बिवान ।
जिमि जिमि पुहुमी पग धरै , झंखै[1] कुँअर सुजान ॥६०७॥

आयो जगन्नाथ दरबारा , ससिहर लिये संग दुइ तारा ।
दोऊ नारि दोऊ दिसि लसी , इन्द्र साथ रंभा उरबसी ॥
परसि देव पुनि बिनती कीन्ही , संपति हम बारिधि कहँ दीन्ही ।
अब निरधन परदेसी जानी , मानि लेहु यह पाती पानी ॥
कै अस्नान बिप्र पुनि धावा , पुजा दरब समेटै आवा ।
जबहीँ दिष्टि कुँअर पर परी , दोउ नैनन आए जल भरी ॥
कुँअर कहा तुम देव हमारे , कहा जानि चखु आँसू ढारे ।

कहिसि हमार नरेस सो , यही रूप अनुहारि ।
निकसि गयो एक जोगि सँग , बसत बसंत उजारि ॥ ६०८ ॥

तेहि दिन तें पुनि खोज न पावा , सपनेहुँ कोउ न सँदेस सुनावा ।
पिता नाउँ धरनीधर राजा , बैठेउ छाड़ि राज कर काजा ।
माता रोइ अंधि पुनि भई , देसहिँ आन समय होइ गई ॥
हौं बाभन जो परोहित अहा , देखि न सकेउँ देस दुख सहा ।
सेयों आइ देव जग-नाथा , हिँछा कै मकु मिलै सो नाथा ॥
तुअ मुख देखेउँ ओहि अनुहारा , गहबर आयो हिया दुखारा ।
अगुआ पुनि बाउर होइ गए , परजा छाड़ि देस सब गए ।

कुँअर हिया पुनि गहबरा[2] , लोयन नीर भराय ।
चीन्हि परोहित आपना , परा पाउँ पर आइ ॥ ६०९ ॥

कहिसि कि तुम हौ पाँड़े केसी , हौं सुजान सोई परदेसी ।
जोगी होइ गएउँ तेहि देसा , जहँ न आइ कोइ कहै सँदेसा ॥
जेहि लगि सहा जनम दुख भारी , सोइ यह चित्रावली पियारी ।
तब पुनि जहँ लगि दुख सुख अहा , बैसि कुँअर एक एक सब कहा ॥

१—रोवै, पछतावै ।   २—भरि आया ।

पंडित रहसि आसिषा[१] दीन्हा, मनहीँ माहँ बड़ाई कीन्हा।
कहिसि कि जिअ जनि चिंता करहु, अब सुख सकल हिए दुख हरहु।
बरष दिवस भा सेवत देवा, दारिद गयो समुँद की सेवा॥

समुँद आउ एक दिन चलो, जगरनाथ कहँ सेइ।
मोहिँ भिखारी जानि कै, गयो पाँच नग देइ॥ ६१० ॥

काहुहिँ मोहिँ देखाइ न जाई, छेरी मुँह कोहँडा न समाई।
अब जो तुमरे आवहिँ काजा, लेउ करहु सब आपन साजा॥
बाभन आनि पाँच नग दीन्हा, पारखि नग अमोल तब चीन्हा।
पूछेसि इहाँ साहु कोउ अहई, धन-पातर[२] जा कहँ जग कहई॥
कहिसि कि लच्छन साहु सयाना, महाधनी पुहुमीपति जाना।
कुँअर बोलि कै नग कर दीन्हा, लच्छन रतन अमोलि क चीन्हा॥
औ पुनि धरनीधर सुन जानी, आदर कीन्हेसि सेव बखानी।

कुँअर कहा हम पंथ सर, बिलँब एक दिन नाहिँ।
करहु साज अब सोइय, जेहि अपने घर जाहिँ॥ ६११ ॥

लच्छन कहा दरब बहु आही, जो चाहिय सो लेहु बेसाही।
देस तुहार मोर है देखा, उहइ आइ मैँ पारब लेखा॥
सोन रूप पाटम्बर आना, साजे मेहरिन्ह लागि बिवाना।
अभरन सभै जराऊ साजे, मुकुतमाल उर माहँ बिराजे॥
हाथि घोर पुनि जाए बेसाहे, सहस एक राखे खँड़वाहे[३]।
कटक साजि कै कुँअर पयाना[४], बाजा पुनि गहगहा निसाना॥
चमकत चले बिवान सोहाए, जानहुँ अमरपुरी ते आए।

राति दिवस जावैँ चले, आन न कछु सुहाय (क)।
रहसहिँ अपने देस को, पुहुमि न लावहिँ पाय॥ ६१२ ॥

१—आशिष = आशीर्वाद। २—धनपात्र = धनी।
३—खांडावाले, योद्धा। ४—चला। (क) राति दिवस चलि जाहिँ पुनि, बिलम न कहूँ सुहाय।

(४५) अभिषेक खंड।

चलतहिँ चलत देस नियरावा, बन बीहर सब लाग सुहावा।
केसी पाँड़े कहिसि बुलाई, आगे राय जनावहु जाई।
अज्ञा पाइ उठाइसि पाऊ, आयो जहँ धरनीधर राऊ॥
कहिसि राउ अब करहु बधावा, कुँअर सुजान कुसल सों आवा।
सुनतहि नाउँ राउ रहसाना, जनहुँ मृतक तन प्रान समाना॥
गती नैन जोति सुनि पाई, घर घर बाजै लागु बधाई।
फिरि फिरि पूछै कुसल सुजाना, केसी कहा जहाँ लहु जाना॥

राजा सँग आगे चले, राउत राना भारि।
उठे धाइ सब नाउँ सुनि, बाभन बनियाँ बारि॥ ६१३॥

देखि सुजान पिता असवारा, उतरि पियादे होइ पगु धारा।
धरनीधर पुनि उतरि के भैँटा, बिछुरन दुःख सबै धरि मैँटा॥
सुत कर बदन हेरि भा छोहा, घरी घरी हिय उठै मरोहा[1]।
हिय गहबरि मुख बात न आऊ, फिरि फिरि गहै पिता कर पाऊ॥
फिरि फिरि राउ गहै अँकवारी, लोग कुटुंब नेउछावरि सारी।
पुनि दोउ जना भये असवारा, पूँछत चले कुसल बेवहारा॥
जौ लहुँ कुँअर मँदिल नहिँ आवा, हाथ हाथ सों छूट न पावा।

कुँअर परे लइ मातु पगु, भरि लोचन दोउ नीर।
मातु मया चराइ पुनि, उतरा अस्तन छीर॥ ६१४॥

माता लै सुत कंठ लगावा, चूमि बदन कर आँखिन लावा।
कहिसि कि धनि दिन धनि यह घरी, पूतहिँ भेटिउँ अंक मेँ भरी॥
मानिक मोती भरि भरि थारा, नेवँछावरि साजैँ परिवारा।
चित्रावलि लै मँदिल उतारी, औ पुनि सँग कौंलावति बारी॥
सासु चरन लागीँ दोउ आई, रानी गहि दुहुँ अंक मेँ लाई।

---

1 उटगार।

फिरि फिरि आँचर डारै रानी, चन्द सूर अपने घर आनी ॥
लोग कुटुँब परिवार सबाई, लै लै आए राज बधाई।

राजै छत्र उतारि कै, धरा कुँअर के सीस।
टीका काढ़ेउ राज कर, औ पुनि दीन्ह असीस ॥ ६१५ ॥

कुँअरहि राज-पाट बैसाई, बैसे नृप बिधना लै लाई ॥
राउत राना आइ जोहारे, दे पहिरावरि सब प्रतिपारे[1]।
मन्दिर मन्दिर बजेउ बधावा, घर आँगन सब भयउ सुहावा॥
चित्रावलि कौंलावति बारी, बिलसहिँ आपनि आपनि पारी।
निसि बासर आनँद सुख होई, दुख की चरचा करै न कोई ॥
देख तिया सब अचक रहाई, जनहुँ दुश्रो एक जननि की जाई।
धन माता धन पिता सबाईँ, मानुख कोखि अपछरा आईँ ॥

पान फूल सुख भोग लै, चन्दन बास बसाहिँ।
सुख सर कुरलहि हंस ज्यों, निसि दिन केलि कराहिँ ॥६१६॥

कथा मान कवि गायेउ नई, गुरु परसाद समापत भई।
जे रे सुना ते हिरदै राखी, औ अति चाउ आन सो भाखी ॥
जो जेहि पंथ दुःख जिश्र सहई, सो पुनि अंत सुक्ख निधि लहई।
मनहिँ कहेउ ते अति दुख देखा, अब जिउ मानहिँ सुख कर लेखा॥
कबितन्ह मरन कथा कै गाई, मोहिँ मरत हिय लागु छोहाई।
औ जे प्रेम अमी रस पीया, मरै न मारे जुग जुग जीया ॥
एक जियन एक मरन सँसारा, मरि मरि जियइँ ताहि को मारा।

ज्ञान ध्यान मद्धिम सबै, जप तप संजम[2] नेम[3]।
मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रतिपारै[4] प्रेम ॥ ६१७ ॥

॥ इति ॥

१—प्रतिपाला। २—संयम, यम। ३—नियम। ४—निबाहै।